महाकवि कालिदास की रचनाओं में वर्णित वनस्पतियाँ तथा उनका आयुर्वेदीय महत्त्व

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय झाँसी (उ०प्र०) के अन्तर्गत
कला संकाय, संस्कृत विषय में पी-एच०डी० उपाधि
हेतु प्रस्तुत

शोध-प्रबन्ध

2008
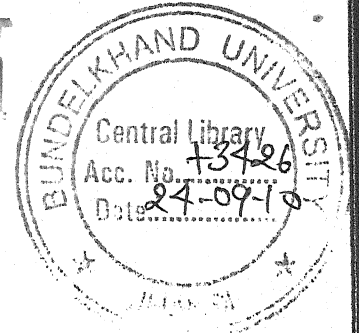
शोध-निर्देशिका
Namita
डॉ० नमिता अग्रवाल
एम०ए०, पी-एच०डी०
रीडर, संस्कृत विभाग
अतर्रा पी०जी० कालेज
अतर्रा (बाँदा)

शोधकर्ता
प्रमोद कुमार द्विवेदी
प्रमोद कुमार द्विवेदी
एम०ए०, बी०एड०,
यू०जी०सी०—नेट,दिसम्बर—05
अतर्रा पी०जी० कालेज
अतर्रा (बाँदा)

शोध—केन्द्र
अतर्रा पोस्ट ग्रेजुएट कालेज, अतर्रा (बाँदा)

अतर्रा पोस्ट ग्रेजुएट कालेज, अतर्रा (बाँदा)

डॉ० नमिता अग्रवाल
एम0ए0, पी-एच0डी0
रीडर, संस्कृत विभाग
अतर्रा पी0जी0 कालेज
अतर्रा (बाँदा)
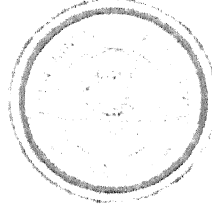
निवास
सिविल लाइन्स, मनोरमा
अस्पताल के सामने, बाँदा
पिन--210001
मोबा0-- 9450170249

प्रमाण-पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि श्री प्रमोद कुमार द्विवेदी, शोध-छात्र संस्कृत विभाग, अतर्रा पी०जी० कालेज अतर्रा (बाँदा), ने बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय झाँसी के नियमानुसार न्यूनतम २०० दिन की अवधि को पूर्ण करते हुए ***"महाकवि कालिदास की रचनाओं में वर्णित वनस्पतियाँ तथा उनका आयुर्वेदीय महत्त्व"*** विषय पर शोध कार्य पूर्ण कर लिया है। शोध-छात्र के रूप में किया गया इनका यह कार्य शोध-प्रबन्ध के उद्देश्यों पर आधारित है। इनका यह कार्य मौलिक एवं प्रशंसनीय है। मैं इनके उज्ज्वल भविष्य की कामना करती हूँ।

Namita

दिनाङ्क-

डॉ० नमिता अग्रवाल

Dr. (Smt.) Namita Agrawal
Reader, Sanskrit Deptt.
ATARRA P. G. COLLEGE
Atarra (Banda) U.P.

समर्पण

पूज्य पितृदेव!

इष्टं त्वया यदहमध्ययनं विदध्यां

दृष्टः परन्तु फलितो न निजोऽभिलाषः।

तस्मादिमां कृतिमहं करपल्लवे ते,

भक्त्या न तेन शिरसाऽध समर्पयामि।।

प्रणतः-

प्रमोदः।

''सर्वस्तरतु दुर्गाणि सर्वो भद्राणि पश्यतु।

सर्वः कामानवाप्नोतु सर्वः सर्वत्र नन्दतु।।

-विक्रमोर्वशीय

अङ्क-5 / 25

अनुक्रमणिका

सङ्केत–सूची

हि0	: हिन्दी
सं0	: संस्कृत
ले0	: लेटिन
ते0	: तेलगू
ता0	: तामिल
क0	: कश्मीरी
उ0	: उडिया
अ0	: अरबी
अं0	: अंग्रेजी
आ0	: आसामी
मल्0	: मलयालम
ने0	: नेपाली
पं0	पंजाबी
बं0	: बंग्ला
भू0	: भूटानी
फा0	: फारसी
कर्ना0	: कर्नाटकी
गु0	: गुजराती
म0	: मराठी
हितो0मित्र0	: हितोपदेश मित्रलाभ
ईशा0	: ईशावास्योपनिषद्
च0सं0नि0	: चरक संहिता निदानस्थानम्
चं0सं0सू0	: चरक संहिता सूत्रस्थानम्
सं0दिग्द0	: संस्कृत दिग्दर्शिका
वृहदा0	: वृहदारण्यकोपनिषद्
स्वा0शि0पा0भू0	: स्वास्थ्य शिक्षा पाठावलि भूमिका
आयु0का वृ0इति0	: आयुर्वेद का वृहत् इतिहास
अ0हृ0सू0अ0	: अष्टाङ्ग हृदय सूत्रस्थानम् अध्याय
अमर0	: अमरकोश

क0आ0अं0	: कल्याण आरोग्य अड्क
ऋ0भा0भू0सा0	: ऋग्वेद भाष्य भूमिका सायण
सु0सं0सू0	: सुश्रुत संहिता सूत्रस्थानम्
तैत्ति0 भृ0तृ0	: तैत्तिरीयोपनिषद् भृगुवल्ली तृतीयोऽनुवाक
चि0प0वि0	: चिकित्सा पल्लव विशेषांक
वृ0शा0भा0	: वृहदारण्यकोपनिषद् शारीरिक भाष्य
ऋ0	: ऋग्वेद
च0सं0शा0अ0	: चरक संहिता शारीरिक स्थानम् अध्याय
अ0वे0	: अथर्ववेद
ऐ0ब्रा0	: ऐतरेय ब्राह्मण
गो0ब्रा0	: गोपथ ब्राह्मण
छा0उ0	: छादोग्योपनिषद्
कठ0	: कठोपनिषद्
आ0गृ0	: आश्वायल गृह्यसूत्र
अ0सं0उत्तर0अ0	: अष्टाड्ग संग्रह उत्तरतन्त्रम् अध्याय
चं0सं0वि0अ0	: चरक संहिता चिकित्सास्थानम् अध्याय
शार्ड़0सं0	: शार्ड़गधर संहिता
सु0सं0उ0	: सुश्रुत संहिता उत्तरतन्त्रम्
सं0हि0को0	: संस्कृत हिन्दी कोश
वनौ0विशे0	: वनौषधि विशेषाड्क
चि0 प0	: चिकित्सा पल्लव
साम0	: सामवेद
स्वा0 शि0 पाठावलि	: स्वास्थ्य शिक्षा पाठावलि
अ0हृ0सू0	: अष्टाड्ग हृदय सूत्रस्थानम्
ऋ0भा0भू0	: ऋक् भाष्य–भूमिका
आ0कावै0इति0	: आयुर्वेद का वैज्ञानिक इतिहास
य0 वे0	: यजुर्वेद
सं0का0कीवि0व0	: संस्कृत काव्य की विशिष्ट वनस्पतियाँ
द्र0गु0वि0	: द्रव्य गुण विज्ञान
मा0व0वि0	: माध्यमिक वनस्पति विज्ञान
का0का वा0वै0	: कादम्बरी का वानस्पतिक वैभव

क0आ0अं0	: कल्याण आरोग्य अड्क
ऋ0भा0भू0सा0	: ऋग्वेद भाष्य भूमिका सायण
सु0सं0सू0	: सुश्रुत संहिता सूत्रस्थानम्
तैत्ति0 भृ0तृ0	: तैत्तिरीयोपनिषद् भृगुवल्ली तृतीयोऽनुवाक
चि0प0वि0	: चिकित्सा पल्लव विशेषांक
वृ0शा0भा0	: वृहदारण्यकोपनिषद् शारीरिक भाष्य
ऋ0	: ऋग्वेद
च0सं0शा0अ0	: चरक संहिता शारीरिक स्थानम् अध्याय
अ0वे0	: अथर्ववेद
ऐ0ब्रा0	: ऐतरेय ब्राह्मण
गो0ब्रा0	: गोपथ ब्राह्मण
छा0उ0	: छादोग्योपनिषद्
कठ0	: कठोपनिषद्
आ0गृ0	: आश्वायल गृह्यसूत्र
अ0सं0उत्तर0अ0	: अष्टाड्ग संग्रह उत्तरतन्त्रम् अध्याय
चं0सं0वि0अ0	: चरक संहिता चिकित्सास्थानम् अध्याय
शार्ड़0सं0	: शार्ड़गधर संहिता
सु0सं0उ0	: सुश्रुत संहिता उत्तरतन्त्रम्
सं0हि0को0	: संस्कृत हिन्दी कोश
वनौ0विशे0	: वनौषधि विशेषाड्क
चि0 प0	: चिकित्सा पल्लव
साम0	: सामवेद
स्वा0 शि0 पाठावलि	: स्वास्थ्य शिक्षा पाठावलि
अ0हृ0सू0	: अष्टाड्ग हृदय सूत्रस्थानम्
ऋ0भा0भू0	: ऋक् भाष्य–भूमिका
आ0कावै0इति0	: आयुर्वेद का वैज्ञानिक इतिहास
य0 वे0	: यजुर्वेद
सं0का0कीवि0व0	: संस्कृत काव्य की विशिष्ट वनस्पतियाँ
द्र0गु0वि0	: द्रव्य गुण विज्ञान
मा0व0वि0	: माध्यमिक वनस्पति विज्ञान
का0का वा0वै0	: कादम्बरी का वानस्पतिक वैभव

नि०रा०	: निघण्टु राज
रा०नि०	: राजनिघण्टु
शा०नि०	: शालिग्राम निघण्टु
ध०नि०	: धन्वन्तरि निघण्टु
रघु०	: रघुवंशम
अ०शा०	: अभिज्ञान शाकुन्तलम्
अभि०शा०	: अभिज्ञान शाकुन्तलम्
माल०	: मालविकाग्निमित्रम्
वि०उ०	: विक्रमोर्वशीयम्
पू०मे०	: पूर्व मेघ
उ०मे०	: उत्तर मेघ
ऋ०सं०	: ऋतुसंहारम्
ऋतु०	: ऋतुसंहारम्
सं०सा० का इति०	: संस्कृत साहित्य का इतिहास
वै०सा०	: वैदिक साहित्य का इतिहास
भ०गीता	: भगवत् गीता
च०सं०क०	: चरक संहिता कल्पस्थानम्
भा०प्र०	: भावप्रकाश
भै०र०	: भैषज्य रत्नावली
का०ग्र०	: कालिदास ग्रन्थावलि
कु० सं०	: कुमार सम्भवम्

* * * * * * * * * *

भूमिका

धत्तेभरं कुसुमपत्र फलावलीनां, धर्मव्यथां वहति शीतभवांरुजं च।

योदेहमर्पयति चान्यसुखस्य हेतोः, तस्मै वदान्य गुरवे तरवे नमस्ते।।

भाषा' शब्द संस्कृत की भाष् धातु जिसका अर्थ व्यक्त वाक् (व्यक्तायां वाचि) से निष्पन्न है। सामान्य रूप से भाषा का अर्थ है 'बोल चाल की भाषा या बोली'। भाषा परस्पर विचारों के आदान–प्रदान का माध्यम है।

हमारे पूर्वजों के सारे अनुभव हमें भाषा के माध्यम से ही प्राप्त हुए हैं। हमारे सभी शास्त्र और उनसे होने वाला सम्पूर्ण लाभ भाषा का ही परिणाम है। महाकवि 'दण्डी' के शब्दों में –

'इदमन्धन्तमः कृत्स्नं जायेत भुवनत्रयम्।

यदि शब्दाह्वयं ज्योतिरासंसारं न दीप्यते।।

अर्थात् ''यह सम्पूर्ण भुवन अन्धकार पूर्ण हो जाता यदि संसार में शब्द ज्योति (भाषा) का प्रकाश न होता।'' स्पष्टतः ही यह बात मानव भाषा के विषय में ही कही गयी है, क्योंकि पशु–पक्षियों की भी भाषा होती है। परन्तु इनकी बोली को अव्यक्त वाक् कहा गया है। मानव की भाषा शब्द युक्ति होती है जिसे व्यक्त वाक् कहा जाता है। हमारी लोक यात्रा वाग्देवी की कृपा से ही सम्भव हो पाती है:–

''वाचामेव प्रसादेन लोकयात्रा प्रवर्तते।

संस्कृत भाषा हमारे देश की प्राचीनतम भाषा है। हमारा पुरातन सर्वविध वैभव इसी भाषा में विद्यमान है।

''संस्कृतं नाम दैवी वागन्वाख्याता महर्षिभिः।

यह भाषा अत्यन्त पूर्ण एवं सशक्त है। यह युग–युगों से प्रवाहित होने वाली भारतीय चिन्तन की वह अक्षुण्ण धारा है जो कि अनेक संक्रमण व्युत्क्रमणों को पार करती हुई आज भी बहती चली जा रही है। यह भाषाओं में मुख्य अलौकिक श्रुतिमधुर है यथा कवि दण्डी ने कहा है–

भाषासुमुख्या मधुरा दिव्या गीर्वाणभारती ।

तस्मादि काव्यं मधुरं तस्मादपि सुभाषितम् ।।

''भाषाओं में मुख्य मधुर अलौकिक संस्कृत भाषा है। उसमें लिखा काव्य मधुर है तथा सुभाषित उससे भी अच्छे हैं।''

भारतीय संस्कृति, धर्म, दर्शन, विज्ञान आदि का तात्विक अनुशीलन करने के लिए इस भाषा का अध्ययन हम भारतीयों के लिए सुतराम् अपेक्षित है:– किसी कवि ने सत्य ही कहा है–

''भवति भारत संस्कृति रक्षणं प्रतिदिनं हि यथा सुरभाषया।

सकल वाग्जननी भुवि सा श्रुता बुध जनैः सततं हिंसमादृता।।

कविता करना अनेक जन्मों के पुण्यों का फल है। यह भारतीय मनीषियों की सुदृढ़ आस्था रही है। सामान्य बुद्धि तो मानव मात्र के है और वह विद्वान है किन्तु प्रतिभाशील मनुष्य संसार में इने–गिने उत्पन्न होते हैं। इसके विषय में अग्नि पुराण अध्याय 337, श्लोक सं0–3,4 पृष्ठ–489 में कहा गया है–

''नरत्वं दुर्ल्लभं लोके विद्या तत्र च दुर्ल्लभा।

कवित्वं दुर्ल्लभं तत्र शक्तिस्तत्र च दुर्ल्लभा।।

''संसार में मनुष्य होना दुर्लभ है, विद्या प्राप्ति इससे भी दुर्लभ है, उससे भी दुर्लभ है कवित्व और कवि प्रतिभा तो अत्यन्त दुर्लभ है।''

ऐसे महापुरुषों से देश अलङ्कृत हो उठता है, पृथ्वी सनाथ हो जाती है। इनमें सुरभारती के अनन्य उपासक माँ सरस्वती के वरद पुत्र कवि गुरु कालिदास का विशेष स्थान है। ये भारत के ही नहीं अपितु विश्व के श्रेष्ठ कवि रत्न हैं। उनकी कृतियों में मानव जीवन का कलात्मक ढंग से संयोजन हुआ। यही कारण है कि कृतियों का रसास्वादन करते हुए सरस सुधीजन तृप्ति का अनुभव नहीं करते हैं, वरन उनकी कृतियों में नित नूतन आनन्द की अनुभूति करते हैं।

कवि का जीवनवृत्त

''पुरा कवीनां गणना प्रसङ्गे, कनिष्ठिकाधिष्ठित कालिदासः।
अद्यापि तत्तुल्य कवेरभावादनामिका सार्थवती बभूव।।

रस की अमृत स्रोतस्विनी प्रवाहित करने वाले तथा भारतीय संस्कृति के चिरंतन आदर्शों को कान्ता–सम्मित अभिव्यक्ति प्रदान करने वाले इस सारस्वत कवि का जीवन–वृत्त अद्यापि कूतूहल एवं अनुमान का विषय बना हुआ है। न तो कवि ने अपने ग्रन्थों में ऐसे सर्वमान्य उल्लेख सन्निविष्ट किये हैं। जिनके आधार पर उसके जीवन की कहानी निर्मित की जा सकती है और न ही किसी इतिहास ग्रन्थ में ही उसके विषय में कोई निश्चित सामग्री उपलब्ध होती है। ऐसी अवस्था में भिन्न–भिन्न विद्वानों ने कालिदास के जन्म के विषय में भिन्न–भिन्न मत प्रतिपादित किये हैं। महाकवि कालिदास के काल की दो स्पष्ट सीमायें विद्वानों ने मानी है। मालविकाग्निमित्र

नाटक का कथानक शुंगवंशीय राजा अग्नि मित्र के चरित्र से है। यह अग्निमित्र मौर्यवंश का उच्छेद कर मगध साम्राज्य को छीनने वाले सेनापति पुष्यमित्र का पुत्र था। उसका समय ईशा से लगभग 150 वर्ष पूर्व विद्वानों ने निर्धारित किया है, तब कालिदास का समय इससे पहले नही हो सकता है। कालिदास के नाम का उल्लेख पहले कन्नौज के सम्राट हर्ष के (606 ई0–647 ई0) आश्रित प्रसिद्ध संस्कृत महाकवि बाणभट्ट ने हर्ष चरित की प्रस्तावना में किया है–

''निर्गतासु न वा कस्य कालिदासस्य सूक्तिषु।

प्रीतिर्मधुर सान्द्रासु मञ्जरीश्वि जायते।।

कविवर कालिदास की मञ्जरी के समान मीठी सूक्तियों को सुनकर किसके हृदय में आनन्द का उद्रेक नहीं होता? एहोल जिला बीजापुर उ0प्र0 से प्राप्त संस्कृत भाषा की भारतीय ब्राह्मी लिपि में निबद्ध शक् संवत् 556 के बहुमूल्य अभिलेख से भी कालिदास व भारवि की उत्तर काल की सीमा निश्चित की जा सकती हैं। यह उच्च्य कोटि का अभिलेख हैं। जिसकी तुलना रघुवंशम् एवं किरातार्जुनीयम् से की जा सकती हैं। कवि के ये दोनो उल्लेख ईशा की सातवीं शताब्दी के हैं। अतः इनका स्थितिकाल ई0पू0 150 वर्ष से 647 ई0 के मध्य हैं। इन्हीं दोनों सीमाओं में कालिदास के स्थिति काल के विषय में निम्नलिखित मत प्रस्तुत किये जाते हैं–

1–ईशापूर्व दूसरी शताब्दी (डॉ0 कुन्हन राजा)

2–ईशा की पहली शताब्दी (श्री चितांमणि वैद्य)

3–ईशा की तीसरी शताब्दी (श्री द0वे0 केतकर)

4–ईशा की चौथी शताब्दी का उत्तराद्ध (डॉ सर रामकृष्ण भण्डार कर आदिभारतीय तथा यूरोपियन विद्वान)

5–ईशा की पॉचवी शताब्दी (प्रो0 पाठक)

6–ईशा की छठी शताब्दी (प्रो0 मेक्समूलर महा महोपाध्याय हर प्रसाद शास्त्री प्रा0 प्रबोधचन्द्र सेन गुप्त)

उक्त मतों के अनुसार विद्वान इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि महाकवि कालिदास का स्थिति काल ईशा की पहली शताब्दी तथा ईशा की चौथी शताब्दी का उत्तरार्द्ध व ईशा की पॉचवी शताब्दी का पूर्वार्द्ध होगा।

डॉ बाबूराम त्रिपाठी के अनुसार–

इस प्रकार कालिदास का स्थिति काल चन्द्रगुप्त द्वितीय का समय ही ऐतिहासिक प्रमाणों से सिद्ध होता हैं शेष मत अधिकतर किंवदन्तियों का कोई महत्व नहीं हैं। यद्यपि इस मत पर कई आपत्तियॉ उठाई गई हैं और कालिदास को प्रथम शताब्दी में रखने का प्रयास किया गया हैं पर इन आपत्तियों का कोई पुष्ट आधार नहीं हैं।

उपर्युक्त विवेचन से कालिदास द्वितीय चन्द्रगुप्त के आश्रय में थे यह स्पष्ट हो जाता हैं। चन्द्रगुप्त ने ई0 सन् 380 से लेकर 413 पर्यन्त राज्य किया। अर्थात् कालिदास चौथी शताब्दी के अन्त में या पॉचवी शताब्दी के प्रारम्भ में हुए होगें।

कालिदास के जन्म स्थान के विषय में भी विभिन्न मत हैं। जिस प्रकार प्रसिद्ध यूनानी कवि होमर का जन्म स्थान बनने के लिए सात–सात नगरियाँ परस्पर होड़ करती हैं। उसी प्रकार कुलगुरु की शैशव–भूमि के लिए भारतवर्ष के भिन्न–भिन्न प्रदेश अपने–अपने अधिकार उपस्थित करते हैं। यथा– बंगाल, विदिशा, विदर्भ, मालवा, काश्मीर, उज्जयनी, मिथिला, अलका ये सभी स्थान महाकवि की रचनाओं में वर्णित हुए हैं।

बंगाल के भावुक साहित्य–सहृदय जन 'कालिदास' नाम के सहारे तर्क देते हैं, के बंगाली काली भक्त होते हैं अतः कवि भी काली का भक्त था, इस कारण उनका नाम 'कालिदास' पड़ा। किन्तु कवि के काली उपासक होने का साक्ष्य उनकी रचनाओं में नहीं है अतः यह तर्क निस्सार हैं।

मालविकाग्निमित्रम् की नायिका मालविका विदर्भ राजकुमारी हैं। रघुवंश में भी विदर्भ राज कन्या इन्दुमती का स्वयंवर तथा प्रणय वर्णित है तथा कवि ने स्वकृतियों में वैदर्भी रीति का अनुसरण किया है अतः पिटर्सन व स्व0 पंडित चन्द्रबली पाण्डेय ने कवि को विदर्भ का ही घोषित किया है।

मुरारीलाल अग्रवाल संस्कृत नेट परीक्षा पृष्ठ सं0 64 के अनुसार महाकवि कालिदास का जन्म चमोली (गढ़वाल) जनपद के अन्तर्गत मन्दाकिनी के पार्श्ववर्ती सिंह पीठ काली के सन्निकट ग्राम कविल्ठा में हुआ था। यह मत लगभग दो दशक से उभरकर आ रहा है।

महामद्येपाध्याय डॉ0 वासुदेव विष्णु मिराशी के अनुसार–"कालिदास ने 11 श्लोकों में उज्जयिनी की अपरिमित सम्पत्ति शिप्रा नदी की ओर से बहने वाली शीतल मंद और सुगन्धित हवा वहाँ के स्थानों के सम्बन्ध में प्रसिद्ध प्राचीन कथाएं उस नगरी के प्रसिद्ध महाकाल महादेव का मन्दिर, संन्ध्याकाल की आरती के समय होने वाले वैश्यानृत्य और रात्रि में अपने प्रियतमों से मिलने के लिए जाने वाली अभिसारिकाएं इन सबका कालिदास ने इतना रमणीय एवं हृदय हारी वर्णन किया है कि उसे पढ़ते समय उज्जयिनी का तत्कालीन दृश्य पाठकों की आँखों के सामने पूरा नाचने लगता हे। अलका को छोंड़कर किसी दूसरी नगरी का इतना सुन्दर और विस्तृत वर्णन कवि ने नहीं किया।

.कालिदास–मिराशी, पृ0–63–64 के अनुसार – यह बात ध्यान में रखने योग्य है कि अलका दिव्य स्वर्गीय नगरी है इसीलिए इसका वर्णन करते हुए कवि ने अपनी कल्पना शक्ति को स्वच्छन्द बनाया है। किन्तु श्लोक की किसी दूसरी नगरी के ऊपर उनका इतना प्रेम न ही

उपर्युक्त विवेचन से कालिदास द्वितीय चन्द्रगुप्त के आश्रय में थे यह स्पष्ट हो जाता हैं। चन्द्रगुप्त ने ई0 सन् 380 से लेकर 413 पर्यन्त राज्य किया। अर्थात् कालिदास चौथी शताब्दी के अन्त में या पॉचवी शताब्दी के प्रारम्भ में हुए होगें।

कालिदास के जन्म स्थान के विषय में भी विभिन्न मत हैं। जिस प्रकार प्रसिद्ध यूनानी कवि होमर का जन्म स्थान बनने के लिए सात–सात नगरियाँ परस्पर होड़ करती हैं। उसी प्रकार कुलगुरु की शैशव–भूमि के लिए भारतवर्ष के भिन्न–भिन्न प्रदेश अपने–अपने अधिकार उपस्थित करते हैं। यथा– बंगाल, विदिशा, विदर्भ, मालवा, काश्मीर, उज्जयनी, मिथिला, अलका ये सभी स्थान महाकवि की रचनाओं में वर्णित हुए हैं।

बंगाल के भावुक साहित्य–सहृदय जन 'कालिदास' नाम के सहारे तर्क देते हैं, के बंगाली काली भक्त होते हैं अतः कवि भी काली का भक्त था, इस कारण उनका नाम 'कालिदास' पड़ा। किन्तु कवि के काली उपासक होने का साक्ष्य उनकी रचनाओं में नहीं है अतः यह तर्क निस्सार हैं।

मालविकाग्निमित्रम् की नायिका मालविका विदर्भ राजकुमारी हैं। रघुवंश में भी विदर्भ राज कन्या इन्दुमती का स्वयंवर तथा प्रणय वर्णित है तथा कवि ने स्वकृतियों में वैदर्भी रीति का अनुसरण किया है अतः पिटर्सन व स्व0 पंडित चन्द्रबली पाण्डेय ने कवि को विदर्भ का ही घोषित किया है।

मुरारीलाल अग्रवाल संस्कृत नेट परीक्षा पृष्ठ सं0 64 के अनुसार महाकवि कालिदास का जन्म चमोली (गढ़वाल) जनपद के अन्तर्गत मन्दाकिनी के पार्श्ववर्ती सिंह पीठ काली के सन्निकट ग्राम कविल्ठा में हुआ था। यह मत लगभग दो दशक से उभरकर आ रहा है।

महामद्येपाध्याय डॉ0 वासुदेव विष्णु मिराशी के अनुसार–''कालिदास ने 11 श्लोकों में उज्जयिनी की अपरिमित सम्पत्ति शिप्रा नदी की ओर से बहने वाली शीतल मंद और सुगन्धित हवा वहाँ के स्थानों के सम्बन्ध में प्रसिद्ध प्राचीन कथाएं उस नगरी के प्रसिद्ध महाकाल महादेव का मन्दिर, संन्ध्याकाल की आरती के समय होने वाले वैश्यानृत्य और रात्रि में अपने प्रियतमों से मिलने के लिए जाने वाली अभिसारिकाएं इन सबका कालिदास ने इतना रमणीय एवं हृदय हारी वर्णन किया है कि उसे पढ़ते समय उज्जयिनी का तत्कालीन दृश्य पाठकों की आँखों के सामने पूरा नाचने लगता हे। अलका को छोंड़कर किसी दूसरी नगरी का इतना सुन्दर और विस्तृत वर्णन कवि ने नहीं किया।

.कालिदास–मिराशी, पृ0–63–64 के अनुसार – यह बात ध्यान में रखने योग्य है कि अलका दिव्य स्वर्गीय नगरी है इसीलिए इसका वर्णन करते हुए कवि ने अपनी कल्पना शक्ति को स्वच्छन्द बनाया है। किन्तु श्लोक की किसी दूसरी नगरी के ऊपर उनका इतना प्रेम न ही

दिखाई पड़ता जितना उज्जयिनी पर है। इससे यह स्पष्ट होता है कि उनके बचपन के दिन उज्जयिनी में ही बीते होंगे।

महाकवि कालिदास–डॉ0 रमाशंकर पृ0–28 के अनुसार 'अतएव यह मानने में कोई विप्रतिपत्ति 'नहीं दिखाई पड़ती कि कालिदास का जन्म कश्मीर में हुआ था और यौवन का स्वर्णोपम पूर्वार्द्ध उसके मनोरम अंचलों में व्यतीत हुआ था परिस्थितियों की चपेट में उसे अपनी जन्मभूमि छोंड़नी पड़ी और सौभाग्य से उसे उज्जयिनी की राज–परिषद का वैभव पूर्ण वातावरण प्राप्त हो गया जहाँ से उसने अपने ललित वाङ्मय का आलोक विच्छुरित किया। अतएव यह माना जा सकता है कि कश्मीर कवि की जन्म भूमि तथा मालवा उनकी कर्मभूमि रही है। काव्य सौन्दर्य का सामान्य सहृदय रसिक, ताथ्यिक अथवा ऐतिहासिक पचड़ों के चक्रव्यूह में न पड़कर भाव रस की स्रोतास्विनी में निमज्जन करना अधिक पसन्द करता है।''

(अमेरिका) मिशिगन आलिबर कालेज के प्रसिद्ध प्राध्यापक डॉ0 मैडाक्स फोर्ड का यह कथन मुझे सोलह आने मान्य है–

For it is your hot love for your art net your dry delvings in the dry bonos of ana and khilolologies that will enable you to convey to others your strong passion.

अर्थात् यह अपनी कला के लिए आपका ज्वलन्त अनुराग है, न कि प्रवादों तथा भाषा विज्ञानों की शुष्क अस्थियों का शुष्क अनुसंधान जो आपको अपने सबल भावों को प्रेषणीय बनाने में समर्थ बनाएगा।

अंग्रेजी के महाकवि शेक्सपीयर के सम्बन्ध में कही गई यह उक्ति कवि कुल गुरु कालिदास के विषय में भी अक्षरशः लागू होती है:–

Others abide our qeuesstion. Thou art free! we ask and alk- Thou smilest and art still. Outtokking knowledge.

वस्तुतः कालिदास केवल मनोरंजन के विषय नहीं हैं अपितु उनके अवगाहन से सहृदय सावधान पाठक अभिनव दिव्य एवं द्रुति से स्पन्दमान बन जाता है कालिदास की कविता कामिनी, मधुर, मनोज्ञ होने पर भी 'रीति' नहीं है' अन्तःसार से परिपूर्ण है जिस कारण युग–युग का 'आलोचन' उसे काल प्रवाह में नहीं बहवा सका है:–

'' ममापि च क्षपयतु नील लोहितः

अतएव जीवन की आसक्तियों का रस लेते हुए भी अन्तिम रूप में हमें अनासक्त रहना है और आवागमन से मुक्ति पाने के उद्देश्य से अनुशासित होना है।

इस प्रकार की मूल्य भावना से अनुप्राणित रहने वाला कवि व कलाकार कभी अपनी दृष्टि में संकीर्ण अथवा संकुचित नहीं रह सकता वह मानवतावादी हो जाता है और मानव मात्र के लिये उसके हृदय का कोश खुल जाता है। किन्तु कवि कुल गुरु कालिदास तो उस कविता – कामिनी के विलास और हाव भाव थे, भरत वाक्य दृष्टव्य है–

प्रवर्ततां प्रकृति हिताय पार्थिव

सरस्वती श्रुतमहतां महीयताम्।

ममापि च क्षमयतु नीललोहितः

पुनर्भवं परिगत शक्तिरात्मभूः ।। 7/35 ।।

(राजा प्रजाओं के कल्याण के लिए प्रवृत्त होवें, शास्त्रों के श्रवण करने से गोरवान्वित पुरुषों की वाणी पूजा को प्राप्त करे और सर्व व्यापक शान्ति वाले स्वयं भू शिव मेरे भी पुनर्जन्म को नष्ट कर दें।)

कालिदास की कृतियों की विशेषतायें

आचार्य मम्मट ने अपने काव्य–प्रकाश में यश की प्राप्ति को काव्य रचना का एक मुख्य प्रयोजन बताया है। उसके उदाहरण में कालिदास का मुख्यतः उल्लेख किया है। ध्वन्यालोक में आनन्द वर्धन ने एक जगह पर कहा है

'' **आस्मिन्नतिविचित्र कवि परम्परावाहिनि संसारे कालिदास प्रभृतयो द्वित्राः पंचषा वा महाकवयः इति गण्यन्ते।** (इस संसार में अनेक कवि पैदा होते हैं तो भी उनमें से कालिदास के समान दो–तीन या ज्यादा से पांच–छः व्यक्तियों को ही महाकवि की उपाधि हम दे सकते हैं।) कवि जयदेव ने कालिदास को ''कविकुलगुरू'' की सर्वश्रेष्ठ पदवी अर्पण की है।

पाश्चात्य पंडितों ने भी कवि को हिन्दुस्तान का शेक्सपियर कह कर प्रंशसा की है और संसार के श्रेष्ठ कवियों की श्रेणी में उनका स्थान निश्चित किया है। कालिदास ने प्राचीन तथा अर्वाचीन, पौरस्त्य और पाश्चात्य विद्वानों पर जो यह मोहनी डाली है। इसका कारण उनके वर्ण्य विषयों की विशेषतायें हैं– आनन्द वर्धन ध्वनि या व्यंग्यार्थ को प्रधानता देकर उसे काव्य की आत्मा मानते हैं। साहित्य दर्पणकार विश्वनाथ काव्य का लक्षण 'वाक्यं रसात्मकं काव्यम्' करके रस की श्रेष्ठता वर्णित करते हैं। काव्यालंकार सूत्रवृत्ति के लेखक वामन ने रीति या विशिष्ट पदरचना को काव्य की आत्मा माना है। इसके विरूद्ध भामह आदि आलंकारिक अलंकारों को ही महत्त्व देते हैं। इसके अलावा कुन्तकादि इतर ग्रन्थकारों ने अपने–अपने मतों का बडे जोर के साथ समर्थन किया है। तथापि इस चर्चा में ध्वनि, रस रीति और अलंकार ये चार मुख्य पक्ष हैं

इनमें से किसी भी पक्ष को स्वीकार करने पर यह निःसंदेह भी कहा जा सकता है कि कालिदास के सभी ग्रन्थ काव्य लक्षण की कसौटी पर पूर्ण रूप से ठीक उतरते हैं।

ध्वनि– इस मत का आंनन्द वर्धन ने अपने ध्वन्यालोक में सविस्तार प्रतिपादन किया है और उसका मम्मटादि साहित्यशास्त्रियों ने समर्थन किया है। इन गन्थकारों ने काव्य का श्रेणी विभाग (उत्तम,मध्यम,अधम) किया है। इस दृष्टि से कालिदास के काव्य बहुत ही ऊँचे दर्जे के हैं। किसी भाव को स्पष्ट शब्दों में कहने की अपेक्षा उसे खूबी से सूचित करने में कालिदास का नैपुण्य है। उदाहरण हेतु ऋषि अंगीदा द्वारा गिरिराज हिमालय से शंकर के लिये पार्वती की मंगनी की प्रार्थना करने पर पास ही बैठी हुई पार्वती का कालिदास ने कुमार सम्भवम् में जो वर्णन किया है उसे देखें–

एवंवादिनि देवर्षौ पार्श्वे पितुरधोमुखी। लीलाकमलपत्राणि गणयामास पार्वती।।

''इस तरह जब देवर्षि बोल रहे थे तब पिता के पास सिर नीचे किये बैठी हुयी पार्वती (हांथों मे लिये हुये) लीलाकमलों के पत्र गिनने लगीं।''

इस श्लोक में एक भी अलंकार नहीं हैं। तथापि कमल पत्र की गिनती के वर्णन से पार्वती की लज्जा उसके मन का प्रेम और आनंद छिपाने का उसका प्रयत्न अति सुन्दर रीति से सूचित किया गया है। इस श्लोक को उत्कृष्ट काव्य के उदाहरण तौर पर साहित्यकारों ने उद्धित किया है।

रस– विषय भेद से ध्वनि के वस्तु ध्वनि, अलंकार ध्वनि और रस ध्वनि ये तीन भेद अलंकारशास्त्रियों ने माने हैं। उनमें रस ध्वनि सबसे श्रेष्ठ है। साहित्य शास्त्र के नौ रसों में से शृङ्गार (सम्भोग, विप्रलम्भ) एवं करूण इनका कालिदास के काव्यों में उत्तम रीति से निर्वाह हुआ। शृङ्गार रस में मुख्यतः कवि के नैपुण्य को देखकार जैयदेव ने उन्हें ''कविता कामिनी का विलास कहा है।''

रीति– काव्यालंकारसूत्र वृत्ति नामक ग्रन्थ में रीति को ही वामन ने काव्य की आत्मा माना है किन्तु ध्वन्यालोककार का ध्वनिवाद रसिकों को अधिक पसन्द होने के कारण वामन का रीतिवाद पीछे पड गया। वामन ने वैदर्भी गौणी और पांचाली आदि तीन रीतियां मानी हैं। उनमें से सर्व श्रेष्ठ वैदर्भी है क्योंकि उनमें सब गुणों का सहवास रहता है। कालिदास ने अपने सभी ग्रन्थ सर्वोत्कृष्ट वैदर्भी रीति में लिखे हैं वैदर्भी रीति की विशेषता माधुर्य व्यंजक कोमल वर्णों का उपयोग और दीर्घसमासों का अभाव है। कालिदास के नाटकों सम्भाषण अति सरल भाषा में है और इसलिये वे स्वाभाविक सहज सुन्दर हुये हैं।

अलङ्कार– अलङ्कारों के शब्दालङ्कार, अर्थालङ्कार तथा शब्दालङ्कार के तीन भेद माने गये हैं। अनुप्रास, यमक, श्लेष आदि अलङ्कारों का स्वाभाविक प्रयोग कवि ने किया है। अर्थालङ्कारों में स्वाभावोक्ति और वक्रोक्ति दो भेद होते हैं। स्वाभावोक्ति में कवि देखे हुए या कल्पना किये हुए पदार्थों का अथवा व्यक्तियों का यर्थाथ, रमणीय चित्र खींचता है। वक्रोक्ति में उन पदार्थों व व्यक्तियों को अपनी कल्पना शक्ति से निर्मित अलङ्कार धारित करता है। इन दोनों में कालिदास का अप्रतिम नैपुण्य दिखाई देता है। उनके ग्रन्थों में अनेक प्राणियों, व्यक्तियों के चित्र बिल्कुल इने–गिने शब्दों में ज्यों के त्यों दिखाई पड़ते हैं। परन्तु स्वाभावोक्ति की अपेक्षा वक्रोक्तिमूलक उपमा, उत्प्रेक्षा, दृष्टान्तादि अलङ्कारों में कवि की चंचल कल्पना का रम्य विलास दिखाई पड़ता है। कालिदास की उपमाओं की प्रमुख विशेषतायें निम्न हैं–

1. रम्यता   2. यथार्थता   3. विविधता– (अ) सृष्टपदार्थीय   (आ) शास्त्रीय
(इ) आध्यात्मिक (ई) व्यावहारिक   4. औचित्य   5. पूर्णता

कवि का सृष्टि वर्णन– कवि की सब नायिकाओं को फूलों का बड़ा शौक है। कालिदास के ग्रन्थों में तत्कालीन लोगों का पुष्पानुराग दिखाई देता है। शहर के बाहर फूलों के विशाल बगीचे थे, तरूण बालिकायें उनमे फूल बीनती और शहर में जाकर बेंचती थीं। बड़े–बड़े महलों में पुष्पों की सुगन्ध प्रवाहित रहती थी। तत्कालीन स्त्रियों की पुष्पमय वेश–भूषा से कालिदास को अलका की रमणियों का निम्नलिखित वर्णन सूझा होगा–

हस्ते लीला कमलमलके बालकुन्दानुविद्धं
नीता लोघ्र प्रसवरजसा, पाण्डुतामाननेश्रीः ।
चूडापाशे नवकुरबकं चारू कर्णे शिरीषं,
सीमन्ते च त्वदुपगमजं यत्र नीपं वधूनाम् ।।

जिस अलका में स्त्रियाँ अपने हांथ में लीला कमल, केशपाश में बालकुन्द मुख पर लोघ्र पुष्प का चूर्ण, बालों के जूड़े में नया कुरूबक पुष्प, कान में सुन्दर शिरीष पुष्प और सिर के मांगों में कदम्ब पुष्प इस तरह से सब ऋतओं के पुष्पों को धारण करती हैं। अतः कवि का निसर्ग वर्णन अत्यन्त सूक्ष्म तथा मार्मिक है।

विनोद प्रियता– इनके काव्य की प्रमुख विशेषताओं में विनोद प्रियता भी प्रमुख विशेषता है। यद्यपि जयदेव ने भास को कविता कामिनी का हास्य कहा है। किन्तु ध्यान पूर्वक विचार करने से यह भावना मन में आये बिना नहीं रहती कि कालिदास को भी कविता कामिनी का हास की उपाधि शोभित होगी। विनोद के स्वभावनिष्ठ, प्रसंगनिष्ठ और शब्दनिष्ठ ये तीनों रूप कालिदास के ग्रन्थों में पाये जाते हैं। उनके नाटकों में मुख्य विनोदी पात्र विदूषक है। मालविकाग्निमित्रम में

गौतम, विक्रमोर्वशीयम में माणवक और शाकुन्तल में माढव्य। इनके स्वभावों में कहीं–कहीं वैषम्य पाया जाता है। ये तीनों ही विदूषक ब्राम्हण और नायक के नर्म सचिव हैं। तीनों ब्राम्हण होकर निरक्षर भट्टाचार्य हैं। तीनों कुरूप हैं। कालिदास ने जैसे नायकों को विदूषक दिये हैं वैसे ही नायिकाओं को विनोदी सहेलियां दी हैं। मालविकाग्निमित्र में मालिविका की समदुखी विमर्द सुरभि सखी बकुलावलिका, सदैव उर्वशी के साथ रहने वाली चित्रलेखा और शकुन्तला की स्नेहमयी विनोदनी सहेली प्रियंवदा की बातचीत में उत्तरोत्तर अधिक विनोद पाया जाता है। शाकुन्तल नाटक के पहले अंक में तीन–चार प्रसङ्ग आये हैं उसमें कवि ने सम वयस्क तरूण स्नेहमय अविवाहित लड़कियों में हमेशा होने वाले रम्य विनोद का इस सम्बन्ध में प्रोफेसर 'कीथ' का कथन दृष्टव्य है। कालिदास के ग्रन्थ प्रशंसार्ह हैं। तथापि इस बात को छिपाना उचित नहीं होगा कि वह अपने काव्य नाटकों में जीवन और दैव्य इन महत्व के प्रश्नों में बिल्कुल ध्यान नहीं देते। गेटे द्वारा की हुई प्रशंसा और सर विलियम जोन्स ने भारतवर्ष का शेक्सपियर की जो उपाधि उन्हें दी, वह यथार्थ है। अतः धन्य है वे कवि कालिदास जिनकी कीर्ति कविता के समान दोषरहित अमृत तुल्य और मधुर है। उनकी वाणी जैसे सूर्य वंश का पूर्ण वर्णन कर सकी। वैसे ही उनकी कीर्ति भी समुद्र के पर पहुंची है।

''ख्यातः कृती सोऽपि च कालिदासः,

शुद्धा सुधा स्वादुमती च यस्य।

वाणीमिषाच्चण्डमरीचिगोत्र,

सिन्धोः परं पारमवाप कीर्तिः।।''

कवि अपनी नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा के द्वारा भौतिक जगत के समानान्तर ऐसे काल्पनिक संसार की रचना करता है, जिसमे वास्तविक संसार के समान सुख–दुःख, रोग आदि का चित्रण और उनके उपायों का वर्णन होता है। अपनी प्रकृति के सूक्ष्म निरीक्षण के कारण कवि अपनी रचनाओं में वनस्पतियों का चित्राङ्कन कर उनके उपयोगो की भी चर्चा करता है। बाणभट्ट "कादम्बरी" वनस्पतियों के चित्रण का अक्षय–भण्डार कोश है। अतः शोध कार्य करने वालों की दृष्टि इस ओर गयी। डॉ0 माया त्रिपाठी ने "कादम्बरी का वानस्पतिक वैभव" लिखकर अकारादि क्रम से वनस्पतियों का परिचय' प्रस्तुत किया।

इस दिशा में अनामिका स्थित कालिदास अग्रगण्य कवि है। जिनका प्रकृति–निरूपण अत्यन्त सूक्ष्म है एवं वानस्पतिक दृष्टि से उनके समृद्ध ग्रंथ हैं। कवि ने ऋतु अनुसार शमन् या उपचार हेतु, उद्दीपक या शामक रूप में वनस्पतियों के उपयोग की चर्चा की है। खस, उशीर,कर्पूर ग्रीष्म ऋतु के लिए शीतलोपचारक कहे गये है। शृङ्गार के संयोग और वियोग

जनित सुख–दुःख के उद्दीपक या शामक वनस्पतियों की चर्चा नाटक, महाकाव्य, खण्डकाव्य इत्यादि में इस दिशा का अभी तक कोई शोध कार्य नही हुआ है।

इस हेतु प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध आठ अध्यायों में विभक्त किया गया है– प्रथम अध्याय में मानव जीवन और आयुर्वेद के बारे में वर्णन किया गया है। स्वास्थ्य की परिकल्पना, आयुर्वेद का अर्थ, प्रयोजन, आविर्भाव, आद्य परंपरा एवं प्राचीनता, विस्तार, आयुर्वेद एवं उसके अष्टाङ्ग और आयुर्वेदिक सिद्धान्तों की सम्यक विवेचना इसमें है। इस प्रकार यह अध्याय आयुर्वेद का परिचयात्मक ही बन पड़ा है।

द्वितीय अध्याय में कवि की कृतियों के विषय में विचार किया गया है। इनमें क्रमशः महाकाव्य, खण्डकाव्य एवं काव्य ग्रन्थों का सामान्य परिचय, कथावस्तु एवं किञ्चित विशेषतायें वर्णित हैं। इस प्रकार यह अध्याय भी कवि कृतियों का सामान्य परिचय ही है।

तृतीय अध्याय में आलोच्य कवि की कृतियों में प्राप्त पार्थिव वनस्पतियों के नाम, पर्याय, भाषान्तर नाम, प्रसङ्गोल्लेख आदि का वर्णन किया गया है। इसमें अशोक, अखरोट, अगरू, इक्षुम, इङ्गुदी, वट जैसे विशाल वृक्षों का वर्णन जहाँ हुआ है वहीं शिरीष, चंपक जैसे पुष्पों का भी उल्लेख किया गया है। इसमें इनके आयुर्वेदिक उपयोग का भी वर्णन हुआ है।

चतुर्थ अध्याय में जलीय प्रकृति वाली वनस्पतियों का आयुर्वेदिक महत्व एवं प्रसङ्गोल्लेख, पर्याय, भाषान्तर नाम इत्यादि का वर्णन है।

पञ्चम अध्याय में मिश्रित (अर्धजलीय) वनस्पतियों के नाम, गुण तथा आयुर्वेदिक महत्त्व, उपयोग आदि का वर्णन किया गया है। इसमें कुछ पुष्प दूर्बा, नारियल आदि के बड़े वृक्ष तथा नदियों के किनारे उत्पन्न वृक्षों को लिया गया है।

षष्ठ अध्याय में मरूभूमिज वनस्पतियों का नाम, अन्य भाषाओं में नाम, गुण, औषधीय उपयोग आदि की चर्चा की गयी है। यथा– करंजक, करौंदा, स्नुहीपत्र, शमी, दर्भ, किंशुक, कुटज, अर्क इत्यादि हैं।

सप्तम् अध्याय में आलोच्य कवि की कृतियों में प्राप्त कुल वनस्पतियों के उपयोग यथा सौन्दर्य वृद्धिकारक उपयोग एवं खाद्य सामग्री रूप में उपयोगों का वर्णन किया गया है। इस प्रकार इसमें गेहूँ और गुलाब दोनों प्रकार से वनस्पतियों का उपयोग प्रदर्शित है।

अष्टम् अध्याय में सम्पूर्ण वनस्पतियों का आलोचनात्मक वर्णन स्वतंत्र रूप, उपमान रूप आलङ्कारिक व अन्य रूपों में प्रस्तुत है।

निष्कर्षतः प्रथम व द्वितीय अध्याय क्रमशः आयुर्वेद व कवि की रचनाओं का परिचय देते हैं। तृतीय, चतुर्थ, पंचम एवं षष्ठ अध्यायों में क्रमशः पार्थिव, जलीय, अर्धजलीय एवं मरूस्थलीय चार भागों में विभाजित वनस्पतियों का आयुर्वेद में महत्व, औषधीय उपयोगों में एवं विभिन्न पर्याय,

अन्य भाषाओं में नाम आदि की विवेचना है। अन्तिम सप्तम्–अष्टम् अध्यायों में कवि रचनाओं से प्राप्त सम्पूर्ण वनस्पतियों का रोग–निवारण के अलावा सौन्दर्य व खाद्य–क्षेत्र में महत्त्व और संपूर्ण वनस्पतियों का आलोचनात्मक अध्ययन है।

शोध हेतु समीक्ष्य ग्रन्थों रघुवंशम्, कुमारसंभवम्, मेघदूतम्, ऋतुसंहारम् एवं विक्रमोऽर्वशीयम्, मालविकाग्निमित्रम्, अभिज्ञानशाकुन्तलम् आदि महाग्रंथो में महत्त्वपूर्ण वनस्पतियों का उल्लेख जो विभिन्न रूपों में हुआ है। इनका औषधीय–उपयोग की दृष्टि से अध्ययन वर्तमान समय की आवश्यकता थी। **''महाकवि कालिदास की रचनाओं में वर्णित वनस्पतियाँ तथा उनका आयुर्वेदीय महत्त्व,''** वर्तमान समय की आवश्यकता को पूरा करने का एक लघु, विनम्र प्रयास है–

''मन्दः कवि यशः प्रार्थी गमिष्याम्युपहास्यताम्।
प्रांशुलभ्ये फले लोभादुद्बाहुरिव वामनः।।
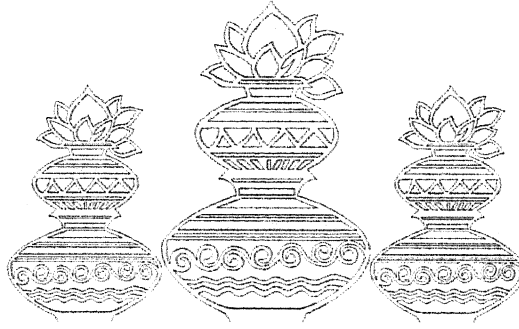
अध्याय

१

मानव-जीवन एवं आयुर्वेद

अध्याय–1

मानव जीवन और आयुर्वेद

प्रायः यह सभी जानते हैं कि **प्रयोजनमनुदिष्य मन्दोऽपि न प्रवर्तते।** फिर मनुष्य तो सर्वाधिक ज्ञानवान् प्राणी है। मनुष्य शब्द का शाब्दिक अर्थ भी है कि 'मननात् मनुष्यः अर्थात् जो मननशील व चिन्तनशील है, वह मनुष्य है। सामवेद में कहा गया है–

''मनुः कविः।''[1]

भविष्य की योजना करने वाला ही वस्तुतः मानव है।

मानव जीवन का परम् उद्देश्य पुरूषार्थ संप्राप्ति है। इसी हेतु व्यक्ति कर्मशील बना रहता है। पुरूषार्थों से हीन व्यक्ति का जन्म बकरी के गलथने के समान निरर्थक है :–

''धर्मार्थकाममोक्षाणां यस्यैकोऽपि न विद्यते।
अजागलस्तनस्येव तस्य जन्म निरर्थकम्।।[2]

प्रत्येक मनुष्य को अपने पुरूषार्थ की सिद्धि के लिए बाह्य जगत के ज्ञान की जितनी आवश्यकता होती है उतनी ही अन्तर्जगत अर्थात् अपने शरीर के ज्ञान की आवश्यकता होती है। क्योंकि पुरुषार्थ सिद्धि का आद्य साधन शरीर ही होता है :– **शरीरमाद्यंखलु धर्मसाधनम्।**[3]

धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन पुरूषार्थ चतुष्टय की रक्षा में प्राण ही कारण हैं, इसलिए जिसने इन प्राणों का विनाश किया उसने सबका विनाश कर डाला (ऐसा समझो) और जिसने इनकी रक्षा की उसने किसकी रक्षा नहीं की, अर्थात् सबका रक्षण किया–

''धर्मार्थ काममोक्षाणां प्राणाः संस्थिति हेतवः।

---

1. साम0– 1/90
2 हितो0मित्र0 श्लोक सं0–24
3 कु0 सं0 सर्ग–5/33

तन्निघ्नता किं न हतं रक्षता किं न रक्षितम्।।[1]

पुरूष षोडश कलाओं से युक्त होता है। पञ्चमहाभूत तथा आत्मा इनका समवाय सम्बन्ध से संयोग होना पुरूष कहा जाता है। इसी को कर्म पुरुष कहते हैं– शास्त्र नियत कर्मो को करते हुए ही इसी संसार में सौ वर्षों तक जीने की इच्छा करनी चाहिए :– **'कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः।**[2]

किन्तु खेद के साथ कहना पड़ता है कि मनुष्य पहले के लिए जितना उत्साही और उद्योगी रहता है, उतना ही वह दूसरे के लिए अनुत्साही और अनुद्योगी दिखाई देता है। परिणाम यह होता है कि शरीर सम्बन्धी जरा–जरा सी बात के लिए जो अपने आप ठीक हो जाया करती हैं या मामूली उपचार से ठीक की जा सकती है, उसे डॉक्टर/वैद्यों के पास दौड़ना पड़ता है।

अतः प्रत्येक व्यक्ति के लिए यह श्रेयस्कर है कि वह विद्यार्थी दशा में ही स्वास्थ्य रक्षण और व्याधिनिवारण के सम्बन्ध में सर्व साधारण जानकारी प्राप्त कर, जरा–जरा सी बात के लिए डॉ0/वैद्यों का मुखापेक्षी न बने।

सब कुछ छोंड़कर शरीर का ही अनुपालन करें क्योंकि उसके अभाव से (अन्धों के लिए जैसे दृश्य दुनिया होते हुए भी उसका अभाव ही रहता है) मनुष्यों के लिए सब होते हुए भी उनका अभाव ही हो जाता है :–

''सर्वमन्यत परित्यज्य शरीरमनुपालयेद्।

तद्भावे हि भावानां सर्वाभावः शरीरिणाम्।।[3]

मानव जीवन के चार उद्देश्य वर्णित है– धर्म, अर्थ, काम, और मोक्ष। शरीर स्वास्थ्य के बिना इन उद्देश्यों की प्राप्ति असम्भव है। आयुर्वेद ग्रन्थों में कहा गया है–

''धर्मार्थ काम मोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम् ।

रोगास्तस्यापहर्तारः श्रेयसो, जीवितस्य च ।।[4]

---

1 हितो0मित्र0श्लोक सं0–43
2 ईशा0–मंत्र–2
3 च0सं0नि0–6/11
4 च0सं0सू0–1/15

धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन चारो पुरूषार्थों को प्राप्त करने का मुख्य साधन/आश्रय शरीर का आरोग्य है। रोग उस आरोग्य का तथा श्रेयष्कर जीवन का नाश करने वाले होते हैं। इसी वास्ते महर्षियों ने लिखा है–

''आयुर्वेदोपदेशेषु विधेयः परमादरः।''

अर्थात् आयुर्वेद ही धर्मार्थकाम का मूलरूप होने से प्राणी मात्र को आयुर्वेदोपदेश (आयुर्वेदोक्त विधि) में परमादर करना चाहिए।

मृत्यु को समीप जानकर रक्षा का उपाय करना चाहिए, यदि उपाय सफल हो गया तो रक्षा हो जायेगी नहीं तो मरने से अधिक क्या होगा–

''प्रत्यासन्नेपि मरणे रक्षोपायो विधीयते,

उपाये सफले रक्षा, निष्फले नाधिकं मृते।''[1]

अतः शरीर रक्षा हेतु वैद्यक शास्त्रों का अध्ययन करें और उसके समान आचरण करने से शरीर रोगों से मुक्त रहता है यथा भाव प्रकाश में कहा गया है–

'दिनचर्या निशाचर्यामृतुचर्या यथोदितम्।

आचरन पुरूषः स्वस्थः सदा तिष्ठति नान्यथा।।[2]

वैद्यक शास्त्रों में बतायी हुई दिनचर्या, निशाचर्या और ऋतुचर्या का आचरण करने वाला मनुष्य सदा स्वस्थ्य रहता है।

शरीर विषयक ज्ञान आयुर्वेद या एलोपैथी (पाश्चात्य वैद्यक) से प्राप्त किया जा सकता है। कई वर्षो से दोनों का तुलनात्मक अध्ययन–अध्यापन तथा मनन निदिध्यासन पश्चात् यह पूर्ण विश्वास हो गया है कि आयुर्वेदोपदिष्ट मार्ग तथा सिद्धान्त अधिक नैसर्गिक अनपायी मूलग्राही, हितावह तथा उपयुक्त है और आयुर्वेद की लेखन पद्धति रोचक साहित्यिक और गागर में सागर की भाँति थोड़े में बहुत ज्ञान देने वाली है अतः मानव जीवन में आयुर्वेद का बहुत महत्व है। कहा गया है–

'' आतुरस्यभिषक् मित्रं दानं मित्रं मरिष्यतः''

''लाभानां श्रेयमारोग्यम्''[3]

---

1. सं0दिग्द0 'चतुरश्चौरः' पाठ में उद्धृत
2. स्व0वृ0वि0 पृष्ठ–7 में उद्धृत,
3. महाभारत 'यक्षयुधिष्ठिर संलापः

आयुर्वेद की वैज्ञानिकता

कुछ लोग आयुर्वेद को अवैज्ञानिक (UNSCIENTIFIC), पाश्चात्य वैद्यक को वैज्ञानिक (SCIENTIFIC) समझते हैं। किन्तु शायद उन्हें यह नहीं पता है कि 'चिकित्सा का ज्ञान सर्वप्रथम भारत से ही यूनान या अरब में पहुँचा और अरब से ही यूरोप वालों ने जाना। अन्यथा पाश्चात्य देश घोर अन्धकार में मग्न थे। जैसे एक छोटा सा उदाहरण देखें– हृदय शब्द का शतपथ ब्राह्मण तथा तदन्तर्गत वृहदारण्यक उपनिषद् में अत्यन्त सार्थक निर्वचन (निरूपित) है–

तदरेतत्त्रयक्षरंहृदयमिति हृ इत्येकमक्षरमभिहरन्त्यस्मै स्वाश्चान्ये च य एवं वेद द इत्येकमक्षरं ददत्यस्मैस्वाश्चान्ये च य एवं वेद यमित्येकमक्षरमेतिस्वर्गलोकंयएवं वेद।।''[1]

हरतेर्ददानेरेतेर्हृदय शब्दः। अर्थात हृञ् हरणे दद् दाने और इण् गतौ इन तीन धातुओं से हृदय शब्द सिद्ध होता है। अतः पाचन से बने हुए रस का आहरण, 'अहरहर्गच्छतीति रसस्तस्य च स्थानं हृदयम्' एवं समग्र शरीर में गये हुए रक्त को अशुद्ध हो जाने पर पुनः अपने में आहरण करना (सिराभिर्हृदयं चैति) हृ का अर्थ है तथा सर्व धातुओं को शुद्ध रक्त प्रदान करना दद् धातु का अर्थ है, निरन्तर संकोच और विकास रूप में गति करते रहना इण् (संकोचंच विकासंच स्वतः कुर्यात् पुनः पुनः ।)'' का अर्थ है।

इस तरह महर्षियों ने हृदय के वास्तविक तथा विज्ञान सम्मत अर्थ को सैकड़ों वर्ष पूर्व जान लिया था, किन्तु पाश्चात्य देशों में 1628 ई0 में विलियम हार्वे ने रक्तानुधावन का आविष्कार किया तथा मैलपीधी ने 1661 ई0 में केशिकाओं का आविष्कार किया। इसके पूर्व उन देश वालों को हृदय के वास्तविक कार्य का ज्ञान ही नहीं था। उक्त वैज्ञानिकों ने भी जो हृदय के कार्य का पता लगाया है, उसमें भी आयुर्वेद शास्त्र रूपी ज्योति ही प्रमुख कारण रही।

इसमें संदेह नहीं है कि पाश्चात्य वैद्यक आधुनिक होने के कारण भौतिक विज्ञान उसके विकास का बड़ा भारी अधिष्ठान रहा है तथा उसके दिन–दिन व्यवहार में उससे बहुत सहायता ली जाती है। परन्तु इसलिए इसको वैज्ञानिक नहीं कहा जा

---

1 बृहदा0–पंचम अध्याय तृतीय ब्राह्मण–1

सकता है। इसका कारण यह है कि भौतिक विज्ञान का प्रधान लक्षण निर्दोषता या यथार्थता (ACCURACY) उसमें नहीं है। यदि वह होती तो केवल भारतवर्ष में ही नहीं भौतिक विज्ञान के शिखर में पहुंचे हुए यूरोप अमेरिका के देशों में उसके चिकित्सकों द्वारा निदान चिकित्सा में जो असंख्य गलतियाँ हुआ करती हैं वे कदापि न होती। चिकित्सा की त्रुटियों का ज्ञान उसके भुक्त भोगियों को हो जाता है परन्तु निदान की– त्रुटियों का ज्ञान विशेषज्ञों को छोड़कर अन्यों को नहीं हो पाता है अतः उनके कुछ प्रमाण नीचे दिए जाते हैं– सुप्रसिद्ध हृदय रोग विशेषज्ञ सरजेम्स मेकेन्झी कहते हैं–

'अनुसंधान और मरणोत्तर परीक्षण के पश्चात मैं इस परिणाम पर पहुंचा हूँ कि चिकित्सक साधारण रोगों में सत्तर (70%) प्रतिशत गलत निदान करते हैं असाधारण रोगों में तो यह प्रतिशतता और अधिक होगीं।[1]

बोस्टन के सुप्रसिद्ध चिकित्सक और हावर्ड विश्वविद्यालय के सम्मानित प्राध्यापक डॉ0 रिचर्ड ने केवल हजार रोगियों के विवरण का विश्लेषण करके कहा है–

" कुल मिलाकर पचास प्रतिशत निदान सही और पचास प्रतिशत निदान बिल्कुल गलत थे।"[2] ग्लासगो कि रॉयल फैकल्टी ऑफ सर्जन के सभापति की हैसियत से सर डेविड ड्रमण्ड ने अपने भाषण में कहा–

" मरणोत्तर परीक्षण से यह बात सिद्ध हो चुकी है कि औसत दर्जे के चिकित्सकों का निदान अस्सी (80) प्रतिशत गलत हुआ करता है।[3]

पश्चिमी चिकित्सा प्रणाली तथा भारतीय आयुर्वेदिक प्रणाली में सबसे बड़ा तथा मौलिक अन्तर यह है कि आयुर्वेद मानव के आचरण से रोग तथा चिकित्सा का निर्णय करता है, तथा अन्य प्रणाली रोग के लक्षण से निदान करते हैं। यथा माधव निदान में कहा है :–

''दिवास्वापा तु दोषेन, प्रतिशायश्च जायते।

प्रतिशायादयो कासः, कासान् संजायते क्षयः।।[4]

1,2,3.– स्वा0शि0 पाठावली–भूमिका से, 4.आयु0का वृ0इति0–अत्रिदेव, प्रस्तावना मे उद्धृत

यदि बिना आदत के दिन में (जाड़ा या वर्षा ऋतु) में व्यक्ति सोता है, तो उसे जुकाम पैदा होगा और उससे खाँसी होगी यदि परवाह न की गई, तो उसे क्षय रोग हो जायेगा।"

इसी प्रकार महाराज धन्वन्तरि ने भी स्वस्थ्य रहने का नियम बताया है :–

"कोऽरूक, कोऽरूक्, कोऽरूक,

हितभुङ् मितभुङ् जितेन्द्रियों व नियतः।

सोऽरूक् सोऽरूक् सोऽरूक्,

शतपदगामी च वामशायी यः।।"

वही भोजन करें जो इसके शरीर के अनुकूल हो पर पेट कसकर न खाय और जो काम करे, नियम पूर्वक करें अर्थात समय का पाबन्द रहे, वही निरोगी रहेगा, जो कम से कम सौ कदम रोज पैदल चलता हो व बायें करवट सोता हो।"

आयुर्वेद के एक–एक सूत्र का टुकड़ा करोड़ों रूपयों से अधिक काम करने वाला है, किन्तु फिर भी कुछ लोग इसकी निन्दा करते हैं।"

"निंदति कंचुकिकारं प्रायः शुष्क स्तनी नारी।

परन्तु उन अकल के दुश्मनों को निन्दा करने से आयुर्वेद निंदनीय नहीं हो सकता। अनेकानेक ऐसे स्थल हैं कि उनका वर्णन आयुर्वेद शास्त्र के अन्यत्र देखने को नहीं मिलता जैसे हिचकी, वमन, वेग, निःश्वास के वेग रोकने से क्या–क्या रोग होते हैं, कफवाही छिद्रों के रूकने से कौन–कौन रोग होते है इत्यादि बहुत सी बातों का पता हमारे आयुर्वेद शास्त्र में ही लगता है।

अतः मनुष्य आत्मेन्द्रिय मनोबुद्धयादि युक्त होने से उससे संबन्धित कोई भी वैद्यक जड़ सृष्टि से संबन्धित भौतिक विज्ञान के समान वैज्ञानिक नहीं हो सकता है। माननीय उच्च न्यायालय इलाहाबाद के मार्कण्डेयकाटजू एवं आर0एस0त्रिपाठी द्वय न्यायमूर्तियों ने 25 मई 2004 को एक जजमेण्ट (रिट संख्या 624/04) देते समय माना कि प्लास्टिक सर्जरी का आविष्कार आयुर्वेद ने किया उन्होंने लिखा कि–

"विज्ञान की मदद से हमने हजारों वर्ष पूर्व जिस समय यूरोप (ग्रीक तथा रोम को छोड़कर) के लोग जंगलों में रहते थे, महान बलशाली सभ्यता का निर्माण किया था। हमने महान वैज्ञानिक खोजों जैसे गणित में दशमलव पद्धति, चिकित्सा में प्लास्टिक

सर्जरी आदि का आविष्कार किया था। हालांकि उसके पश्चात् हमने अवैज्ञानिक पथ, अन्धविश्वास, असत्यधर्मी खोखली मान्यताओं का अनुसरण किया, जो कि हमें विनाश की ओर ले गया। इसलिए यहाँ से निकलने का रास्ता हमारे पूर्वजों के द्वारा दिखाए वैज्ञानिक पथ की ओर पुनः वापस जाने का है। वह रास्ता जो कि चरक, सुश्रुत, आर्यभट्ट, ब्रह्मगुप्त, रामानुजाचार्य और रमन का है। तभी हम उच्च वैज्ञानिक गुणवत्ता तथा तार्किक विचार की गुणवत्ता बनाए रखेंगे और हमारा राष्ट्र संसार में उन्नति कर पायेगा।[1]

आयुर्वेद को सभी चिकित्सा विधाओं का मूल स्रोत माना गया है। आयुर्वेद एक विज्ञान है। विज्ञान का दायरा सीमित नहीं होता। तभी तो अग्निवेश जैसे तंत्रकारों ने भी इसकी छूट दी है–

याभिः क्रियाभिः जायन्ते शरीरे धातवाः समाः।

सा चिकित्सा विकारणां कर्म तद्भिषजां मतम्।।[2]

अर्थात् जिन क्रियाओं द्वारा शरीर में विषम हुए रोष, धातु मल, अपनी विषमता को छोड़कर नियत सम प्रमाण में हो जायें, वह चिकित्सा उत्पन्न हुए रोग का तो शमन करें किन्तु किसी दूसरे रोग को पैदा न करे तो वह उत्तम चिकित्सा हुई किन्तु जो चिकित्सा किसी एक रोग को तो शान्त करें, किन्तु किसी दूसरे रोग को उत्पन्न कर दे वह चिकित्सा श्रेष्ठ नहीं है। नष्टे मूलं नैव पत्रं नैव शाखा, इसी मूल (आयुर्वेद) के विषय में 15 अगस्त 2001 के स्वतंत्रता दिवस के भाषण के समय माननीय प्रधानमंत्री अटल बिहारी बाजपेयी ने कहा भी था कि–In recent years, There has been a great interest bothin India and abroad in Ayuved, Unani, Sidha, Homeopathy, Yoga & Naturopathy and other Indian systems of Medicine, We are considering making available a law. Cost pit containing certain traditional medicines and Herbal products, which have proped their efficacy ceper centeries intresting many common ailements. I urge our prisans and pharmaceutical companies to size

1. चि०प०रोगों की समूल चिकित्सा विशे० 1–2, 2005 पृ०–13
2. च०सू०–16/25

this new opportunity created by the growing world wide attraction for ayurcedic products.[1]

यदि हम थोड़ी देर के लिए यह भी मान लेते हैं कि प्रधानमंत्री जी का यह राजनीति से प्रेरित वक्तव्य था, तो श्री के0 आर0 नारायणन् तत्कालीन महामहिम राष्ट्रपति महोदय ने 19 फरवरी 2001 लोक सभा के संयुक्त सत्र में आयुर्वेद के प्रति अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा था–

Ayurveda, Unani, Sidha, Homepathy, Neturopathy, Yoga, Offer a wide range of prevetine, promoter & curatiue Facement that are both cast effective & efficious. We are working to end the long neglect at these also being...

Protect our praditi oner knowledgement in this area, which promise to attracts immense alobal attention in the comming year.[2]

वैसे तो मनुस्मृति में आचार्य मनु ने सुख और दुःख ही व्याख्या इस प्रकार की है–

'सर्व परवशंदुःखं सर्वमात्मवशं सुखम्।

सभी पराधीन वस्तुएं दुख उत्पन्न करने वाली तथा अपने आधीन वस्तुएं सुख प्रदान करने वाली हैं।

'किन्तु मनोरथानाम् गर्ति न विद्यते।'[3]

मनोरथों की कोई गति नहीं होती।

अतः सुख और दुःख मानसिक विकार होने पर भी मनुष्य भौतिक पदार्थों में सुख ढूंढता है, मानव जीवन के छैः सुख शास्त्रों में बताये गये हैं।

''अर्थागमो नित्यमरोगिता च. प्रिया च भार्या प्रियवादिनी च।

वश्यश्च पुत्रोऽर्थकरी च विद्या, षड्जीव लोकस्य सुखानि राजन्।।'[4]

1. चि0प0वि0 1,2–2005 पृ0 15 में उद्धृत
2 चि0प0वि0 1,2–2005 पृ0 15 में उद्धृत
3. कु0सं0–5/64
4. हितो0मित्र0श्लोक–19

'धन का प्रतिदिन आना, निरोगी रहना, प्रिय पत्नी, प्रियवादिनी, आज्ञाकारी पुत्र, धन देने वाली विद्या ये संसार के छः सुख बताये गये हैं।' निरोगी कायात्मक सुख हम आयुर्वेद के अध्ययन, अवबोधन और अनुष्ठान से ही प्राप्त कर सकते हैं क्योंकि **''ज्ञाने सर्वं प्रतिष्ठितम्''**।

हितोपदेश मे कहा गया है कि अनेकों संदेहों को दूर करने वाला तथा परोक्ष का दर्शक शास्त्र रूपी नेत्र जिसके पास नहीं है वह लोचन होने पर भी अन्धा है। यतोहि :–

''अनेक संशयोच्छेदि परोक्षार्थस्यदर्शकम्।

सर्वस्व लोचनं शास्त्रं नास्त्यन्ध एव सः।[1]

इस विषय में श्रीमान् आयुर्वेद महर्षि वाग्भटाचार्य ने लिखा है–

''आयुः कामायमानेन, धर्मार्थ सुख साधनम् ।

आयुर्वेदोपदेशेषु, विधेयः परमादरः ।।

दीर्घ जीवितमारोग्यं धर्ममर्थं सुखं यशः ।

पाठावबोधानुष्ठानैरधिगच्छत्यथो ध्रुवम् ।।[2]

आयुर्वेद शब्द का अर्थः– आयुर्वेद शब्द आयु एवं वेद इन दो शब्दों के मेल से बना है। आयु के अर्थ क्रमशः इस प्रकार है–

1. **ऐति गच्छति इति आयुः।** अर्थात् जो निरन्तर गतिमान रहती है, उसे आयु कहते हैं।
2. **आयुर्जीवितकालः।** जीवित काल को आयु कहते हैं।
3. **चैतन्यानुवर्तनमायुः।** अर्थात जन्म से लेकर चेतना के बने रहने तक के काल को आयु कहते हैं।[3]
4. **शरीर जीवयो योगो जीवनम् तेनावच्छिन्नः कालः आयु।**[4] अर्थात शरीर एवं जीव के संयोग को जीवन कहते हैं तथा जीवन से संयुक्त काल को आयु कहते हैं।

---

1. हितो0मित्र0श्लोक–10
2. अ0हृ0सू0–1/2
3. च0सू0–30/22
4. क0आ0अंक जन0,फर0–2001, पृ0 173 से उद्धृत

5. **शरीरेन्द्रिय सावात्मसंयोगो धारि जीवितम् ।**

नित्यगश्चानुबन्धश्च, पर्यायैरायुरुच्यते ।।[1]

शरीर (PHYSICAL BODY) इन्द्रिय (SENSES) सत्व (PSYCHE) एवं आत्मा (SOIL) के संयोग को आयु कहते हैं। धारि, जीवित, नित्यम तथा अनुबन्ध ये आयु के पर्याय हैं।

यह आयु चार प्रकार की कही गयी है–

1. **सुखायु** – शारीरिक वं मानसिक रोगों से सर्वथा मुक्त व्यक्तियों की आयु।
2. **दुःखायु** – रोगावस्था की आयु।
3. **हितायु** – सर्व प्राणी हितैषी, सदाचारी, दानी, तपस्वी आदि लक्षणों से युक्त व्यक्ति की आयु।
4. **अहितायु**– हितायु के विपरीत लक्षणों वाले व्यक्ति की आयु।

वेद शब्द सुनकर हम भारतीयों का हृदय गर्व से प्रफुल्लित हो उठता है। निरूक्त में कहा है– **'सर्वाणिनामानि आख्यातजानि'** अर्थात सभी नाम अख्यान (क्रिया) से उत्पन्न होते हैं। वेद भी एक नाम है उसमें विद् ज्ञाने, विद् विचारणे विद् सत्तायाम और विद् लाभे।[2] के द्वारा जिस शास्त्र से आयु का ज्ञान, आयु सम्बन्धी विचार तथा आयु की सत्ता और आयु की प्राप्ति होती है, उसे आयुर्वेद कहते हैं।

वेद शब्द का अर्थ ज्ञान (KNOWLEDGE) है। अतः आयुर्वेद का सामान्य अर्थ हुआ– जीवन का विज्ञान (SCINCE OF LIFE)।

संक्षेप में– **'आयुषो वेदः आयुर्वेदः 'या' आयुर्वेदयत्यायुर्वेद''**।

अर्थात् आयुर्वेद वह शास्त्र है, जिसमें आयु से सम्बन्धित सर्वांगीण ज्ञान का वर्णन किया गया हो। दूसरे शब्दों में महर्षि चरक ने आयुर्वेद की परिभाषा निम्नवत् दी है:–

''हिताहितं सुखं दुःखमायुस्तस्य हिताहितम्।
मानं च तच्च यत्रोक्तमायुर्वेदः स उच्यते।।[3]

अर्थात आयुर्वेद वह शास्त्र है जिसमें हितायु, अहितायु, दुःखायु एवं सुखायु– इन चतुर्विध आयुओं के लिए क्या हित है, क्या अहित है, आयु का मान क्या है एवं इसका

1. च0सू0–1/16 2. ऋग0भा0भू0–आचार्य सायण, पृ0–2,3 3. च0सू0–1/15

स्वरूप क्या है, आदि का वर्णन किया गया हो।

अतः मानव आयुर्वेद शास्त्र द्वारा आयु के विषय में ज्ञान प्राप्त करता है, इसलिए इसका नाम 'आयुर्वेद' है।

आयुरस्मिन् विद्यतेऽनेन वाऽऽयुर्विन्दन्ति इत्यायुवेदः।[1]

जिस शास्त्र के द्वारा आयु (सुखी, दुःखी, हितकर, अहितकर आयु) का हित एवं अहित आहार–विहार (स्वस्थवृत्त) का व्याधि (रोग) निदान तथा शमन (चिकित्सा) का ज्ञान प्राप्त किया जाता है। उस शास्त्र का नाम आयुर्वेद है।[2]

''आयुर्हिताहितं व्याधिर्निदानं शमनं तथा ।
विद्यते यत्र विद्वद्भिः स आयुर्वेद उच्यते ।।

आयुर्वेद का प्रयोजन

आयुर्वेद के प्रमुख दो उद्देश्य हैं–

1. स्वस्थ के स्वास्थ्य का परिरक्षण। 2.आतुर के विकार का प्रशमन।

यथा आचार्य चरक का उद्घोष हैः–

''प्रयोजनं चास्य स्वस्थ्स्य स्वास्थ्य रक्षणमातुरस्य विकार प्रशमनं च।''[3]

इसका प्रयोजन रोगियों को रोगों से मुक्त करना और स्वस्थ्य व्यक्तियों के स्वास्थ्य की रक्षा करना है। यतोहि सुश्रुत ने लिखा है–

'व्याध्युपसृष्टानां व्याधिपरिमोक्षः, स्वस्थस्य रक्षणं च ।'[4]

इस प्रकार कारण और कार्य की सामान्यता से परिभाषा कहकर इस शास्त्र में केवल धातु साम्य (रसरक्तादि धातुओं की समानता) व अरोग्यता का विचार ही इस आयुर्वेद का मुख्य प्रयोजन है किन्तु कार्य–कारण विचार इस शास्त्र का उद्देश्य नहीं है[5]–

'इत्युक्तं कारणं कार्य धातु साम्यमिहोच्यते।
धातु साम्यक्रिया चोक्तातन्त्रस्यास्य प्रयोजनम्।

वैसे तो आयुर्वेद का प्रयोजन उसके शब्द पर ही दृष्टिगोचर होता है। पहले

---

1. सु0सू0–1/15
2. क0आ0अंक, जन0फर0–2001 पृ0172
3. च0सू0–30/15, पृ0–157
4. सु0सू0–1/14
5. च0सू0–1/26

आयु शब्द पर ही विचारें इस शरीर रूपी यन्त्र को सुचारू रूप से रखते हुए कौन संचालन करता है? उस शक्ति को प्राण शक्ति कहते हैं। इसीलिए उपनिषदों में प्राण को ब्रह्म कहा गया है। जैसे छान्दोग्य 7/15 में प्राण की ब्रह्म रूप से उपासना का वर्णन है। तैत्तिरीयोपनिषद् की भृगुवल्ली के तृतीय अनुवाक 6 में वर्णित है:–

''प्राणो ब्रह्मेति व्यजानात् प्राणाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते ।

प्राणेन जातानि जीवन्ति प्राणं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ।''

प्राण ब्रह्म है, इस प्रकार जानो, क्योंकि सचमुच प्राण से ही ये समस्त प्राणी उत्पन्न होते हैं। उत्पन्न होकर प्राण से ही जीते हैं, और अन्त में यहाँ से प्रयाण करते हुए प्राण मे ही सब प्रकार से प्रविष्ट हो जाते हैं।

प्राण शरीर के कण–कण में व्याप्त है। शरीर के कर्णेन्द्रियादि तो सो भी जाते है, विश्राम कर लेते हैं, किन्तु यह प्राण शक्ति कभी भी न सोती है, न विश्राम ही करती है। रात–दिन अनवरत रूप में कार्य करती ही रहती है। 'चरैवेति–चरैवेति' यही इसका मूल मंत्र है। जब तक प्राण शक्ति चलती रहती है, तभी तक प्राणियों की आयु रहती है। इसलिए आयु (प्राण शक्ति) को यथावत् रखने का ज्ञान जो कराये वही आयुर्वेद है। प्राणों को स्वस्थ्य कैसे रखा जाय इसी की शिक्षा आयुर्वेद देता है। प्राणों का हरण करने वाले उन्हें क्षति पहुंचाने वाले रोग हैं।

आयुर्वेद का आविर्भाव

'सुखार्थाः सर्व भूतानां मताः सर्वाः प्रवृत्तयः।'[1] सभी प्राणियों की सभी प्रवृत्तियाँ सुख के लिए होती हैं।

''समग्रं दुःखमायातमविज्ञाने द्वयाश्रयम्।

सुखं समग्रं विज्ञाने विमले च प्रतिष्ठितम् ।।''[2]

---

1 अ०ह्र०सू०अ०–2/20
2. च०सं०सू०–30/47

सम्पूर्ण दुःख अनभिज्ञता (मूर्खता) का फल है और समस्त सुख विमल विज्ञान में ही रहते हैं। यह महर्घ आयुर्वेद अज्ञानियों के पक्ष में अर्थ प्रकाशक है।[1] इसकी अनादि ज्ञान–धारा भारतीय जनमानस को, अविरल सिंचित व अभिसिक्त करती आ रही है। भारतीय संस्कृति का संदेश" **सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।**" (सभी सुखी और सभी निरोग हों।) को आयुर्वेद ही संबल प्रदान करता है। जिससे "वसुधैव कुटुम्बकम्" की भावना फैली है। यह संसार दुःखों से संतप्त होकर इनसे छुटकारा पाना चाहता है। यह सुख–दुख का अनुभव जब से प्रारम्भ हुआ तभी से आयुर्वेद का भी प्रारम्भ माना जाता है।[2] महर्षि सुश्रुत जी की मान्यता भी इस प्रकार है– 'यह आयुर्वेद अथर्ववेद का उपांग है इसकी रचना स्वयंभू (ब्रह्मा) ने प्रजाओं के उत्पन्न करने के पूर्व कर ली थी।[3] विद्वद्गण वेदों के समान आयुर्वेद को भी सृष्टि से पूर्व का मानते हैं। अन्य विद्याओं के समान आयुर्वेद की भी परम्परा ब्रह्मा से मानी जाती है।[4] ब्रह्मा जी ने आयुर्वेद को एक लाख श्लोकों से ग्रंथित किया था जिसमें 1000 अध्याय थे–

'इह खल्वायुर्वेदं नामोपाङ्गमथर्ववेदस्यानुत्पाद्यैव प्रजाः।

श्लोक शत सहस्त्रमध्याय सहस्त्रंच कृतवान् स्वयम्भूः।।'[5]

आयुर्वेद ज्ञाताओं में ऐसी अवधारणा है कि अष्टांगों से परिपूर्ण आयुर्वेद की प्रथम अध्येता दक्ष प्रजापति थे।

दक्ष से इस ज्ञान को अश्विनी कुमारों ने सीखा। जो देवभिषक् माने जाते हैं। अश्विनी कुमारों के नाम अनेक आयुर्वेदीय चमत्कार लिखे हैं। जैसे दध्यङ्ङाथर्वण ऋषि के सिर को काटकर सुरक्षित रखना और घोड़े का सिर लगाना तथा पुनः सिर काट देने पर उनके सिर को लगा देना।[6] और दीर्घतमा ऋषि का कटा सिर जोड़ना।[7]

---

1 च0सं0सू0–30/48

2 **'सोऽयमायुर्वेदः शाश्वतो..... नित्यत्वाच्च।'** च0सं0सू0–30/15

3 सु0सं0सू0–1/3

4 **'ब्राह्मण हि... पुनस्ततः।'** च0सं0सू0–1/2 एवं मत्स्यपुराण–3/4

5 सु0सं0सू0–1/6

6 वृहदारण्यकोपनिषद् शा0भा0–2/5/16

7 ऋ0–1/158, क0आ0अं0 के पृ0–41 में उद्धृत

कटी जाँघ के स्थान पर लोहे की जाँघ लगाना आदि।[1] ऋग्वेद में स्पष्ट लिखा है कि देव वैद्य अश्विनी कुमारों ने औषधि प्रयोग द्वारा ही ऋषि को युवा बनाया था– **'युवं च्यवानमश्विना जरन्तं पुनर्युवानं चक्रथुः शचीभिः**। हे! अश्विनी कुमारो! (युवं) तुम दोनो ने (शचीभिः आत्मीयैर्भैषज्य लक्षणैः कर्मभिः) (सायण) भैषज्य प कार्य के द्वारा (जरन्तं च्यवानम्) बूढ़े च्यवन ऋषि को (युवानम्) फिर से जवान (चक्रथुः) किया था।"[2]

बूढ़े अश्विनी कुमारों से इस ज्ञान को इन्द्र ने सीखा। यहाँ तक की परम्परा देव लोक में रही। मृत्यु लोक में यह विद्या कैसे आई? किसने सर्व प्रथम पृथ्वी पर इस ज्ञान को प्राप्त किया? इस विषय में विद्वानों में गहरा मतभेद है। इस विषय में एक आख्यान प्रचलित है–

धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष की साधनाओं में लोगों की शारीरिक शक्तियाँ क्षीण होने लगी, तब इस बाधा को दूर करने में लिए हिमालय के पवित्र धाम पर परम ज्ञानी व कारूणिक ऋषियों की मण्डली एकत्रित हुई। ऋषि मण्डली ने अपने ध्यान योग व चिन्तन के माध्यम से यह जाना कि देवराज इन्द्र ही इस बाधा को दूर कर सकते हैं।"[3]

चरक संहिता के सूत्रस्थानम् प्रथमोऽध्यायः में भी यही बात कही गई है–

'तदाभूतेष्वनुक्रोशं पुरस्कृत्य महर्षयः ।

सुमेताः पुण्यकर्माणः पार्श्वे हिमवतः शुभे ।[4]

भूतल पर आयुर्वेद का अवतरण

ऋषियों की प्रेरणा से महर्षि भरद्वाज स्वर्गलोक गये, वहाँ इन्द्र से अंगों सहित आयुर्वेद को पढ़कर पृथ्वी पर लौट आये और आयुर्वेद से पृथ्वी की जनता को रोग मुक्त कर दिया। इसके बाद शिष्य –परम्परा से आयुर्वेद का ज्ञान सब जगह फैल गया । महर्षि भरद्वाज से धन्वन्तरि ने पढ़कर आयुर्वेद को आठ भागों में विभक्त कर दिया ।

---

1 ऋ0–1/116/15
2 ऋ0–1/117/13
3 संस्कृत साहित्य का संक्षिप्त इतिहास–वाचस्पति गैरोला पृ0–292 एवं भावप्रकाश पूर्व0–1/46एवं 1/19 एवं दृष्टव्य
4.च0सं0सू0–1/3

''आयुर्वेदं भरद्वाजात्प्राप्तेः भिषजां क्रियाम्।
तमष्टधा पुनर्व्यस्य शिष्येभ्यः प्रत्यपादयत्।।''[1]

जब इस धरती पर यह विद्या आयी, तब इसके अनेक भेदोपभेद हो गये । सभी ऋषिगण अपने मत की श्रेष्ठता को प्रतिपादित करने के लिये इन्द्र से अपना सीधा सम्पर्क अभिव्यक्त करते हैं। मेरी दृष्टि में आयुर्वेद के भिन्न–भिन्न अंगों के ज्ञान को इन्द्र ने भिन्न–भिन्न ऋषियों को प्रदान किया। शायद इसीलिये धन्वन्तरि के साथ शल्य, कश्यप के साथ कौमारभृत्य, भरद्वाज के साथ कायचिकित्सा का सम्बन्ध जाना जाता है। अत्रि देव विद्यालंकार जी ने इन तीनों ऋषियों का सम्बन्ध इन्द्र के साथ बतलाया है।[2] आज भी यह परम्परा देखी जाती है कि जो विद्यार्थी जिस विषय में रुचि रखता है उसी का अध्ययन करता है।

आयुर्वेदीय ऋषियों के नामों के विषय में विद्वान एकमत नहीं हैं। उदाहरणार्थ–''आत्रेय शब्द को लिया जाय, अत्रिका पुत्र आत्रेय होता है। पुनर्वसु, आत्रेय, कृष्णात्रेय, भिक्षु आत्रेय आदि शब्द आत्रेय के विषय में उलझने पैदा करते हैं। अत्रिदेव जी ने और पुनर्वसु आत्रेय और कृष्णात्रेय को एक माना है।[3] इसी नाम के लिये चरक संहिता[4] और भेल संहिता[5] में 'चन्द्रभागी' शब्द प्रयुक्त होता हैं। इन वर्णनों के द्वारा स्पष्ट होता है कि आत्रेय शब्द सम्भवतः गोत्रवाची है। चरक और सुश्रुत संहिताओं में ऋषियों के विषय में भेद दिखाई देता है।[6]

चरकसंहिता में भरद्वाज के लिये 'कुमार शिरा' नाम का प्रयोग किया गया है। चरक संहिता में ही एक स्थल पर पुनर्वसु आत्रेय का भरद्वाज के मतों से अन्तर दिखलाया गया है। किन्तु यह अनुचित है क्योंकि इन्द्र से सीधे भरद्वाज जी ने शिक्षा ग्रहण की थी। उनके सिद्धान्तों का खण्डन सहज स्वीकार नहीं है। हो सकता है भरद्वाज नामक कोई अन्य विद्वान रहा हो उसके सिद्धान्त पुनर्वसु आत्रेय द्वारा खण्डित किये गये हों। इसी प्रकार 'धन्वन्तरि शब्द पर भी अनेक भ्रमपूर्ण विचार अवबोधित होते हैं। धन्वन्तरि शब्द किसी व्यक्ति विशेष का बोधक है अथवा किसी शाखा विशेष का। चरक संहिता में कहीं गर्भ के अंगो का निर्माण करने वाले के रूप में प्रयुक्त

1. क0आ0अं0 पृ0–48 2 आयुर्वेद का इतिहास–अत्रिदेव, पृ0–46 3. वही पृ0–51
4. च0सं0सू0अ0–13 5 भेल संहिता पृ0–30 6. च0सं0शा0अ0–6/21एवं दृष्टव्य अ0–13

हुआ है, तथा कहीं गुल्म चिकित्सक के रूप में।[1] इसी तरह धन्वन्तरि शब्द बहुबचनान्त प्रयुक्त होना शाखा विशेष का बोधक हो सकता है। इन विविध वर्णनों से यही स्पष्ट है कि धन्वन्तरि सर्वप्रथम शल्य चिकित्सक के रूप में विख्यात हुए तत्पश्चात् जो इनके शिष्य हुए तो उनकी एक शाखा चल निकली और वह धन्वन्तरि नाम से विख्यात हुई। इतिहास के अध्ययन करने से आयुर्वेद की प्रमुख तीन परम्परायें प्राप्त होती हैं–

1. भास्कर सम्प्रदाय 2. धन्वन्तरि सम्प्रदाय 3. आत्रेय सम्प्रदाय

आयुर्वेद अवतरण को हम संक्षेप में इस प्रकार समझ सकतें हैं[2] –

आयुर्वेद अवतरण

1. च०सं०शा०अ०–5 2. क०आ०अं०पृ०–173
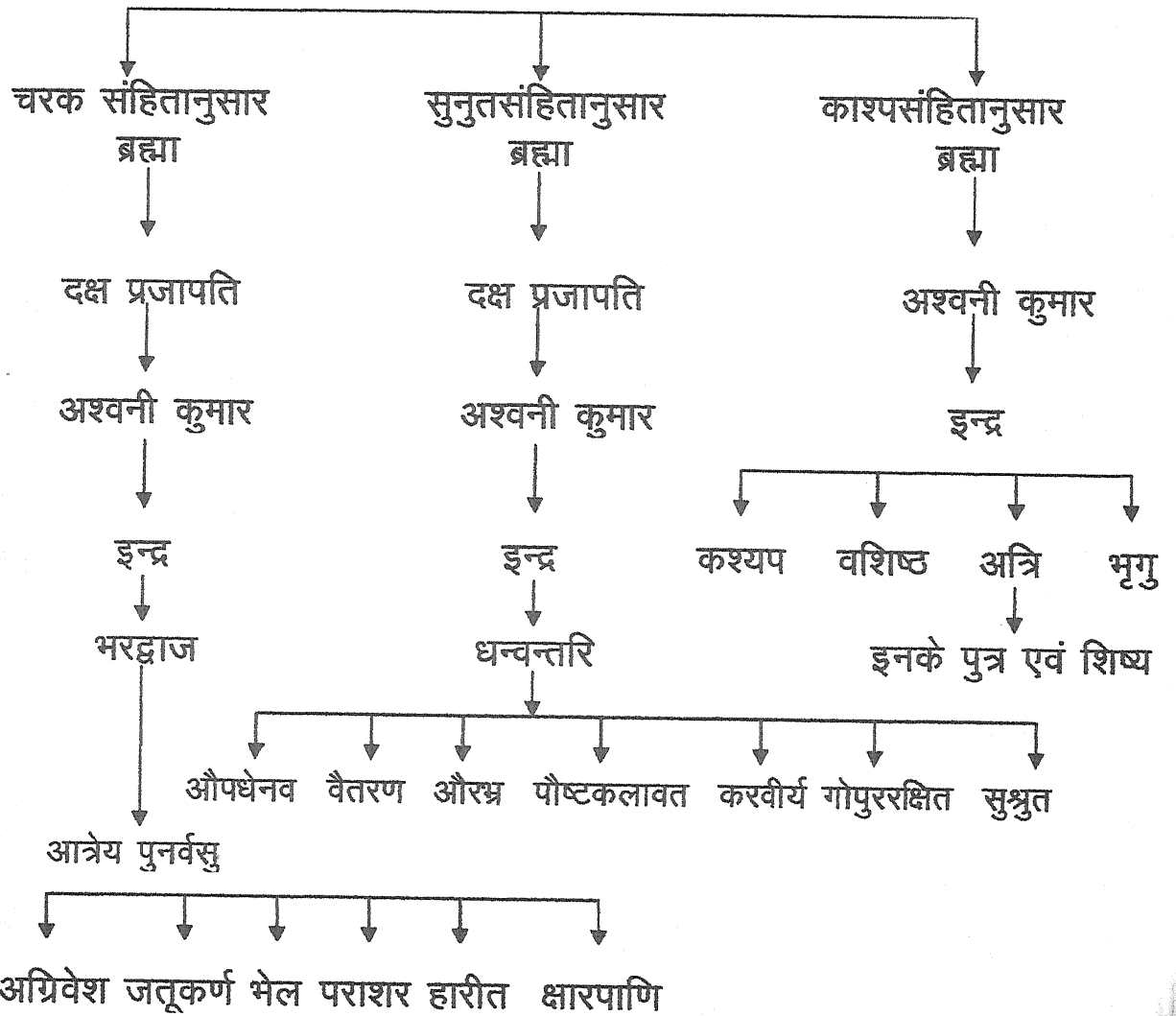
आयुर्वेद की आद्य परम्परा

आयुर्वेद की आद्य परम्परा वैदिक काल से उपलब्ध होती है। वेदों को प्राचीनतम् साहित्य माना जाता है। ये समस्त ज्ञान के श्रोत कहे जाते हैं । दुर्भाग्य की बात यह है कि जो आज वैदिक साहित्य उपलब्ध होता है, वह अधूरा व अपूर्ण है। विदेशियों ने आक्रमण व शासन में इस साहित्य को क्षत–विक्षत कर विनष्ट कर दिया। वैदिक साहित्य चार भागों में विभक्त है– संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद्। संहितायें चार है–ऋक संहिता, सामवेद संहिता, यजुर्वेद संहिता व अथर्ववेद संहिता । वैसे तो संपूर्ण संहिताओं में आयुर्वेदीय सामाग्रियाँ

यत्र–तत्र उपलब्ध होती हैं। परन्तु अथर्ववेद में सर्वाधिक उपलब्ध है। इसे संक्षिप्त रूप में निम्नवत् अभिव्यक्त किया जा रहा है–

ऋग्वेद में आयुर्वेद

ऋग्वेद संसार का सर्वाधिक प्राचीन ग्रन्थ माना जाता हैं आयुर्वेद ऋग्वेद का उपवेद है।[1] ब्रह्मवैवर्त पुराण में आयुर्वेद को अञ्चमवेद कहा गया है। ऋग्वेद में ऐसा सूक्त प्राप्त होता है। जिसमें औषधियों का वर्णन मिलता है।[2] इसमें औषधियों के नाम व उनका वर्गीकरण मिलता है। उनके रोगोंत्पादक कृमियों का वर्णन भी ऋग्वेद में मिलता है।[3] आचार्य प्रियवत् शर्मा का कथन है कि ऋग्वेद में इन्द्र के एक सफल चिकित्सक होने का प्रमाण मिलता है। इन्द्र ने अपाला के चर्म रोग व खालित्य रोग का निवारण, अंधे परावृज को दृष्टि प्रदान, और पंगु को गति प्रदान किया।[4]

सूर्य की किरणों द्वारा भी चिकित्सा के वर्णन ऋग्वेद में प्राप्त होते हैं।[5] त्रिदोष आयुर्वेद का महत्वपूर्ण सिद्धान्त है। इसका भी वर्णन ऋग्वेद में प्राप्त होता है।[6] ऋग्वेद में अश्विनी कुमारों का रूप, देवताओं के सफल चिकित्सक के रूप में मिलता है। ये सर्वदा युगल रूप में दृष्टिगोचर होते हैं। वे ऋगवैदिक काल के एक सफल शल्प चिकित्सक थे। इनके चिकित्सा के उदाहरण इस प्रकार दिये जा सकते हैं। वृद्धावस्था के कारण क्षीण शरीर वाले च्यवन ऋषि के चर्मा को बदलकर युवास्था प्राप्त कराना।[7]

---

1. चरण व्यूह एवं महाभारत सभा पर्व–11/33 2. ऋ0वे0–10/97/1–23 मंत्र 3.ऋ0वे0– 10/97/1–23 मंत्र
4. आ0वै0 इतिहास आ0 प्रियवत शर्मा पृ0–17 5. ऋ0वे0–1/50/11–13 6.ऋ0–1/34/6 एवं 4/7/28
7. ऋ0–1/116/10 एवं 1/117/3

द्रोण में विश्यला का पैर कट जाने पर लोहे का पैर लगाना[1], नपुंसक पति वाली वध्रिमती को पुत्र प्राप्त कराना।[2] अन्धे ऋजाश्व को दृष्टि प्रदान कराना।[3] बधिर नार्षद को श्रवण शक्ति प्रदान करना।[4] सोमक को दीर्घायु प्रदान करना।[5] वृद्धा एवं रोगी घोषा को तरुणी बनाना।[6] प्रसव के अयोग्य गौ को प्रसव योग्य बनाना[7] आदि ऐसे अनगिनत उल्लेख प्राप्त होते हैं।

च0सं0सू0अ0 9/6 व सुश्रुत सू0अ0 24/10–20 में वैद्य के जो लक्षण बताये गये हैं, ठीक वही लक्षण विश्व के आद्य ग्रन्थ ऋग्वेद में बताया गया है यथा–

''यत्रौषधीः समग्मत राजानः समिताविव।
विप्रः स उच्यते भिषग् रक्षोहामीव चातनः।।[8]

वैद्य में पाँच लक्षण होते हैं–

1. संपूर्ण औषधियों को अपने पास ठीक से रखने वाला 2. .विशेष प्रबुद्ध
3. युक्ति और योजना जानने वाला (भिसज्यति) 4.राक्षसों का नाशक
5.रोगों को जड़ से उखाड़ने वाला (चातनः)

ऋग्वेद में प्राकृतिक चिकित्सा का भी वर्णन मिलता है। क्रमशः जल चिकित्सा[9], सौर चिकित्सा[10], वायु चिकित्सा,[11] हवन चिकित्सा[12] के कई उदाहरण उपलब्ध हैं। इस प्रकार ऋग्वेद में आयुर्वेद का उदात्त स्वरूप दिखाई देता है। जो हम भारतीयों के लिए बड़े गौरव का विषय है।

यजुर्वेद का आयुर्वेद

आयुर्वेदीय परम्परा ऋग्वेद की तरह यजुर्वेद में भी मिलती है। विविध शारीरिक अवयवों का उल्लेख तत्कालीन शरीरावयवों के ज्ञान का द्योतक है।[13] यजुर्वेद के कुछ मन्त्रों में मन्त्रों द्वारा दृष्टि की प्राप्ति व यक्ष्मा नामक रोग के नाश का उल्लेख है।[14] मन्त्रों के माध्यम से जो चिकित्सा (रोगापहरण) की जाती है आयुर्वेद में उसे दैवव्यपाश्रय चिकित्सा कहा जाता है।

---

1. ऋ0–3/116/15 2. ऋ0–3/116/13 3. ऋ0–3/116/16 4. ऋ0–3/117/18
5. ऋ0–3/15/9–10 6. ऋ0–3/117/7 7. ऋ0–3/112/3
8. आ0का वृ0इति0–अत्रिदेव पृ0–21 में उद्धृत 9. ऋ0–1/23/20, 10/137/6
10. ऋ0–2/33/1, 1/118/1 11.ऋ0–137/3 एवं 10/137/2
12. आ0का वृ0इति0–अत्रिदेव पृ0–29 13.य0वे0–12/75/101, 19/81/93, 20/5/9, 25/1/9
14. य0वे0–2/1/1/1, 2/4/14/5

अथर्ववेद व आयुर्वेद

ऋग्वेद में आयुर्वेदीय तत्त्व अत्यन्त सूक्ष्मरूपेण विद्यमान थे, उन्होंने ही आकर अथर्ववेद में विस्तार रूप धारण कर लिए। ज्वर को 'तक्मन' की संज्ञा सर्वप्रथम अथर्ववेद में प्राप्त होती है।[1] इस ज्वर के लक्षण व उसे दूर करने के विविध उपाय अथर्ववेद में उपलब्ध हैं। ग्रैष्मिक, शारदीय, शैतादि के भेद भी अथर्ववेद में प्राप्त होते हैं।[2] त्रिदोष के सम्बन्ध में अथर्ववेद में उल्लेख है– **''या एकमोजस्त्रेधाविचक्रमे''**[3] अर्थात् ''एक ओज जो जीवन का आधार है'' वे तीनों द्रव्यों अर्थात वात् पित्त व कफ द्वारा ही सम्भव है। गण्डमाला व उसके भेदोपभेदों का वर्णन अथर्ववेद में उपलब्ध होता है।[4] मूत्रावरोध होने पर शलाका द्वारा उसे बहिःनिस्सारण का उल्लेख भी अथर्ववेद में है।[5] फोड़े को साफ रखने के लिए जल धावन प्रक्रिया का भी उल्लेख प्राप्त होता है।[6] 'सुख–प्रसव के लिए योनि–भेदन की क्रिया अथर्ववेद में वर्णित है।[7] अपची बेधन[8] बहते हुए रक्त का बहना रोने के लिए धमनी बन्धन का उल्लेख अथर्ववेद में है।[9] एक मन्त्र में जठराग्नि[10] का उलेख प्राप्त होता है, जो पाचन क्रिया में मुख्य है। बलास नामक रोग का वर्णन अथर्ववेद में मिलता है। कहा गया है कि वह अस्थियों के लिए कष्टकारी है।''[11] अथर्ववेद के एक मन्त्र में भकक्षत अन्न के अन्तिम रूप वीर्य का उल्लेख मिलता है।[12] जिससे सम्पूर्ण सृष्टि का संचालन होता है। रोग व रोगों के प्रकार के विषय में भी अथर्ववेद में बताया गया है। इसमें वर्णन के आधार पर रोगों का विभाजन दो प्रकार से किया जा सकता है– प्रथम श्रेणी में वे रोग जो वातावरण के खान–पान से उत्पन्न होते हैं। इन्हें 'शपथ्य' रोग कहते हैं। द्वितीय श्रेणी में वे रोग आते हैं जो प्राक् जन्म कृत कार्यों या किसी के शापादि से उत्पन्न होते हैं। ऐसे रोगों को वरूण्य रोग कहा जाता है।[13] इनके अतिरिक्त अनेक रोगों के भी नाम मिलते हैं जैसे– तक्मन् बलास, क्षय, गण्डमाला आदि। इन रोगों के नाम व उन्हें दूर कने के उपाय अथर्ववेद में वर्णित है। रोगोत्पादक कृमियों के विषय में भी अनेक जगह चर्चायें है।[14]

---

1. अ०वे०–6/21/103
2. अ०वे०–1/25/4–5,
3. अ०वे०–1/24/1
4. अ०वे०–6/83/1–3
5. अ०वे०–1/19/3
6. अ०वे०–5/57/1–3
7. अ०वे०–1/11/1–6
8. अ०वे०–7/74/1–2
9. अ०वे०–1/17/1–3
10. अ०वे०–12/1/19
11. अ०वे०–6/14/103
12. अ०वे०–6/11/2
13. अ०वे०–6/98/2
14. अ०वे०–2/31/32 एवं 5/23

इसी प्रसंग में कहा गया है कि कृमियाँ अत्यन्त दुर्लक्ष्य भी होती है जिनकी क्षुल्लक संज्ञा है।[1]

रोगों का जो मुख्य रूपेण शपथ्य व वरूण्य द्विधा विभाजन है, अथर्ववेद में इन रोगों के चिकित्सकों के विषय में भी पर्याप्त सामग्रियाँ उपलब्ध होती हैं।
शपथ्य रोगों की चिकित्सा युक्ति व्यापाश्रय रीति से बतलाई गई है जो आयुर्वेदीय चिकित्सा है तथा वरूण रोगों की चिकित्सा दैवव्यपाश्रय रीति से बतलाई गई है जो शुद्ध अथर्ववेदीय चिकित्सा है।[2] मणि, मन्त्र, औषधि प्रायिश्चित, बलि आदि के माध्यम से अथर्ववेदीय चिकित्सा होती है। आयुर्वेद के अष्टांगों में भूत विद्या एक अंग है। यही चिकित्सा आज भी ताबीज, गण्डा, झांड़–फूंक आदि के माध्यम से आज भी समाज में विद्यमान हैं।[3]

अथर्ववेद में रसायन महनीय विशिष्टताओं से संचालित किया गया है। रसायन के ही माध्यम से मनुष्य अजर व दीघार्यु हो सकता है। इस विषय में अथर्ववेद कहता है कि मनुष्य रसायन को जानकर उसका सेवन कर उपर्युक्त विशिष्टताओं को प्राप्त कर सकता है।[4]

प्राचीन काल में जनसंख्या कम थी, अतः जनसंख्या बढ़ाना लोगों का लक्ष्य था। इसी लक्ष्य की पूर्ति के लिए 'बाजीकरण' पर अथर्ववेद में विशेष ध्यान दिया गया है। इस प्रक्रिया के अन्तर्गत सन्तानोत्पत्ति के कामशक्ति की वृद्धि हेतु अथर्ववेद में 'शेषहर्षणी' नामक औषधि का सेवन[5] व शिश्न वृद्धि के लिए निर्देश दिये गये हैं।[6] आज के युग के लिए उपयुक्त नसबन्दी जैसे उपायों के लिए भी अथर्ववेद में पर्याप्त उल्लेख मिलते हैं, जैसे शुक्रवहन करने वाली नाड़ी को काटकर उसे वीर्य–विहीन करने की क्रिया।[7] हृदय रोग तथा कामला रोग की चिकित्सा का वेद में स्पष्ट उल्लेख है। यह चिकित्सा सूर्य की किरणों से होती हैं इसका देवता सूर्य है।[8] अश्मरी तथा मूढ़गर्भ रोग में मूत्राशय और गर्भाशय का विदारण करना अनिवार्य हो जाता है। जैसा कि सुश्रुत0चि0अ0 7/30–38, सु0चि0अ0 /5/12–13 में कहा गया है। ठीक वही प्रक्रिया मूढ़ गर्भ चिकित्सा हेतु अथर्ववेद में वर्णित है।[9]

---

1. आयुर्वेद का वैज्ञानिक इतिहास, आचार्य प्रियवत् शर्मा पृ0–23
2. आ0का वै0इति0–आचार्य प्रियवृत शर्मा, पृ0–24 3.आ0का इति0–विद्यालंकार, पृ0–186
4. अ0वे0–3/6/11, 19/60/21, 20/96/10आदि 5 अ0वे0–4/4/1–8 6.अ0वे0–6/7/3तथा
7. 6/10/27 अ0वे0–6/138/4 8 आ0का वृ0इति0–अत्रिदेव, पृ0–40 9 अ0वे0–1/11/5

मूत्राशय में (मूत्राशय की पार्श्ववर्त्ती गवीनी यूरेटरस में) या वृक्कों में यदि मूत्र
्का हो तो उसे वहाँ से शस्त्रकर्म या अन्य प्रकार से बाहर किया जाता है,—
था— "यदान्त्रेषु गवीन्योर्यद् वस्तावधि संस्रुतम।

एव ते मूत्रं मुच्यतां बहिर्बालिति सर्वकम्।।[1]

ांत्रों गवीनीयो या वस्ति, मूत्राशय में जो मूत्र रूका है वह इन स्थानों से बाहर आये। जेस प्रकार पल्लव में रूके हुए जल को पल्लव विदीर्ण करके बाहर कर देते हैं। उसी प्रकार मेहन में रूके मूत्र को भेद कर बाहर कर देता है। (प्रोस्टेट ग्रन्थि की ृद्धि के कारण जब मूत्र रूक जाता है तब प्रोस्टेट ग्रन्थि को काटकर मूत्र निकालने का मार्ग किया जाता है। मेहन शब्द से प्रोस्टेट वाला भाग अमिप्रेत है।)[2]

इस प्रकार अथर्ववेद में आयुर्वेद का व्यापक रूप दृष्टिगोचर होता है।

ब्राह्मण साहित्य एवं आयुर्वेद

वेदों की व्याख्या ब्राह्मण ग्रन्थों में हैं। इनका प्रधान विषय 'यज्ञ' ही है। इनमें यज्ञीय विधियों द्वारा चिकित्सा का प्रावधान है। अनावश्यक विषय प्रसार को ध्यान में रखते हुए अति संक्षिप्त रूपेण अध्ययन हम इस प्रकार कर सकते हैं—
नेत्रों के रोगों को दूर करने के उद्देश्य से ऐतरेय ब्राह्मण में अंजन के माध्यम से उनकी चिकित्सा वर्णित है।[3] इसी ब्राह्मण में शाप के द्वारा कुष्ठ व उन्माद आदि रोगों की उत्पत्ति निर्देशित की गई है।[4] ब्राह्मण में रोगों के प्रतिकार के परिपेक्ष्य में औषधियों की शक्ति को भी उल्लिखित को किया गया है।[5] सूक्ष्म आँखों से अदृश्य जीवाणुओं, राक्षसों का नाश करने में यज्ञीय धूम ही समर्थ है, इसलिए यज्ञों का विधान है। इनका विशेष प्रावल्य ऋतु सन्धि में होता है। इसलिए ऋतु सन्धि में यज्ञ करने का मुख्य विधान है। बड़े—बड़े यज्ञ प्रायः इसी काल में होते हैं। यथा होली के समय नवशस्येष्टि यज्ञ होता है। जिस समय नया अन्न (गेहूं, चना आदि) पैदा होता है। उस समय बडा भारी यज्ञ होता है। इसी यज्ञ का विकृत रूप होली दाह है।[6] दो ऋतुओं के सन्धि काल में होने वाले रोगों के विषय में उल्लेख गोपथ ब्राह्मण में किया गया है।

---

1. अ0वे0—1/3/6—9
2. आ0का वृ0इति0—अत्रिदेव, पृ0—41
3. ऐ0ब्रा0—1/3
4. आ0वे0का इति0 पृ0—15
5. ऐ0ब्रा0—3/40
6. आ0कावृ0इति0—अत्रिदेव, पृ0—65

'भैषज्य यज्ञा वा एते। तस्मादृतुसन्धिषु प्रयुज्यन्ते।

ऋतुसन्धिषु वै व्याधिर्जायते।।'[1]

ये औषधियों के ही यज्ञ है।, इसलिए ऋतुओं की सन्धियों में यज्ञ किये जाते हैं। क्योंकि ऋतु सन्धियों में रोग होते हैं।

उपनिषद् साहित्य व आयुर्वेद

यद्यपि उपनिषदों के विषय आध्यात्मिक है फिर भी इनमें आयुर्वेदिक तथ्य यत्र–तत्र दृष्टि गोचर होते हैं। छान्दोग्य उपनिषद् में दीर्घायु प्राप्ति से सम्बन्धित तथ्य दृष्टिगत होता है।[2] 'इसी में कहा गया है आहार शुद्ध होने पर बुद्धि और प्राण शुद्ध रहते है। यथा– 'आहार शुद्धौ सत्त्वशुद्धिः।''[3]
हृदयस्थ नाड़ियों का भी वर्णन एक जगह उपलब्ध होता है।[4]
मधुविद्य[5] खाये गये अन्न का रस एवं मल के रूप में परिवर्तित होना[6] पामारोग का वर्णन[7] इत्यादि वर्णित तथ्य आयुर्वेदिक सामग्रियों के ही द्योतक हैं। हृदय का वर्णन वृहदारण्यकोपनिषद् में बड़े ही अच्छे ढंग से किया गया है।[8] इसी उपनिषद् का शरीर विज्ञान वर्णन[9] बड़ा ही उपयोगी है। नेत्र रचना का वर्णन भी इसकी वैज्ञानिकता को द्योतित करता है।[10] इस प्रकार से उपनिषदों में ब्रह्म आत्मा आदि के वर्णन में भी यत्र–तत्र आयुर्वेदिक शब्दों का समावेश है। यथा– कठोपनिषद् में वर्णित है–

'अणोरणीयान्महतो महीयानात्मास्य जन्तोर्निहतो गुहायाम्।

तमक्रतुः पष्यति वीत शोको धातु प्रसादान्महिमानमात्मनः।।[11]

कामनारहित और चिन्तारहित व्यक्ति सप्तधातुओं की प्रसन्नता होने पर पूर्ण स्वस्थ्यावस्था में उस परमात्मा का अनुभव करता हैं।

'गृह्यसूत्र व आयुर्वेद'

प्रसंगतः प्राप्त गृह्यसूत्रों का भी यहाँ संक्षिप्ततः वर्णन नितान्त अपेक्षणीय है। अथर्ववेद का एक मात्र गृह्य सूत्र कौशिक गृह्यसूत्र वैद्यनाथ शास्त्र एवं औषधियों के वर्णन की दृष्टि से नितान्त उपादेय है।[12] कौशिक गृहसूत्रकार ने उन उन मंत्रों का विनियोग

1. गो0ब्रा0–3/1/19 2. छा0उ0–3/16 3. छा0उ0–6/26/2
4. छा0उ0–8/1/16 5. छा0उ0–5/1/7 6. छा0उ0–6/5 7. छा0उ0–4/1/8
8. वृ0उ0–2/1/19 9. वृ0उ0–2/44/11 10. वृ0उ0–2/2/3 11.क0उ0–1/2/20
12.वैदिक साहित्य और संस्कृति–आचार्य बल्देव, पृ0–325

दिखलाते हुए चतुर्थ अध्याय में अथ 'भैषज्यानि' से प्रारम्भ करके उस रोग के प्रतिकार के लिए उन–उन मंत्रों द्वारा अभिमन्त्रित जल व औषधि आदि का देना हवन एवं मार्जन आदि उपाय बताए हैं। इसके अतिरिक्त रक्त बहने तथा स्त्रियों की अतिरजः वृत्ति में सूखे कीचड़ को घोलकर पिलाना, हृदय रोग, कमला रोग में हरिद्रा खिलाना, वात विकार में पिप्पली का सेवन, चोंट के कारण रक्त प्रवाह होने पर लाख से पकाये गये पानी द्वारा सिंचन, राजयक्ष्मा, कुष्ठ व सिरो रोग में मक्खन से कूठ मिलाकर मालिश करना, शस्त्र की चोंट में बनाये गये दूध में लाक्षा डालकर पिलाना, गण्डमाला में शंख का लेप तथा जलौका का उपयोग, मलमूत्र रूक जाने पर हरीतकी को बाँधना आदि वर्णन प्राप्त होते हैं।[1]

गोमिल गृह्यसूत्र में सभी प्रकार के रोगों की चिकित्सार्थ मन्त्र उल्लिखित है।[2] खदिरगृह्यसूत्र में रोगोत्पादक क्रिमियों का वर्णन उपलब्ध होता है।[3] ऋग्वेदीय आश्वलायन गृह्यसूत्र में भी पशुओं के रोगों के चिकित्सार्थ अनेक तरीकों के वर्णन उपलब्ध होते हैं।[4]

आयुर्वेद की प्राचीनता

मनुष्य ने अपने जन्म से व्याधियों के प्रतीकार के लिए अनेक उपायों का आविष्कार किया जिसे हम भिन्न–भिन्न देशों में इस प्रकार देख सकते हैं–

भारतः–भारत में प्राचीन काल से ही आयुर्वेदिक ज्ञान की सम्पन्नता थी। वैदिक संहिताओं में इसके व्यापक उल्लेख हैं। भारत में 900 ई0पू0 के मनुष्य अपने रोगों को विविध प्रकार से दूर करते थे। वे कपाल वेध द्वारा शिरस्थ व्याधियों को दूर करते थे। वे व्याधियों को अधिकांशतः भूत संज्ञा से अवहित करते थे।'[5]

मेसोपोटामिया :– आचार्य प्रियवृत शर्मा ने मेसोपोटामिया को चिकित्सा की दृष्टि से सर्वप्राचीन माना है।[6] इतिहास क्रम की दृष्टि से दवव्यापाश्रय चिकित्सा पहले थी और युक्तिध्यपाश्रय चिकित्सा बाद की थी, यहाँ के लोग इसे 'आशियु' और असु कहते थे। नाग को चिकित्सा का प्रतीक मानकर उसकी पूजा की जाती थी।

---

1. आ0का इति0–अत्रिदेव, पृ0 19–20
2. गो0गृ0सू0–4/6/2,
3. खा0गृ0सू0–4/8/40,
4. आ0गृ0–4/8
5. आ0का वै0इति0–आचार्य प्रियवृत, पृ0–644
6. आ0का वै0इति0–आचार्य प्रियवृत पृ0–666,

मिस्र :– 3000 ई0पू0 मिस्र के आचार–विचार व रहन–सहन के प्रमाण प्राप्त होते हैं।[1] मिस्रवासियों ने इसी समय कागज का निर्माण कर लिया था। हेरोडोटस, जिनका काल 450 ई0पू0 था, ने सर्वप्रथम मिस्र की चिकित्सा पद्धति को प्रकाशित किया। इनका कहना है कि 'मिश्र' में एक–एक रोगों को चिकित्सा करने वाले अनेक चिकित्सक हैं। अतः देश चिकित्सकों से भरा पड़ा है। कोई आँख का इलाज करता है तो कोई दाँत का।[2] गर्भवती के गर्भ में लिंग ज्ञान के लिए मिस्र में एक प्रथा प्रचलित थी, किसी कपड़े के थैले में गेहूँ और यव अलग–अलग रख दिये जाते थे। उन थैलों पर गर्भवती मूत्र करती थी। यव के पहले अंकुरित होने पर पुत्री और गेहूँ के पहले अंकुरित होने पर पुत्रोत्पत्ति सम्भावित मानी जाती थी।[3] यहाँ के निवासी अत्यन्त प्राचीनकाल से ही न्यूमोनिया, दन्तरोग, आमबात, कृमि, प्लेग, गण्डमाला आदि रोगों से परिचित थे।

रोमः– रोम की ऐतिहासिक सत्ता 653 ई0पू0 से मानी जाती है।[4] पुरोहित ही चिकित्सकीय कार्य करते थे। यहाँ चिकित्सकों की चार कोटियाँ थीं– 1.मूल–चिकित्सक 2.साण–चिकित्सक 3. नगर–चिकित्सक 4. दास–चिकित्सक।

काबुलः– यहाँ रोगनाशक देवता 'मर्दुम' की पूजा विशेष आस्था के साथ की जाती थी। 1116 से 1078 ई0पू0 असुर के सम्राट तिगलत पिल्सर प्रथम ने काबुल को जीतकर अपने आधीन कर लिया था। यहाँ आयुर्वेदिक औषधियों में फल, फूल, पत्ती और जड़ों का प्रयोग एवं कमल और जैतून का अधिक प्रयोग होता था।

मैक्सिकोः– दैवव्यपाश्रय चिकित्सा का प्रयोग का प्रयोग अधिक था। नरबलि की भी प्रथा थी। वियोआ, नैनाकैट्ल, कोलोरीन, तम्बाखू, कैमोटल, रबर आदि द्रव्यों के उल्लेख प्राप्त होते हैं।[5]

चीनः– ऐतिहासिक दृष्टि से चीन के उत्कर्ष का उल्लेख 2852–2205ई0पू0 में व 1766–1122 ई0पू0 में प्राप्त होता है।[6] यहाँ अथर्ववेदीय चिकित्सा से लोग प्रभावित थे। 'वेन साओ कांगमु' नामक चीनी ग्रन्थ में विविध औषधियों के उल्लेख प्राप्त होते हैं। सृष्टि प्रक्रिया में पंचतत्वों के योगदान के सिद्धान्त को यहाँ सभी मानते थे।

---

1. आ0का वै0इति0–आचार्य प्रियवृत पृ0–670
2. आ0का वै0इति0–आचार्य प्रियवृत, पृ0– 670 से 671तक
3. आ0का वै0इति0–आचार्य प्रियवृत पृ0–673
4. आ0का वै0इति0–आचार्य प्रियवृत पृ0– 684
5. आ0का वै0इति0–आचार्य प्रियवृत, पृ0–674,
6. आ0का वै0इति0–आचार्य प्रियवृत, पृ0–675

यूनानः– 2000ई0 पू0 के आसपास इस सभ्यता का चरमोत्कर्ष था। यहाँ के लोगों की यह धारणा थी कि देवता क्रोधित होकर रोगों को उत्पन्न करते हैं। इसलिए रोगों को दूर करने के लिए मन्त्रों व मणियों का प्रयोग किया जाता था। 'एक्लिपियस' नामक एक धार्मिक सम्प्रदाय के लोग मन्दिरों का निर्माण करके उनमें रोगों की चिकित्सा करते थे। शारीरिक रोगों की चिकित्सा 'युक्तिव्यपाश्रय चिकित्सा के माध्यम से होती थी तथा मानस रोगों की शान्ति के लिए संगीत का विधान था। जो चरक कालीन आतुरालयों में संगीत में कुशल लोगों की नियुक्ति के समान था।[1] डेमोसीडस का नाम यूनान में बड़े आदर के साथ एकचिकित्सक के रूप में लिया जाता है। जिसे बन्दी बनाकर फारस लाया गया था। वहाँ उसने राजा व रानी की चिकित्सा की थी।

अरबः– यहाँ के निवासियों का सांस्कृतिक जीवन बड़ा उन्नत था। यहाँ के निवासियों ने चरक सुश्रुत आदि 15 भारतीय आयुर्वेदीय ग्रन्थों का अरबी भाषा में अनुवाद किया था।

प्राचीन फारसः– इसका अस्तित्व छठी या सातवी शताब्दी ई0पू0 का माना जाता है।[2] यहां के शल्य क्रिया विशारद, औषधिज्ञाता एवं मन्त्रज्ञाता तीन प्रकार के चिकित्सक होते थे। कुष्ठ, चर्मरोग, ज्वर, मानसरोग, अपस्मार आदि रोगों के उल्लेख प्राप्त होते है।[3]

पेरूः– यहाँ देवताओं में सूर्य की प्रधानता थी। दैवव्ययाश्रय चिकित्सा प्रचिलित थी। आमवात, मलेरिया, अतिसार, बालरोग तथा कुष्ठादि के उल्लेख प्राप्त होते हैं।[4]

लंकाः– धार्मिक दृष्टि से लंका भारत से प्रभावित था। बौद्ध धर्म भारत से ही लंका में गया था। चतुर्थ शताब्दी ई0 में लंका का राजा बुद्धदास जो कि बौद्ध धर्म को मानता था, भारतीय चिकित्सकों को अपने यहां नियुक्त किया था।[5] भारतीय चिकित्सा पर आधारित इनकी अधिकतर सिंघली पुस्तकें संस्कृत गृन्थों पर ही आधारित हैं।

नेपालः– भारत के अत्यन्त समीप होने के कारण नेपाल में भी आयुर्वेद द्वारा लोगों को स्वास्थय प्रदान किया जाता था। संवत् 1984 तक आयुर्वेद की शिक्षा प्राचीन शिक्षा पद्धति के माध्यम से दी जाती थी। पं0 हेमराज शर्मा की अध्यक्षता में सं0 1985 में

---

1. च0सू–15/7 2. आ0का वै0इति0–आचार्य प्रियवृत, पृ0–677 3. आ0का वै0इति0–आचार्य प्रियवृत, पृ0–678
4. आ0का वै0इति0–आचार्य प्रियवृत, पृ0–674 5. आ0का इति0–अत्रिदेव, पृ0–26

क आयुर्वेदिक विद्यालय की स्थापना हुई। शर्माजी ने काश्यप संहिता की भूमिका भी लेखी थी। इन वर्णनों से यह स्पष्ट हो गया है कि 'आयुर्वेद' केवल भारत में ही नहीं अपितु संसार के अधिकांश भागों में व्याप्त था। इसी प्रकार चिकित्सा पर भी पश्चिम का प्रभाव दिखाई देता है। इसमें पलाण्डु के वर्णन में वाग्भट ने कहा है– 'शक स्त्रियों की कपोल कान्ति से चन्द्रमा भी लज्जित होता है। यह कपोल कान्ति पलाण्डु के सेवन से आयी है।[1]

इसी प्रकार 'शक स्त्रियों की कपोल कान्ति की प्रशंसा कालिदास ने भी की है–

''यवनी मुखमद्मानां सेहे मधुमदं न सः।
बालातपमिवाजानामकालजलदोदयः।।[2]

आयुर्वेद व उसके अष्टाङ्ग

आयुर्वेद अथर्ववेद का उपांग है, इस तथ्य को समस्त विद्वान समान रूप से स्वीकार करता है। केवल 'चरणव्यूह' में इसको ऋग्वेद का उपांग कहा गया है। अतः इसका प्रभाव लौकिक और अलौकिक दोनो प्रकार का स्वीकृत है।

इसके आदिम उपदेष्टा सृष्टिकर्ता ब्रह्म थे। प्रारम्भ में यह ज्ञान देवलोक तक ही सीमित था। कालान्तर में प्राणिमात्र के हित की दृष्टि से इन्द्रादि देवों ने इस ज्ञान को प्राप्त कर उसका प्रसार मृत्युलोक में किया। इस सम्बन्ध की कथा चरक में वर्णित है।[3] यह आयुर्वेद 'त्रिस्कन्धात्मक था। प्रस्तुत त्रिस्कन्धात्मक आयुर्वेद कालान्तर में मेघा शक्ति की कमी के कारण मनुष्य मात्र के लिए दुरूह हो गया था। फलतः ब्रह्मा ने उक्त लक्षश्लोकात्मक आयुर्वेद शास्त्र को आठ अंगों में विभाजित कर दिया।[4] अंग पारिभाषिक शब्द है– अङ्गयन्ते ज्ञायन्ते समानिरिति अङ्गानि'[5] अर्थात् जिससे आयुर्वेद के स्वरूप का ज्ञान होता है, उन्हें आयुर्वेद के अंग या तन्त्र कहते हैं। इन अंगों अथवा तन्त्रों के नाम हैं– 1.शल्य (Surgery) 2.शालाक्य (ENT Denestry Opthalmology) 3.काय चिकित्सा (Medical Branch) 4. भूत विद्या (Psychiatry, Microbiology) 5.कामारभृत्य (Science of Paediatrics) 6.अगदतत्र (Toxicology)
7. रसायन तत्र (Science of Rejuvenation) 8.वाजीकरण (Science of Aphrodisiac)
आयुवेदीय विभिन्न संहिताओं में ये नाम कुछ परिवर्तन के साथ उपलब्ध होते है।[6]

---

1. अ0सं0उत्तरअ0–49 2. रघु0–4/21 3. च0सू0अ0–1/8–13
4. स0सं0स0–1/6 5. वैदिक साहित्य और संस्कृति–आचार्य बल्देव पृ0–292
6. च0सं0सू0–30/17, सू0सं0सू0–1/7, काश्यप संहिता, पृ0–42

शल्यतंत्र

शल्य हिंसायाम् अथवा शल्य शमनम् धातु से शल्य शब्द निष्पन्न होता है। जिससे शरीर में पीड़ा हो अथवा शारीरिक तन्तुओं की हिंसा हो वह शल्य कर्म कहलाता है।[1] इसमें शस्त्र वर्णन और शस्त्र कर्म यह दो वस्तु मुख्य हैं। सुश्रुत में यंत्रों की संख्या 101 बतायी है।[2] शस्त्र कर्म आठ बताए गये हैं, छेदन, भेदन, लेखन, वेधन, एषण, आहरण, स्रावण और सीवन। इन कर्मो को करने से पूर्व, कर्म करते समय और पीछे जो जो सावधानियँा रखी जाती है, उन सब का उल्लेख सूत्र स्थान मे किया गया है।[3] सर्जरी (शल्य क्रिया) सर्वप्राचीन हेतु काशी और तक्षशिला थे। दिवोदास सर्जन धन्वन्तरि ने काशी में सुश्रुत आदि शिष्यों को इस
क्रिया की शिक्षा दी थी तक्षशला का प्रमुख शल्य क्रिया ज्ञाता विद्वान जीवक था।

शालाक्य तन्त्र

शलाका से शालाक्य शब्द निष्पन्न हुआ है। इस चिकित्सा में प्रायः शलाका का उपयोग होता है। जिससे मुख, आँख, कान, नासिका, गला आदि शारीरिक अंगों की चिकित्सा होती है। कृतिम दांत लगाने का उल्लेख आयुर्वेद ग्रन्थों में नहीं है। वेद में और चरक में अश्विनौ के कार्यों में कृत्रिम दांत लगाने का उल्लेख है।[4] इस विषय का मुख्य आधार सुश्रुत ही है। चरक का वर्णन बहुत संक्षिप्त है।[5]

काय-चिकित्सा

काय का अर्थ शरीर होता है, इसके अतिरिक्त इसका अर्थ अग्नि भी है। अग्नि अर्थात जठराग्नि से सम्पूर्ण शरीर का संचालन व नियन्त्रण होता है। इस अग्नि के विकृत हो जाने पर मनुष्य के शरीर में विकार उत्पन्न हो जाता है।

आपाद मस्तक होने वाले रोगों की चिकित्सा इस अंग मे वर्णित है। इस चिकित्सा का प्रधान ग्रन्थ चरकसंहिता है। इसी को आधार मानकर संग्रहकार वाग्भट ने **"इति ह स्माहुरात्रेयादयो महर्षयः"** कहा है। रोगों के वर्णन में रोगों के कारण पूर्वरूप, रूप उपशय और सम्प्राप्ति इन पांच बातों की विवेचना की जाती है।[6] इसी वास्ते एक अच्छे वैद्य को सुश्रुत का सुनना, वाग्भट का वाणीगत (हिब्ज/मनन) करना

1. आ0का इति0–अत्रिदेव, पृ0–58
2. सु0सू0अ0–7/18
3. आ0वे0 का वृहद इतिहास–अत्रिदेव, पृ0–540
4. च0चि0अ0–1/4/42
5,6 आ0 का वृ0इति0–अत्रिदेव, पृ0–543

और चरक का अध्ययन (पढ़ना) कहा गया है–

सुश्रुतं न श्रुतं येन वाग्भटो नैव वाग्भटः।

नाधीतश्चर को येन स वैद्यो यम किंकर।।

अतः चरक संहिता वृहत्त्रयी में पठ्नीय है।

भूत विद्या

अथर्ववेद में विशेषकर इसका उल्लेख है।[1] इसका सम्बन्ध मानसिक रोगों से है। मन के दो दोष हैं– रज और तम। इनसे मनुष्य में उन्माद, अपस्मार, अमानुषोपसर्ग रोग होते है। अमानुषोपसर्ग से अभिप्राय देव असुर गन्धर्व–यक्ष, राक्षस पिशाच आदि से मन का आक्रान्त होना है। अत्रि पुत्र का कहना है कि ये रोग वास्तव में प्रज्ञापराध के कारण होते है और अपने कर्मों का फल हैं। इनके लिये देवता आदि को दोष नहीं देना चाहिएं।[2] महर्षिचरक ने प्रज्ञापराध विषय में कहा है–

''धी, धृति, स्मृति विभृष्टः कर्मयत् कुरुतेऽशुभम् ।

प्रज्ञापराधं तं विद्यात् सर्व दोश प्रकोपणम् ।।[3]

वुद्धि, धैर्य और स्मृति भ्रष्ट होने से मनुष्य जब अशुभ कर्म करता है तब सभी शारीरिक एवं मानसिक दोषों को प्रकुपित करने वाले उस कारण को प्राज्ञापराध कहा जाता है। बुद्धि धारणा शक्ति और स्मरण शक्ति ये तीनों प्रज्ञा (Wisdom) के भेद हैं। अतः व्यक्ति को कर्म का फल निश्चित भोगना पड़ता है–

''अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्।।

अंग्रेजी में एक कहावत है– "Ignorance of law is no excuse" अर्थात् कानून का न जानना माफी मांगने या पाने के लिए दलील नहीं हो सकता।

इन कार्यों का उद्देश्य तीन प्रकार का था, हिंसा, रति, अभ्यर्चन।[4]

कौमारभृत्य

काश्यम संहिता ने कौमारभृत्य को सर्वश्रेष्ठ अंग माना है।[5] इस शब्द का अर्थ बालकों के लालन–पालन से है जैसा कि कालिदास के वचन से स्पष्ट है–

'कुमारभृत्याकुशलैरनुष्ठिते, भिषग्भिराप्तैरथ गर्भभर्मणि।'[6]

---

1. च0सू0अ0–30
2. आ0 का वृ0इति0–अत्रिदेव, पृ0–544
3. च0सं0शा0–1/102
4. च0नि0अ0–7/15
5. का0सं0वि0–1/10
6. रघु0–3/12

(आसन्न प्रसव के लक्षण जानने के बाद) बालचिकित्सा में निपुण विश्वासपात्र वैद्यों के द्वारा गर्भ की रक्षा कर चुकने पर समय प्राप्त होने पर सुदक्षिणा वैद्यों के द्वारा गर्भ की रक्षा कर चुकने पर समय प्राप्त होने पर सुदक्षिणा को राजा दिलीप ने देखा। अतः इसके अन्तर्गत गर्भ धारण क्रिया से प्रारम्भ होकर सम्पूर्ण गर्भावस्था की देख–रेख व प्रसव उपचार व पश्चात बच्चे की संपूर्ण देख–रेख यह सब विषय आ जाता है। योनि व्यापत्तन्त्र (ग्यानोकोलोजी) भी उसी में आता है।[1]

अगद–तन्त्र

इस अंग में स्थावर और जंगम दोनों प्रकार के विषों की चिकित्सा कही गई है।[2] विष के आठ वेग, दशगुण और बीस प्रकार की चिकित्सा है।[3] जन्तुओं के विष को जंगम तथा वानस्पतिक विष व पदार्थगत विष को स्थावर कहते हैं। जंगम विष की गति नीचे की ओर और स्थावर की ऊर्ध्व होती है। संयोजक विष को 'गर' कहते हैं।[4] विष कन्याओं का भी वर्णन मिलता है।[5] यह महत्व की बात है कि 'रस' शब्द पारद के साथ–साथ विष का भी वाचक है। रस–शास्त्र के ग्रन्थों में विष के भी प्रकरण है।[6]

रसायन–तन्त्र

रस शब्द से शरीर के रस रक्त, मांस, मेदा, अस्थि, मज्जा, शुक्र इन सप्त धातुओं का अववोध होता है। जिस विज्ञान में इन सप्त धातुओं के नवीन रूप में बने रहने की क्रिया वर्णित हो उसे रसायन तन्त्र कहते हैं।[7]

औषधि दो प्रकार की हैं–स्वस्थ के लिए ऊर्जा (बल) देने वाली और रोगी के रोग को मिटाने वाली। इनमे प्रथम प्रकार की औषधि जिससे स्वस्थ व्यक्ति को बल मिलता है उसे रसायन कहते हैं। कहा गया है–

"Prevention is better than cure" अर्थात इलाज की अपेक्षा रोगों से बचाव करना बेहतर होता है। शायद इसी कारण नीतिकारों का मत है कि कीचड़, धोने की अपेक्षा स्पर्श न करना ही श्रेष्ठ है– **'प्रक्षालनाद्धिपंकस्य दूरादस्पर्शनं वरम्।'** इसी बात

1. च0वि0अ0–8, च0सू0अ0–20/5, च0चि0–15/11, च0शा0अ0–2, 3 दृष्टव्य
2. च0सं0चि0–25/4
3. च0सं0चि0–25/5
4. च0सं0चि0–25/7–12
5. अ0संग्रह सू0अ0–8
6. आ0का वैज्ञानिक इति0–आचार्य प्रियवृत, पृ0–526
7. आ0का इति0–अत्रिदेव, पृ0–63, च0सं0चि0अ0–1

को रसायन तंत्र बल प्रदान करता है। शार्ङ्धर संहिता मे इसका अर्थ दृष्टव्य है–

रसायनं च यद् ज्ञेयं यज्जराव्याधिनाशनम्।

यथाऽमृता रूदन्ती च गुग्गुलश्च हरीतकी।।[1]

जो औषधि देह की वृद्धावस्था और ज्वरादि रोगों का नाश करे उसको रसायन जानना चाहिए जैसे गिलोप, रूदंती (शाक का भेद–पश्चिम मे बहुत विख्यात है) गुग्गुल और हरीतकी।

वाजीकरण

वाजी के अनेक अर्थ हैं जिनमें घोड़ा, शुक्र, या वेण प्रमुख हैं। जिस विशिष्ट ज्ञान से मनुष्य में शुक्र वृद्धि या वेग वृद्धि हो वह बाजीकरण है।[2] जो औषधि धतु को बढ़ाकर स्त्रियों में हर्षयुक्त शक्ति करता है अर्थात मैथुन शक्ति बढ़ावें उसको वाजीकरण कहते हैं, जैसे– नागबला, जायफल, क्रौच के बीज[3] अत्रि पुत्र ने स्त्री को ही प्रधान वाजीकरण माना है उसमें ज्ञानेन्द्रियों के सब विषय एक साथ स्थित हैं। स्त्री में प्रीति, सन्तान, धर्म, अर्थ, लक्ष्मी, लोक परलोक सब स्थित हैं। मनुष्य के शुक्र में आठ दोष हो सकते हैं इन दोषों की चिकित्सा विस्तार से कही गई है।[4] प्राचीन काल में जब जनसंख्या कम थी तब जनसंख्या वृद्धि इसका लक्ष्य था एवं आज के युग में जनसंख्या नियंत्रण इसका लक्ष्य है। सुकुमार तन्त्र, वात्स्यायन–कामसूत्र, औद्दालकि एवं वाभ्रव्य का 'कामशास्त्र' इस तन्त्र के प्रमुख ग्रन्थ है। इस प्रकार वाजीकरण का उपदेश होने पर भी ब्रह्मचर्य का महत्व बना ही है[5]–

''धर्म्य यशस्यमायुष्यं लोकद्वयपरायणम्।

अनुमोदामहे ब्रह्मचर्यमेकान्त निर्मलम्।।

आयुर्वेदिक सिद्धान्त

आयुर्वेद के अनेक मूल सिद्धान्त है यथा त्रिदण्ड सिद्धान्त, सप्तविधगुणवाद, षड्रसवाद, पञ्चपञ्चक–सिद्धान्त, आदान–विसर्गवाद, आत्म–निर्विकारवाद,

---

1. शाङ्र्गधर सं0–4/13
2. आ0का इति0–अत्रिदेव, पृ0–64
3. शाङ्र्गधर सं0–4/14
4. च0सं0चि0अ0–30/139–140
5. अ0ह्व0उ0अ0–40 उद्धत आयुर्वेद का वृहद इतिहास, पृ0–551

सद्वृत्तानुष्ठान, अग्निबलापेक्षी आहारमात्रा, धारणीया धारणीय–वेगवाद, पञ्चकर्म सिद्धान्त, दोष साम निरामवाद, पंच निदान सिद्धान्त षडुपक्रमवाद, दशविध–परीक्ष्यवाद, आकर–परीक्ष्य दशभाववाद आदि[1]

मुख्य रूप से तीन सिद्धान्त है सामान्य विशेष सिद्धान्त, पंचभूत सिद्धान्त की उपादेयता, त्रिदोष सिद्धान्त।

सामान्य विशेष सिद्धान्त

इस सिद्धान्तानुसार समान द्रव्य, समान गुण तथा समान कर्म से दोषों की वृद्धि होती है एवं द्रव्य विशेष (भिन्नता), गुण–विशेष तथा कर्म विशेष से दोषों की क्षीणता होती है। चरक का कथन है–

'सर्वदा सर्वभावानां सामान्यं वृद्धिकारणम्।

ह्रास हेतु विशेषश्च प्रवृत्तिरुभयस्य तु।।[2]

अर्थात् सभी भावों की समानता वृद्धि का कारण है और सभी भावों की विशेषता (भिन्नता) यथा दृव्य–विशेष गुण विशेष तथा कर्म ह्रास (क्षीणता) का कारण है। सामान्य और विशेष की यह प्रवृत्ति (कार्य) शरीर के सम्बन्ध से होती है।

पञ्चभूत सिद्धान्त

इस सिद्धान्त पर ही आयुर्वेद के सभी प्रमुख सिद्धान्त आधारित हैं। उपनिषद् का वचन है– "एकेन ज्ञातेन सर्वमिदं ज्ञातं भवति।" अर्थात एक ही आत्मतत्त्व को जानने से सभी कुछ ज्ञात हो जाता है यह उक्ति पञ्चभूत जैसे आयुर्वेद के मूल सिद्धान्त पर भी पूर्णतः चरितार्थ होती हैं। सुश्रुत में इसका उदाहरण दृष्टव्य है।[3] पञ्चभूत पञ्चतन्मात्राओं से उत्पन्न हुए हैं ये आकाश, पवन, अग्नि, जल, पृथ्वी इस प्रकार है।[4]

त्रिदोष वाद

आयुर्वेद के त्रिदोष का आधार त्रिगुणात्मक प्रकृति है। सत्व रज तम यही तीन गुण शरीर में इस जीव को बांधे हुए है।[5] प्रकृति भी त्रिगुणात्मक है, शरीर भी त्रिगुणात्मक है। इसी कारण वाग्भट ने इन्हें महागुण कहा है–

---

1. कल्याण वर्ष 2001,सं0–5, पृ0–668
2. च0सू0–1/44,
3. सु0सू0अ0–14/9
4. शार्ङ0सं0–5/59
5. भ0गीता–14/5

'सत्वं रजस्तमश्चेति त्रयः प्रोक्ता महागुणाः।[1]

आयुर्वेद में इनको वात् पित्त कफ नाम से कहा जाता है। इन्हीं दोषों पर आधारित शरीर है–

'दोष धातुमल मूलों हि देहः।[2]

इसी कारण कहा गया है कि वात, पित्त, कफ ये तीनों शरीर की उत्पत्ति के कारण है।[3] इनसे शरीर के धातु दूषित होते हैं इसलिए इनको दोष कहते हैं।[4] शरीर के अन्दर और प्रकृति में वात पित्त कफ के जो कार्य होते हैं, उनकी समानता आयुर्वेद नें दिखायी है।[5] आयुर्वेद में सत्व, रज, तम की सत्ता शरीर के बदले मन मे मानी गई है।[6] जिस प्रकार सांख्यदर्शन का आधार त्रिगुणात्मक प्रकृति है, उसी प्रकार आयुर्वेद का आधार त्रिदोषवाद है, जो सर्वत्र व्याप्त है।[7] त्रिदोष सम्बन्ध में अथर्ववेद का उल्लेख है– **या एकमोजस्त्रेधाविचक्रमे'**[8] अर्थात एक ओज जो जीवन का आधार है वे तीनों दृव्यों अर्थात वात् पित्त व कफ द्वारा ही सम्भव है।

वात– जीवित रहने के लिए वात्/वायु होनी चाहिए, 'वा' मूल धातु से वात् शब्द बना है जिसका अर्थ ही 'वा गतौ' के अनुसार 'गति करना' होता है 'उत्साहोच्छ्वास निश्वास चेष्टा धातु गतिः समाः।'[9] यह रूप और आकृति से रहित है। (रूप रहित स्पर्शवान् वायुः)[10] यद्यपि शरीर में सर्वत्र वायु एक ही है किन्तु स्थान और कर्मों के आधार पर वायु के पांच भेद हो जाते हैं–

''प्राणोदानौ सामनश्च व्यानश्चापान एव च।
स्थानस्था मारुताः पंच यापयन्ति शरीरिणम्।।[11]

शरीर में विचरण करने वाली इस वायु के 5 प्रकार होते हैः–

(1) प्राण (2) उदान (3) समान (4) व्यान (5) अपान

वातल प्रकृति के व्यक्ति अल्प बल वाले होते हैं चरक ने लिखा है–

'वातस्तु रूक्षलघु चलबहुशीघ्रपरूष विशदः।[12]

यह मुख्य दोष है पित्त, कफ, मल, धातु सभी पंगु है ये मेघ की तरह वात का अनुसरण करते हैं। यथा–

---

1. अ०सं०सू०–1/41
2. अ०सं०सू०अ०–16 दृष्टव्य
3. सु०सू०अ०–21/1
4. आ०का वृ०इति०–अत्रिदेव, पृ०–530,
5. च०सं०सू०अ०–12
6. च०सं०सू०अ०–8/5
7. आ०का वृ०इति०, पृ०–531,
8. अ०वे०–1/24/1
9. च०सं०सू०–18/49
10. तर्कसंग्रह, पृ०–10
11. सु०नि०–1,
12. च०वि०–8/98,

'पित्तं पंगु कफः पंगु पंगवो मलधातवः।

वायुना यत्र नीयन्ते तत्र गच्छन्ति मेघवत।।'[1]

चरक के अनुसार वात को संतुलित रखने के उपाय विमानाध्याय 6 में हैं। किन्तु एक सूत्र है– 'शुष्कता, ठंडा, हल्का, सूक्ष्म, चलायमान, शीघ्र फैलने वाला कठिन ये प्रमुख गुणों के अनुरूप आहार–विहार रात्रिचर्या, दिनचर्या व्यवस्थित करने से वायु असंतुलित होती है, इनसे विपरीत गुण स्निग्धता, उष्णता, भारीपन, स्थिरता, मृदुता आदि का उपयोग करने से वायु संतुलित रहती है।[2]

पित्तः– पित्त शरीर में पाचनात्मक शक्ति है शरीर में यह अग्नि तत्त्व, सूर्यतत्त्व, खटास युक्त बहने वाला पित्त का स्वरूप है।[3] आचार्य सुश्रुत ने 'समासेन पक्वाशयमध्यं पित्तस्य।'[4] अर्थात पित्त का प्रधान स्थन पक्वाशय और आमाशय के मध्यस्थली (गृहणी) है। कार्य के स्थान भेद से पित्त भी 5 प्रकार के होता है– (1) पाचक पित्त (2) रंजक पित्त (3) साधक पित्त (4) आलोचक पित्त (5) भ्राजक पित्त।

प्रकुपित पित्त व्यक्ति की शक्ति रूप सुखमय जीवन को बिगाड़ने हेतु शारीरिक कष्ट देने लगता है।[5]

पित्त का संतुलन :–

''सस्नेह मुष्णंतीक्ष्णं च द्रव्यमम्लं सरंकटु।

विपरीत गुणैः पित्तं दृव्यैराशु प्रशाम्यति।।''[6]

थोड़ा चिकना, गरम, तीक्ष्ण, द्रव, अम्ल, सर, कड़वा, ये पित्त के गुण हैं इनके अनुसार आहार विहार दिनचर्या रात्रिचर्या और मानसिकता वियवस्थित करने से 'पित्त' बढ़ता है। इनसे विपरीत गुण पूर्ण स्निग्धता, शीतता, मृदु, सान्द्र, कषाय, तिक्त अथवा मधुरता का उपयोग करने से 'पित्त' संतुलित रहता है।

कफः– इसे श्लेष्मा भी कहते हैं चरक ने कहा हैः–

प्राकृतस्तु बलं श्लेष्मा, विकृतो मलोच्यते।

स चैवोजः स्मृतः कायो स च पाप्मोपदिष्यते।[7]

प्रकृति अवस्था मे कफ को बल कहते हैं, किन्तु विकृतावस्था में इसे मल कहा

---

1. शार्ङ्ग0पू0–5/25
2. च0सू0–1/59
3. च0सं0सू0अ0–20/175
4. सु0सू0–21/6
5. च0वि0–6/17
6. च0सं0सू0–1/60
7. च0सू0–17/117

जाता है, यही शरीर में ओज और इसे ही पाप्मा कहते हैं। स्नेह, शीतता, शुक्लता, भारीपन, मीठापन ये कफ के निज स्वरूप हैं।[1] स्थान व कर्मानुसार यह भी पांच प्रकार का होता है–

(1) तर्पक कफ[2] (2) बोधक कफ (3) क्लेदक कफ[3] (4) अवलम्बक कफ[4] (5) श्लेषक कफ[5]

गुरू, शीत, मृदु , स्निग्ध, स्थिर, चिपचिपाहट कफ के गुण हैं। इनकी व्यवस्था से कफ बढता है। इसके विपरीत गुणों का उपयोग करने से कफ बढने नहीं पाता।[6]

त्रिदोषों में वात को मुख्य माना गया है महर्षि चरक ने इसे बड़े रोचक ढंग से कहा है– इस शरीर रूपी नगर मे 'वायु' रूपी राजा रहता है।

'काया नगर मध्ये तु मारूतः क्षितिपालकः।'

अतः हमें त्रिदोषों की साम्यावस्था का ध्यान रखना चाहिए तभी हम आरोग्य रह सकते हैं।

मानव स्वास्थ्य

स्वास्थ्य जीवन का वह गुण है, जो व्यक्ति को दीर्घायु और सर्वोत्तम सेवा करने योग्य बनाता हैं।[7] मानव जीवन में स्वास्थ्य का स्थान सर्वोपरि है।[8] वस्तुतः मनुष्य का शरीर स्वस्थ है, तो वह संसार के सभी सुखों का उपभोग कर सकता है।[9] कहा गया है– पहला सुख निरोगी काया।[10] अंग्रेजी में कहा गया है Health is Wealth अर्थात स्वास्थ्य ही धन है।

प्राचीन मनीषी ऋषियों ने भगवान सूर्य की स्तुति करते हुए सौ वर्षों तक सबको निरोग होकर स्वस्थ सशक्त बनकर जीवित रहने देखने सुनने बोलने तथा आदीन अर्थात समस्त साधनों से सम्पन्न होकर जीवन यापन करने की कामना की है यथा–

'पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतं श्रृणुयाम शरदः शतं।

प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात्।।[11]

1. च0सं0सू0–20/18 2.सु0सू0–21 3.अ0हृ0सू0–12/6 4.अ0सं0सू0–20/6

5.अ0सं0सू0–20/6 6.च0सं0सू0–1/61व शार्ङ0सं0–2/28–29

7.च0सं0सू0–1/16–17, 9/3, 30/18 8च.सं.सू0–1/15

9 सुख संज्ञकमारोग्यं... च सं0सू0–9/4 10रामचरित मानस–तुलसी

11 यजु0–36/24,क0आ0अं0–ज0फ0,01, पृ0–316

कहा गया है– A Sound mind in a sound body अर्थात स्वस्थ मन का स्वस्थ शरीर में निवास होता है। आचार्य चरक ने लिखा है– जैसे नगर का स्वामी नगर की रक्षा में और सारथी रथ की रक्षा में तत्पर रहता है वैसे ही बुद्धिमान मनुष्य को चाहिए कि वह शरीर रक्षा के कार्यों में तत्पर रहें।[1]

मानव स्वास्थ्य पश्चिमी दृष्टिकोण

पश्चिमी चिकित्सा शास्त्र अब तक स्वास्थ्य क्या है? इस दिशा में कुछ भी काम नहीं कर पाया, उसका सारा काम उस दिशा में है कि बीमारी क्या है? यदि हम पूछें कि स्वास्थ्य क्या है? तो वह धोखा देगा। वह कहता है– "जब कोई बीमारी नहीं होती है तो जो शेष रह जाता है वह स्वास्थ्य है।" किन्तु यह परिभाषा नहीं है क्योंकि बीमारी की स्वास्थ्य से परिभाषा कैसे की जा सकती है। यह तो वैसे ही हुआ जैसे कांटों से कोई फूल की परिभाषा करें। अतः मृत्यु से जीवन, अंधेरे से प्रकाश व पुरूष व स्त्रिी से स्त्री व पुरूष की परिभाषा नहीं की जा सकती है।[2]

चिकित्सा शास्त्र बाहर से पकड़ता है बाहर से बीमारी ही पकड़ में आती है। किन्तु वह जो भीतर है मनुष्य का आंतरिक अस्तित्व आत्मा स्वास्थ्य सदा वहीं से पकड़ा जा सकता है। उन्हें शायद यह नहीं पता कि शरीर मपि सत्त्वमनुविधीयते, सत्वं च शरीरम्।[3] इसीलिए भारतीय दृष्टि कोण से हिन्दी का स्वास्थ्य शब्द बहुत ही अद्भुत है। पाश्चात्य चिकित्सा पद्धति 'एलोपैथी' में स्वास्थ्य के लिए हेल्थ Helth शब्द है जो Heal (हील) शब्द से बना है Heal का अर्थ है होता है To cure (चंगा करना) व्याधि से मुक्त करना। जो पदार्थ व्याधि से मुक्त करता है उसे हीलर Healer कहते हैं। और हीलिंग Healing होने के बाद जो स्थिति उपलब्ध होती है। उसे हेल्थ Health यानी रोग से मुक्त होने पर उपलब्ध होने वाली स्थिति कहते है।[4] तात्पर्य यह कि ऐलोपैथिक मेडिकल साइंस के पास स्वास्थ्य की परिभाषा नहीं है। निरोगावस्था यानी Absense of illness में जो स्थिति होती है उसे स्वास्थ्य कहते हैं, हेल्थ Health नहीं। अतः जिसे स्वास्थ्य उपलब्ध है, उसे डॉक्टर/मेडिकल साइंस से कोई लेना–देना नहीं है। किन्तु ऐसे व्यक्ति को आयुर्वेद से जरूर लेना देना है।

1.च0सं0सू0–5/103 2.'ओसो'–हसिबा, खेलिबा, धरिबा ध्यानं, पृत्र–10

3. च0सं0शा0–4/36 4. निरोग धाम, पृ0– 45,

क्योंकि स्वास्थ्य की सही परिभाषा और उसके अनुवर्तन (Maintainance) की जानकारी सिर्फ आयुर्वेद के पास है।[1] इग्लैण्ड के सफल चिकित्सक एवं राजनीतिज्ञ जॉन लॉक ने लिखा हैः—'स्वास्थ्य मेरी ऐसी प्रेयसी है कि चिरकाल तक उसे रिझाने पर भी मैं उसकी कृपा नहीं पा सका।'[2]

भारतीय दृष्टिकोण

आरोग्य क्या है और रोग क्या है? जब इसकी विवेचना हो रही थी तब महर्षि चरक ने अकाट्य बात दोहरायी कि— सुख संज्ञकमारोग्यं, विकारो दुःखमेव च।''[3]

आरोग्य ही सुख और विकार (रोगावस्था) दुःख है। आदिमानव मनु ने लिखा है— (सर्वपरवशं दुःखं) पराधीन वस्तुए दुःखद तथा आत्मवश सुखद है।[4]

भारतीय मनीषियों के अनुसार 'बीमारी तो मनुष्य पर आती है लेकिन मनुष्य खुद भी एक बीमारी है जिन अर्थों में मनुष्य एक परेशानी चिन्ता तनाव बीमारी एक रोग है उन अर्थों में पृथ्वी पर कोई पशु भी नहीं है। आदमी का शरीर और आत्मा एक ही अस्तित्व के दो छोर हैं। बीमारी दोनों मे से किसी भी से प्रारम्भ हो सकती है।[5]

शरीराज्जायते व्याधिर्मानसो नैव संशयः।

मानसाज्जायते व्याधिः शरीरोनैव संशयः।।[6]

अर्थात शरीर में व्याधि उत्पन्न होती है तब मन में भी व्याधि होगी। इसी प्रकार मन में व्याधि उत्पन्न होने पर शरीर में भी व्याधि होगी। इसमें संशय नहीं है। इसलिए भगवान श्रीकृष्ण ने निरोग ज्वर रहित मन से कर्म करने को कहा हैः—

'युध्यस्व विगत ज्वरः।'[7]

यहाँ पहले यह समझ लेना आवश्यक है कि रोग क्या है?

रोग शब्द का अर्थः— 'रूजाकरत्त्वाद रोगः'[8] शरीर एवं मन को रूजा (पीड़ा) देने वाले भाव को रोग कहते हैं तथा सुख के भाव को आरोग्य कहते हैं। रोगों की उत्पत्ति राग अश्रु शोक से हुई है।

रोग शब्द रुज् धातु में धञ् प्रत्यय होने पर रूजा शब्द से बना है जिसका अर्थ

---

1. च0सं0सू0—30/26 एवं च0चि0—1/1/4
2. रंजना गाइड—बी0ए0III(राजनीति) पृ0—138 में उद्धृत
3. च0सं0सू0—9/4
4. मनुस्मृति 'विद्यार्थीचर्या'
5. च0सं0सू0—1/55
6. च0सं0वि0—6/10
7. भगवत्गीता—3/30
8. अ0सं0प्रस्तावना में उद्धृत

बीमारी, व्याधि, मनोव्यथा या अधि, असक्तता होता है।[1] इसी अर्थ में 'भोगे रोग भयं'[2] कहा गया है किन्तु नीतिशास्त्रों व भारतीय विचार धारा में ये आत्मापराध रूपी वृक्ष के फल हैं–

'रोग शोक परीताप, बन्धन, व्यसनानि च।
आत्मापराध वृक्षाणां फलान्येतानि देहिनाम।।[3]

रोग, शोक, सन्ताप, बन्धन और विपत्ति में प्राणियों के लिए अपने अपराध रूपी वृक्ष के फल हैं।

अन्तःकरण के शोक को आधि और काया देह के दुःख शोक को व्याधि कहते हैं। शरीरं व्याधि मन्दिरम् अर्थात शरीर को व्याधियों का घर कहा गया है। 'पूर्व जन्म कृतं पापं व्याधि रूपेण बाधते।'[4] पूर्व जन्म के किये पाप ही व्याधि के रूप में कष्ट पहुंचाते हैं। ऐसा माना गया है। वाग्भट जी दोषों की विषमता को रोग कहते हैं।[5]

चाणक्य नीति में कहा गया है कि– 'कामवासना के समान कोई रोग नहीं है।[6] लगभग सभी धर्म शास्त्रों में रोगों को कर्म के फल रूप में दिखाया गया है।

यथा– **'पापेन जायते व्याधिः, पापेन जायते जरा।**
पापेन जायते दैन्यं, दुःखं शोको भयंकर।।

व्यक्ति के पाप से व्याधि, जरा, दैन्य, शोक आदि अवस्थायें उत्पन्न होती हैं।[7] इसीलिए मनु ने कहा है– दुराचारी पुरूष संसार में निन्दित, दुःखी, व्याधियुक्त तथा अल्पायु होता है। किन्तु सदाचारी व्यक्ति 'शतं वर्षाणि जीवति' अर्थात सौ वर्ष तक जीवित रहता है।[8]

आयुर्वेद में केवल पाञ्चभौतिक शरीर के रोगों को ही रोग नहीं कहा जाता अपितु शरीर, इन्द्रिय, मन और आत्मा को होने वाले दुःखों को भी रोग कहते हैं– **तद् दुःख संयोगाव्याधयः उच्यन्ते।''**[9] आयुर्वेदाचार्यों ने रोगों के चार भेद किए हैं–

1. स्वाभाविक 2. आगन्तुक 3.कायिक 4. आन्तरिक।

शाङ्गधर संहिता में स्पष्टतः वर्णित है:–

---

1. सं०हि०कोश–आप्टे–पृ०–862, 2. भर्तृ०–3रु35 3. हितो०मित्र०–41
4. कादम्बरी–कथारम्भा, प्र०भाग, 5. अ०सं०सू०–1/43 6. चाणक्य नीति–पृ० 25
7. ब्रह्मखण्ड–16/51 8. मनु०–4/155–158 9.सु०सू०–1/23,

"स्वाभाविकागन्तुक कायिकान्तरारोगा भवेयुः किल कर्म दोषजाः।"[1]

महर्षि वेद व्यास ने इनके उदाहरण दिये हैं यथा–

"शरीराज्वर कुष्ठाद्याः क्रोधाद्यामानसामताः।

आगन्तवो विधातोत्थाः सहजाः क्षुज्जरादयः।[2]

ज्वर, कुष्ठादि शारीरिक (कायिक), क्रोधादि मानसिक (आन्तरिक), आगन्तुक प्रकृति प्रदत्त और स्वाभाविक (सहज) भूख प्यास आदि व्याधियां हैं। रोगों की संख्या सुश्रुत जी ने 1120 मानी है।[3] इसी क्रम में भुसुण्डि जी ने मानस रोगों का उल्लेख किया है वे हैं काम, लोभ, क्रोध, मनोरथ, ममता, दुष्टता, अहंकार, तृष्णा, मत्सर आदि।[4] मोह तो सम्पूर्ण व्याधियों की जड़ है:–

मोह सकल व्याधिन्ह कर मूला। तिन्ह ते उपजहिं बहु सूला।

त्रिविध रोग मार्ग

आयुर्वेद में **'त्रयोरोगाः मार्ग इति शाखा मर्मास्थि सन्ध्यः कोष्ठच्'**[5] के अनुसार रोग के तीन मार्ग होते हैं:– 1. शाखा 2. मर्मास्थि सन्धियाँ 3. कोष्ठ संक्षिप्ततः जानकारी निम्नवत् है:–

शाखा:– शरीर की धातु एवं रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा शुक्र और त्वचा इन्हें शाखा कहते हैं यह रोगों का बाहरी मार्ग है।[6]

मर्मास्थि सन्धियाँ– शरीर में कुल 107 मर्म स्थान हैं किन्तु विशेष प्राण घातक मर्मस्थान तीन हैं– बस्ति, हृदय, सिर (शरीर में हडि्डयों की संन्धियाँ 201 हैं। इनमें होने वाले रोगों में पक्षाघात, शोष, शिरोरोग, हृदयविकार के नाम हैं।)[7]

कोष्ठ:– अमाशय (Stomuch), अग्नाशय (Pancreas), पक्वाशय (Intestines), मूत्राशय (Kidney–Bladder), रूधिराशय (Leaver & Spleen), हृदय (Heart), उण्डुक (Caecum), फुफ्फुस (Lungs) ये सभी कोष्ठ हैं।

स्वस्थ शब्द का अर्थ– स्वस्थ शब्द दो शब्दों से मिलकर बना है– स्व +स्थ, स्व का अर्थ आत्मा और स्थ शब्द स्थित रहने के लिए प्रयुक्त है।

1.शार्ङ्0सं0–1/5, 2.अग्निपुराण–280/1–2 3.सु0उ0–66/7–8
4.रामचरित0–7/121/7 एवं 28–31 5,6. नि0वाजीकरण वि0–पृ0 29, 7. च0सं0सि0–9/2–3

अतः **'स्वस्मिन्‌तिष्ठतीति स्वस्थः।'** अर्थात् "जो अपने आप में सुख स्वरूप आत्मा में स्थित रहे' वही स्वस्थ है।"[1] **प्रसन्नात्मेन्द्रियग्रामों स्थिर धीः स्वस्थमुच्यते।** मन, बुद्धि और चित्त जिसका स्थिर है, ऐसा प्रसन्नात्मा व्यक्ति ही स्वस्थ है। आरोग्य को पुरूषार्थ चतुष्टय[2] का मूल तथा तीन प्रमुख एषणाओं[3] की पूर्ति का माध्यम माना गया है।

स्वस्थ्य लक्षणः— स्वस्थ्यय पुरुष के लक्षणों की व्याख्या उपस्थित करने के पूर्व पुरुष भी आयुर्वेदीय अवधारणा का उल्लेख आवश्यक है। मन, आत्मा और शरीर ये तीनों (घड़ा रखने की) तिपाई के समान है। जीवसृष्टि इनके संयोग से खड़ी है। उसमें कर्म फलादि सुख दुःख सर्व अधिष्ठित है।"[4]
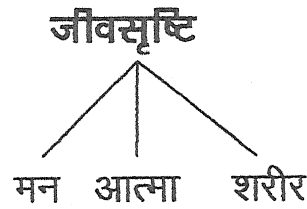
किन्तु जीवन(Life) शरीरेन्द्रियसत्त्वात्मसंयोगो धारि जीवितम्"[5] के अनुसार शरीर इन्द्रिय, सत्त्व (मन), आत्मा का संयोग है।
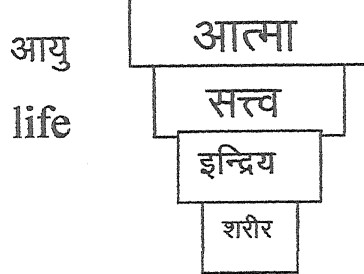
अतः जब हम पुरुष स्वास्थ्य की व्याख्या करतें हैं तो स्वास्थ्य लक्षणों का उल्लेख भी इन चारों पक्षों के सन्दर्भ में होना चाहिये । आचार्य सुश्रुत ने निम्नलिखित सन्दर्भ में पूर्ण स्वास्थ्य लक्षणों का अत्यन्त वैज्ञानिक वर्णन उपस्थित किया है जो पुरुष के उपर्युक्त चारों पक्षों की ओर संकेत करता हैः—

समदोषः समाग्निश्च समधातुमलक्रियाः।
प्रसन्नात्मेन्द्रियमनः स्वस्थ इत्यभिधीयते।।[6]

जिस पुरुष के दोष, धातु मल तथा अग्नि व्यापार सम हो और मन इन्द्रियाँ, आत्मा प्रसन्न हो वही स्वस्थ्य है। इसकी संक्षिप्त व्याख्या निम्नवत् हैः—

समदोषः— शरीर संरक्षण में त्रिदोषों का विशेष महत्त्व है, जिस प्रकार लोक के समस्त

---

1. आ0अं0क0,ज0फ0,01 पृ0—75 2.च0सं0सू0—1/15 3.च0सं0सू0—11/3
4. सत्त्वं मात्मा शरीरं.....च0सं0सू0—1/46 5. च0सं0सू0—1/42 6.सु0सं0सू0—15/41

क्रियाओं के संचालन हेतु सोम, सूर्य, अनिल की प्रधान आवश्यकता है। उसी प्रकार सजीव शरीर धारण करने हेतु त्रिदोषों की अत्यन्त आवश्यकता है।[1] दोष धातु मलाग्नि ही मधुरादि रसों के सहयोग से देह का धारण करते हैं।[2]

समाग्नि– से जठराग्नि (पाचन क्रिया) के सम रहने का भाव है। किन्तु बल के भेद से शारीरिक अग्नि के चार भेद हैं[3]– तीक्ष्ण, मंद, सम और विषम।

समधातुः– शरीर मे सात धातुएं हैं:– रस, रक्त, मांस, मेंद, अस्थि मज्जा, शुक्र।[4]

'रसनाग्राह्यों गुणों रसः स च मधुराम्ल लवण कटु कषाय तिक्त भेदात् षड्विधः।'[5]

जिह्वा से ग्राह्य गुण रस है, यह छः प्रकार का होता है– मधुर, अम्ल, लवण, कटु, कषाय, तिक्त[6]। इसी से क्रमशः धातुएं उत्पन्न होती हैं।[7] इनकी साम्यावस्था ही जीवन है– **''शुक्रायत्तं बलं पुंसां मलायत्तंच जीवनम् ।**

तस्माद्यत्नेन संरक्ष्ये यक्ष्मिणो मल रेतसी ।''[8]

शायद इसी कारण कहा गया है– **'मरणं बिन्दु पातेन, जीवनं बिन्दु धारणात्।।'**[9]

सममलः– शरीर में स्वेद, मूत्र, पुरीष (Stool) तीनो मलान्त्तर्गत गिने जाते हैं। महर्षि वाग्भट ने लिखा है– **'सर्वेषां रोगाणां निदानं कुपितं मलाः।'**[10] सभी रोगों का मुख्य कारण कुपित मल हैं अतः आरोग्य हेतु मल सम होना चाहिए।

प्रसन्नात्मेन्द्रियमनः– ज्ञानाश्रय आत्मा,[11] सुखादि का साधन[12] मन और 10 इन्द्रियाँ[13] (कर्मेन्द्रियाँ + ज्ञानेन्द्रियाँ) की प्रसन्नता को स्वास्थ्य कहते हैं। इस प्रकार सुश्रुत जी ने शारीरिक स्वास्थ्य+मानसिक+आध्यात्मिक स्वास्थ्य त्र पूर्णतया स्वास्थ्य (Complete Health) का समीकरण उपस्थित किया है। आधुनिक समय में विश्व स्वास्थ्य संगठन (W.H.O.) अनेकों बार सुधार के बाद कहीं जाकर अब स्वास्थ्य को पूर्ण रूपेण परिभाषित कर पाया है। यह आधुनिक परिभाषा हजारों वर्ष पहले सुश्रुत की दी परिभाषा से अलग नहीं है:–Health is a state of complete physical, mental, spirtual and social welibeing and not merely the absence of disease or infiermity."[14]

---

1 सु0सं0सू0अ0–21 एवं च0सं0वि0–1/4 2.सु0सं0उ0–66/6 पृ0–504 3. च0सं0वि0–6/14

4. शार्ड0–5/11 5. तर्क सं0 पृ0–19 6.च0सं0वि0–1/3

7.शार्ङ0–55/11 8. सू0सं0उ0–66/2 के अनुवाद में उद्धृत एवं शार्ङ0सं0–5/49

9.क0अ0आ0अं0,पृ0–129 10. अ0हृ0नि0–1/12

11. तर्क सं0 पृ0–16 एवं च0सं0शा0–1/33–40 12. तर्क सं0, पृ0सं0–17 एवं च0सं0शा0–1/7

13 1. च0सं0सू0–8/4 14. स्व0वृ0वि0, पृष्ठ–3 में उद्धृत

अर्थात् स्वास्थ्य केवल रोग और विकृति की अनुपस्थिति ही नहीं है बल्कि सम्पूर्ण शारीरिक मानसिक अध्यात्मिक एवं सामाजिक स्तर से अच्छा होता है।

स्वास्थ्य के उपर्युक्त शारीरिक (Physical) मानसिक (Mental) ऐन्द्रियिक (Sensorial) तथा आध्यात्मिक (Spiriteal) पक्षों के अतिरिक्त एक अन्य महत्वपूर्ण पक्ष है 'सामाजिक स्वास्थ्य' (Social) आयुर्वेद में इस पक्ष की व्याख्या आयु के मूलभूत लक्षणों के सन्दर्भ में की गई है[1]–
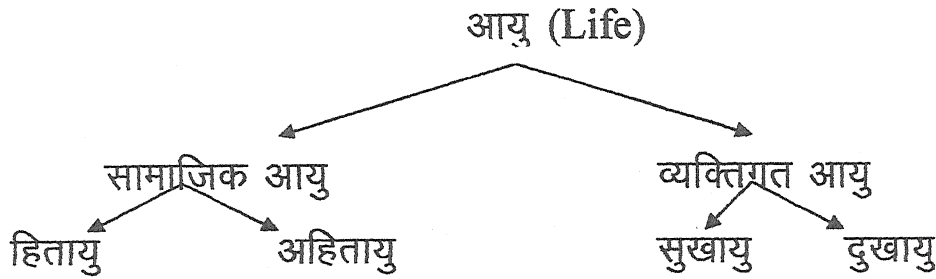
स्वास्थ्य परिरक्षण हेतु स्वस्थवृत्त का ध्यान रखना चाहिए। सदाचरण करता हुआ व्यक्ति अपनी संपूर्ण आयु प्राप्त करता है।[2] अतः शरीर में चाहे अपने अन्दर से अथवा वाह्य वातावरण के कारण विकृति उत्पन्न हुई हो सभी विकृतियों को दूर कर प्राणियों का आर्तनाशन आयुर्वेदिक चिकित्सा शास्त्र का मुख्य उद्देश्य रहा है:– महर्षि चरक ने उद्घोषित किया– **''नार्थार्थनापि कामार्थमथ भूतदयां प्रति।**

वर्तते यश्चिकित्सायां स सर्वमतिवर्तते।।''[3]

आयुर्वेद और वनस्पति

मानव समाज और उसकी संस्कृति से वनस्पतियों का घनिष्ठ सम्बन्ध अति प्राचीन काल से रहा है। आदि काल से ही मानव वनस्पतियों पर निर्भर रहने लगा था। सत्य तो यह है कि मानव के सर्वांगीण विकास मे वनस्पतियों का प्रमुख योगदान रहा है। वनस्पतियों का इतिहास भी उतना ही प्राचीन है जितना मानव समाज का। प्रथमतः वनस्पतियों के 3 अत्यन्त महत्वपूर्ण उपयोग थे– पोषण, आवरण एवं औषधि।

वनस्पति शब्द का अर्थ– वनस्यपतिः अर्थात् एक बड़ा जंगली वृक्ष, विशेषकर वह जिसे बिना बौर आये फल लगता है।[4] चरक संहितानुसार त्रिविध द्रव्य में स्थावर (उद्भिज) औषधि के चार भेद हैं[5]– **भौममौषधमुछिष्टमौद्भिदन्तु चतुर्विधम् ।**

1.च0सं0सू0–1/41 2. च0सं0शा0–2/46–47 एवं अष्टांग सं0सू0–5/47 3 च0सं0चि0–1/4/58
4. सं0हि0कोश–आप्टे, पृ0–896 5. च0सं0सू0–1/43

(1) वनस्पति (2) वानस्पत्य (3) वीरूध (4) औषधिः।

फलैर्वनस्पतिः पुष्पैर्वानस्पत्यः फलैरपि।

औषध्यः फलपाकान्तः प्रतानैर्वीरूधस्मृताः।।

वनस्पति में केवल फल होता है– जैसे बड़, पीपर, गूलर वानस्पत्य में फूल और फल दोनों होते हैं। जैसे आम जामुन नीम आदि। और औषधि संपूर्ण फल पकने पर नष्ट हो जाती है जैसे गेहूँ, जौ तथा लता संपूर्ण प्रतान युक्त (फैलने वाली) होती है। इन्हीं को वीरूध कहा गया है। प्राचीन काल से ही वनस्पतियो का महत्व रहा है इसके विषय में मत्स्यपुराण में कहा गया है:–

''दशकूप समो वापी, दशवापी समो ह्रदः।

दशह्रद समः पुत्रः, दशपुत्र समो द्रुमः।।[1]

अर्थात् दस कुओं के समान एक वापी व दशवापी समान झील, दस झीलों के समान पुत्र और दश पुत्रों के समान एक वृक्ष होता है।

अतः वृक्षों का महत्त्व मानव से कम नहीं है। आयुर्वेदानुसार वनस्पतियों को पञ्चतत्त्वानुसार पाँच भागों मे बाँटा गया है।[2]–

1. **आकाशतत्व की वनौषधियाँ**–गेहूँ, जव, नागरमोथा, बाँस (तृण वर्ग वनस्पतियाँ)
2. **वायु तत्व की वनौषधियाँ**– सप्तपर्ण, कुटज आदि
3. **तेजस् (अग्नि) वनौषधियाँ**– आम्र, आमला, कटहल आदि
4. **पृथ्वी तत्व की वनौषधियाँ**– बबूल, नीम, शमी, शीशम आदि
5. **जल तत्व वनौषधियाँ**– शतावरी, मुलैठी आदि।

वनस्पतियों का हमारे जीवन में अत्यधिक महत्व है इसी कारण शास्त्रों में कहा गया है– पुष्पित, सुगन्धित एक सुवृक्ष द्वारा संपूर्ण वन सुपुत्र की तरह सुवासित होता है–

'एकेनापि सुवृक्षेण पुष्पितेन सुगन्धिना।

वासितं वै वनं सर्वं सुपुत्रेण कुलं यथा।।''

1. मत्स्यपुराण उद्धृत 'संस्कृत पद्य पीयूषम्' कक्षा–10 2. वनौषधि विशेषांक भाग–1, पृ0–3

अध्याय

२

महाकविकालिदास की कृतियों का सामान्य परिचय

अध्याय–2

महाकवि कालिदास की कृतियों का सामान्य परिचय

परिस्थिति का लोगों के कार्य पर कितना प्रभाव होता है, इसी विषय में दो मत हैं। कुछ लोग कहते हैं कि महान पुरुष ईश्वर की देन हैं। यह कहना तो ऐसा हुआ कि पुष्प की सुगन्ध चारो ओर फैलने के लिए उसका पौधा उद्यान में ही उगना चाहिए। कवि कालिदास स्वयं कहते हैं कि कभी–कभी वन लताएं उत्तम गुणों से उद्यानोंत्पन्न लताओं के महत्व को कम कर देती हैं–

''दूरीं कृताः खलु गुणैः उद्यान लता वन लताभि।[1]

इस उक्ति में बहुत अंश तक सच्चाई है। श्रेष्ठ मनुष्य में दैवी अंश रहता है, यह बात भगवान नें भी गीता में कही है। हम देखते हैं कि कई बार कुछ थोड़े लोग अपने गुणों के प्रभाव से प्रतिकूल परिस्थिति को अनुकूल बना लेते हैं।

जैसे वन की लता अपने पुष्पों की सुवास से चारो दिशाओं को सुवासित करती हैं परन्तु कोई विरला ही रसिक व्यक्ति उसका गुण ग्राहक बनता है इसी प्रकार कालिदास के पहले कम या अधिक प्रतिभाशाली ग्रन्थकार अवश्य हुए होंगे। परन्तु –

'' निराश्रया न शोभन्ते पण्डिता वनिता लताः''

इस उक्ति के अनुसार उन्हे किसी रसिक राजा का आश्रय न मिलने से या रुचि का सहामन्यन होने से उनके ग्रन्थों के नाम लुप्त हो गये हैं। कालिदास के हाथों जो इतनी उत्कृष्ट ग्रन्थ रचना हुई है उसके लिए निश्चय ही उन्हें तत्कालीन परिस्थिति बहुत अनुकूल पड़ी होगी ।जिस प्रकार वाल्मीकि मानवात्मा के विषय में भारतीय नीति की मुख्यता नैतिक मनोवृति के तथा व्यास मुख्यतया बौद्धिक मनोवृत्ति के व्याख्यापक रहे हैं उसी प्रकार कालिदास उसकी प्रधानता भौतिक मनः स्थिति के प्रतिनिधि एवं व्याख्याता हैं। वे किसी महत्व पूर्ण के असावधान गायक नहीं हैं– Remember me a little then. I Pray the idle singer an empty day."[2] अपितु एक ऐसे जटिल एवं समृद्ध युग की प्रसूति तथा पुरष्कर्ता हैं जिसकी तुलना विश्व–इतिहास में यूनान के

---

1 –अभिज्ञान शाकु0
2-william morrison

पेरीक्लीज युग तथा इंग्लैंड के एलिजाबेथ युग से की गयी है । प्रो0 मिराशी ने इनकी आठ कृतियाँ मानी हैं[1]—''ऋतुसंहारम्, मालविकाग्निमित्रम्, कुमारसम्मवम्, विक्रमोर्वशीयम्, मेघदूतम्, कुन्तलेश्वरदौत्य, शाकुन्तलम् और रघुवंशम्। इनके अतिरिक्त सेतुबंध अथवा रावणवहो नामक प्राकृत काव्य में, जो प्रवरसेन के नाम पर प्रसिद्ध है कालिदास का हाँथ रहा होगा। कुन्तलेश्वरदौत्य, को छोड़कर अवशिष्ट काव्य नाटक आज उपलब्ध है। कुन्तलेश्वरदौत्य भी कालिदास की रचना है यह क्षेमेन्द्र ने अपनी औचित्य विचार चर्चा के पृ0 1391 में कहा है।''कवि की प्रमुख रचनाओं का परिचय निम्न है—

रघुवंशम्

वैदिक काल की समाप्ति बाद लौकिक संस्कृति में जो साहित्य रचा गया, उसे सामान्यतः इतिहास पुराण तथा काव्य की विविध श्रेणियों में विभाजित किया गया है। किन्तु इन तीनों वर्गो में रखा जाने वाला साहित्य मूलतः कवित्वमूलक कारयित्री प्रतिभा की प्रसूति है। जहाँ—जहाँ ये रचनाएं श्रेष्ठ एवं प्रभावोत्पादक बनी हैं, वहाँ—वहाँ रचयिताओं की सर्जन प्रेरणा कवित्वमय दिखायी पडती है। महाकाव्यों को ऐतिहासिक इतिवृत्त माना जाता है, लेकिन उनमें कवि की ललित कल्पना का सौन्दर्य स्पष्ट वर्तमान है। अपने इसी गुण के कारण ये परवर्ती काव्यों को प्रभावित कर सके हैं। ऋग्वेद में लोप मुद्रा—अगस्त्य, शुनः—शेप, च्यवन—सुकन्या, नहुष—सरस्वती, पुरुरवा—उर्वशी, सरमा तथा पणि इत्यादि अनेक कथाएं उपलब्ध हैं। किसी यज्ञ के आयोजन पर पुरोहितों तथा चारणों द्वारा उसके नायक की और उसकी जाति की प्रशंसा गीतों में गायी जाती थी। ऐसे शुभ अवसरों पर देवताओं तथा वीर पुरुषों की कहानियाँ भी कही जाती थीं। समयान्तर में सूतों अथवा चारणों का एक परम्परागत वर्ग उत्पन्न हो गया। विरुद गायकों की यह विरादरी बढती गई और काल क्षेप से कतिपय कथानकों में क्रमवद्ध चक्र अस्तित्व में आ गयें। कवित्व प्रतिभा से समन्वित किसी भी कल्पना प्रवण व्यक्ति के लिए इस प्रकार, यथेष्ट वर्ण्य सामग्री संचित हो गई। यही युग—युग से संचित कथा चक्र महाकाव्यों की प्रतिपाद्य वस्तु बन गये। राम कथा के चक्र को लेकर 'रामायण' की रचना करने वाले वाल्मीकि आदि कवि और

1 कालिदास—डॉ मिराशी पृष्ठ — 88

रामायण आदि महाकाव्य है। जिसे चतुर्विंशति संहिता कहा गया है। महाभारत दूसरा महाकाव्य है, जिसे विश्व–साहित्य में सबसे लम्बा महाकाव्य बताया गया है। इसमें एक लाख श्लोक हैं तथा वह वर्तमान रूप में इलियड–ओडसी (ग्रीक महाकाव्य) के सम्मिलित रूप का आठ गुना है। मौलिक रूप में महाभारत में लगभग चौबीस हजार श्लोक थे और ऐसा विश्वास किया गया है कि इसका वर्तमान आकार ईशा की चौथी शताब्दी के आसपास पूर्ण हुआ होगा। वैदिक कालीन लोक–कथाएं, पुराकथाएँ, वीरों तथा साहसिक कृत्यों से संबन्धित वर्णनात्मक गीत, नैतिक उपाख्यान ऋषि परम्परा के सूक्त वचन इत्यादि महाभारत में गुम्फित हुए हैं। तथापि, कौरव पाण्डव वाले मुख्य वृत्त के रचयिता महर्षि वेदव्यास ही मानें गये हैं।

आनन्दवर्धनानुसार 'रामायण' का मुख्य रस करुण है[1], क्योंकि आरम्भ करुण से होता है और राम के सामने सीता के पृथ्वी में अन्तर्ध्यान होने के दृश्य से इसका अन्त भी करूण से ही हुआ है–**रामायणेहि करुणोरसः स्वयमादिकविनासूचितः 'शोकः श्लोकत्वमागतः 'इत्येवेवादिना।निर्व्यूठष्चसखंसीताऽत्यन्तवियोगपर्यन्तमेवस्वप्रबन्धमुपरचयता'**[1]

महाभारत का प्रधान रस शान्त माना गया है क्योंकि व्यास ने केवल युद्धों का वर्णन ही नहीं किया अपितु इस भौतिक जीवन की निस्सारता प्रदर्शित कर प्राणियों को मोक्ष के लिए प्रोत्साहित किया है। अस्तु! रामायण और महाभारत आर्ष परम्परा के काव्य हैं। रामायण में कवित्व चमत्कार महत्वपूर्ण बन गया है, जब कि महाभारत में इतिवृत वर्णन को प्राधान्य मिला है। इसी कारण प्रायः रामायण को काव्य तथा महाभारत को इतिहास कहा जाता है।

परवर्ती संस्कृत साहित्य पर इन दोनों ग्रन्थ रत्नों का पुष्कल प्रभाव पड़ा है। रस पोषक वर्णन तथा काव्यगत व्यापक औचित्य की विद्यमानता के कारण रामायण महाकाव्य का प्रथम तथा भव्य दर्शन है। प्रसिद्ध साहित्य शास्त्री दण्डी ने रामायण को ही ध्यान में रखकर महाकाव्य का लक्षण किया है[2]–

''सर्गबन्धों महाकाव्यमुच्यते तस्य लक्षणम् ।

आशीर्नमक्रियावस्तु निर्देश वापि तन्मुखम् ।।

इतिहास कथोद्भूत मितरद् वा सदाश्रयम् ।

---

1. ध्वन्यालोक, उद्योत–4 2. काव्यादर्श–दण्डी, 1/14–1/22

चतुर्वर्गफलायतं चतुरोदात्तनायकम्।।

नगरार्णवशैलर्तुचन्द्राकोदय वर्णनैः।

महाकाव्यों की इसी परम्परा में कालिदास ने रघुवंश तथा कुमारसंभव का प्रणयन किया है। वाल्मीकि की काव्य शैली का उदान्त उत्कर्ष कालिदास की रचनाओं में प्रस्फुटित हुआ है। रघुवंश में कालिदास ने 'पूर्व सुरिभिः' का कथन कर आदि कवि की ओर संकेत किया है। 'रामायण को' कवि प्रथम पद्धति कहकर भी उन्होंने वाल्मीकि के प्रति अपने आभार का प्रदर्शन किया है।

'अथवा कृतवाग्द्वारे वंशेऽस्मिन् पूर्वसूरिभिः।''

मणौ वज्र समुत्कीर्णे सूत्रस्येवास्ति में गतिः।[1]

पर मुझे यही बड़ा भारी भरोसा है कि वाल्मीकि आदि मुझसे पूर्व के कवियों ने इस सूर्य वंश पर (सुन्दर काव्य) लिखकर वाणी का जो द्वार पहले से ही खोल दिया है उसमें बैठ जाना और पुनः इस वंश का वर्णन करना, मेरे लिए वैसा ही सरल हो गया है जैसे हीरे की कमी से विंधे हुए मणि में डोरा पिरो देना।

''साङ्गं च वेदमध्याप्य किंचिदुत्क्रान्त शैशवौ ।

स्वकृतिं गापयामास कवि प्रथम पद्धतिम् ।।[2]

जब वे बच्चे बड़े हुए तब ऋषि ने उन दोनों को वेद वेदांग भी पढ़ाया और फिर उन्हें अपनी रचना आदिकाव्य रामायण का गाना भी सिखा दिया।''

रघुवंश की कथा सर्गानुकूल इस प्रकार हैः–

प्रथम सर्ग में राजा दिलीप का चरित्र वर्णित है। पुत्र विहीन होने के कारण अत्यन्त दुःखित होकर, दिलीप अपनी पत्नी सुदक्षिणा के सहित कुल गुरु वशिष्ठ के आश्रम में पहुंचते हैं। वशिष्ठ अपने आश्रम में विद्यमान नन्दिनी गौ की सेवा करने के लिए दिलीप को निर्देश देते है। **द्वितीय सर्ग** में दिलीप की गौ भक्ति का वर्णन है। राजा एकाग्र चित्त से नन्दिनी की परिचिर्चा में संलग्न हो जाते हैं। मायावी सिंह के आक्रमण पर राजा गाय की मुक्ति के लिए उससे अनुनय विनय करते हैं और सिंह को अपना शरीर अर्पण करते हैं। इस पर नन्दिनी प्रसन्न हो जाती है और पुत्र प्राप्ति का आशीर्वाद देते हुए राजा को अपना दूध पीने के लिए कहती हैं। राजा आश्रम को

1. रघु0–1/4 2. रघु0–15/33

लौट आते हैं और गुरु को सारा वृत्तान्त सुनाकर, पत्नी के साथ गाय का दूध पीते है और राजधानी लौट जाते हैं। **तृतीय सर्ग** में रघु की उत्पत्ति, यौवराज्य तथा अश्वमेध यज्ञ में उनके द्वारा प्रदर्शित पराक्रम का वर्णन हुआ है। यज्ञ की समाप्ति पर दिलीप रघु को राजा बनाते है और स्वयं सुदक्षिणा के साथ तपोवन को चले जाते हैं। **चतुर्थ सर्ग** में रघु की दिग्विजय का वृत्तान्त वर्णित है। **पंचम सर्ग** में रघु की दान–शीलता का चित्रण हुआ है। रघु का राजकोष उनकी असीम दानवृत्ति के कारण रिक्त हो गया है,– इसी समय कौत्स नामक एक ब्रह्चारी विप्र चौदह करोड़ स्वर्ण मुद्राएं गुरू दक्षिणा के निमित्त माँगने आता है। धनपति कुबेर आक्रमण के भय से स्वर्ण मुद्राएँ बरसा देता है और विप्र कौत्स अभीष्ट धन लेकर राजा को पुत्र प्राप्ति का आशीर्वाद देता है और लौट जाता है। **छठे** और **सातवें** सर्गों में रघु के तनय अज का विदर्भ राज की बहन इन्दुमती द्वारा स्वयंम्बर में चुना जाना वर्णित है। भिन्न–भिन्न देशों के राजा स्वयंवर में आए हुए है, लेकिन अज ही इन्दुमती को आकर्षित करता है क्योंकि उसे सम्मोहन नामक अस्त्र एक गन्धर्व से मिला है। इस सन्दर्भ में कवि ने भिन्न–भिन्न प्रदेशों के नरेशों के व्यक्तिगत गुणों सम्पत्ति शौर्य तथा पूर्वजों की कीर्ति तत्तद भूखण्डों के प्राकृतिक सौन्दर्य इत्यादि का अत्यन्त रमणीय एवं भौगौलिक दृष्टि से नितान्त सटीक वर्णन किया है। **आठवे सर्ग** में दशरथ की उत्पत्ति, इन्दुमती की मृत्यु और अज के विलाप तथा शरीर त्याग का वर्णन हुआ है। **नवें** से लेकर **पन्द्रहवें सर्ग** तक राम कथा वर्णित है। **सोलहवें सर्ग** में राम के पुत्र कुश के नाग कन्या कुमुद्वती के साथ परिणय का वर्णन हुआ हैं इसी प्रसंग में अयोध्या की नगर देवी द्वारा वर्णित अयोध्या की दुर्दशा तथा कुश के जल विहार का अत्यन्त सजीव चित्रण उपलब्ध होता है। **सत्रहवें सर्ग** में कुश के पुत्र अतिथि का चरित्र चित्रण किया गया है। **अठारहवें सर्ग** में 21 राजाओं का उल्लेख है। **उन्नीसवें सर्ग** में सुदर्शन के पुत्र राजा अग्निवर्ण की विलासिता एवं दुःखद मृत्यु का भावुक चित्रण हुआ है। इसी स्थल पर काव्य समाप्त हो जाता है। रघुवंशम् की रचना के लिए काव्य हेतु कवि ने स्वयं वर्णित किया है–

''रघूणामन्वयंवक्ष्येतनुवाग्विभवोऽपिसन्।

तद् गुणैः कर्णमागत्य चापलाय प्रचोदितः।

ऐसे रघुवंशियों के वंश को मै वाणी वैभव थोड़ा होते हुए भी कान में सुनाई पड़े हुए उन्हीं के गुणों से आकर्षित होकर मैं अन्तः प्रेरणा से मैं वर्णन कर रहा हूँ।

विशेषतायें:– कविता तो स्वाभाविक उद्‌गिरा होती है, जो किसी दैवी प्रेरणा अथवा नैसर्गिक प्रतिभा के कारण रस सिद्ध कवि के मुख या लेखनी से अनायास निकलती चली जाती है। कुछ लोग ऐसे अवश्य हैं जो बल पूर्वक कविता गढ़ते तो हैं ही उसे यत्नपूर्वक सुनाते भी फिरते हैं सुनने को बाध्य भी करते हैं। इतना ही नहीं अपनी उस तुकबन्दी पर वे लिखने की तिथि स्थान और समय तक अंकित कर देने के साथ ही अपना लम्बा–चौड़ा परिचय देते हुए जन्म स्थान, जन्म तिथि, कुल, शिक्षा आदि का भी विवरण यह समझकर दे डालते हैं कि मेरे जैसा कवि न आज तक हुआ, न होगा, लोग मेरे नाम की माला जपा करेगें। ऐसा ही कोई भ्रान्त कवि किसी सहृदय काव्य रसिक गुणज्ञ मनीषी के पास पहुंचकर कहने लगा कि मै कवि हूँ, कविता सुनाने आया हूँ। इस पर उन्होंने मुस्कराते हुए पूछा–

''काव्यं करोषि? किमु ते सुहृदो न सन्ति,

ये त्वामुदीर्ण पवनं न निवारयन्ति।

गव्यं घृतं पिव निवात गृहं प्रविष्य,

बाताधिका हि पुरुषाःकवयो भवन्ति।।

(अच्छा तो आप कविता भी करते हैं? तो यह बताइए कि क्या आपके कोई ऐसे मित्र नहीं है जो आपके इस कविता करने के प्रचण्ड वातरोग को दूर कर सके। न हो तो आप मेरी बात मान लीजिए कि आप किसी बन्द कोठरी में बैठकर गाय का घी पी डालिए क्योंकि जिन लोगों को प्रबल वात रोग हो उठता है वे कवि बन जाते हैं अर्थात् कविता करना एक प्रकार का वात विकार ही है।)

किन्तु कवि कुलगुरु कालिदास तो उस कविता–कामिनी के विलास और हाव–भाव थे जिसके सम्बन्ध में महाकवि जयदेव ने अपने प्रसन्नराघव नाटक की प्रस्तावना में कहा है–

'' यस्याश्चौरश्चिकुर निकरो कर्ण पूरो मयूरो,

भासो हासः कविकुल गुरुः कालिदासो विलासः।

हर्षो हर्षः हृदयवसतिः पंच बाणस्तु बाणः

केषां नैषा कथय कविता–कामिनी कौतुकाय।।''[1]

(उस कविता कामिनी को देखकर किसे कौतुक नहीं होगा, जिसके चोर कवि ही केश हैं, मयूर कवि ही कर्णफूल है, भास कवि ही मुस्कान है, कवि कुल गुरु कालिदास ही जिसके विलास (हाव–भाव) हैं, महाकवि श्रीहर्ष ही जिसके हर्ष हैं और कवि बाणभट्ट ही हृदय में बसे रहने वाले कामदेव हैं। यही कारण है कि व्रहत्त्रयी के कवि माघ, भारवि, श्रीहर्ष के होते हुये भी कवियों की गिनती करते समय अनामिका, अनामिका ही बनी रह गयी, किसी का भी नाम उस पर नहीं चढ़ पाया.................................

अनामिका सार्थवती बभूव। क्योंकि उस कवि के काव्य का क्या महत्त्व और उस धनुर्धारी के बाण चलाने का क्या बाण चलाना कि दूसरे के हृदय में लग कर भी उसे झूमने के लिये वाध्य न कर दें, उसका सिर न चकरा दे–

किं कवेस्तस्य काव्येम किं काण्डेन धनुष्मतः।

परस्य हृदये लग्नं न धूर्णयति यच्छिरः।।[2]

रघुवंश कालिदास की प्रौढतम प्रतिभा की प्रस्तुति समझा गया है । विद्वानों का ऐसा अनुमान है कि संस्कृत के आचार्यों ने महाकाव्य के जो लक्षण निर्धारित किये हैं। उनका आधारभूत स्रोत रघुवंश ही है। लोकप्रियता में यह ग्रन्थ रत्न सर्वथा अनुपमेय है और इस पर लगभग 40 टीकायें भिन्न–भिन्न कालों में रचित उपलब्ध हैं। कुमारसंभव तथा मेघदूत की तुलना में इसका चित्रपट व्यापक एवं विशाल है क्योंकि जहाँ प्रथम दोनों काव्यों की कथ्यवस्तु केवल एक–एक दैवी–युग्म के प्रणय सम्बद्ध है। वहाँ रघुवंश के 19 सर्गों में 29 सूर्यवंशीय राजाओं का न्यूनाधिक वर्णन हुआ है। यद्यपि गीर्वाणगिरा के रचयिताओं में कालिदास रघुकार की अभिधा से प्रख्यात हैं, जो रघुवंश की सर्वोत्कृष्टता का विद्योतक है। तथापि विद्वानों में इस महाकाव्य के सङ्घटनात्मक स्वरूप को लेकर प्रचुर मतभेद प्राप्त अनेक समालोंचकों का कथन है कि यह एक समञ्जस तथा समन्वित काव्य की अपेक्षा मनोरम चित्रों की चित्रशाला ही अधिक है। सुप्रसिद्ध विद्वान राइडर (A.W. Rydor) की टिप्पणी है कि 'प्रस्तुत काव्य में एक सूत्र का अभाव है और उसका कथानक रूप विहीन एवं असम्बद्ध है। राइडर का यह भी आरोप है कि दसवें सर्ग से लेकर पन्द्रहवें सर्ग तक की कथा जिसमें राम का

1. प्रसन्नराघव–जयदेव, प्रस्तावना से उद्धृत

2 कालिदास ग्रन्थावली पृ0 11,12 से

आख्यान वर्णित है। एक महाकाव्य के भीतर एक अन्य महाकाव्य के ही समान प्रतीत होती है।'[1] इसमें सन्देह नहीं है कि सामान्य पाठक को कथानक सङ्घटन में विशृङ्खलता दृष्टिगोचार होती है । परन्तु जैसा श्री रामास्वामी शास्त्री का कथन है, ''श्री रामचरित का गुणगान ही कवि का अभीष्ट नहीं है। वह तो स्पष्ट कहता है कि, मैं रघु के वंशधरों का बखान कर रहा हूँ'– **'रघुणामन्वयं वक्ष्ये'**[2]।

महाकवि कालिदास की कविता में तो इतना माधुर्य इतना रस भरा पड़ा है कि किसी रसिक ने जन्म–जन्म के लिए भगवान से माँगी हुई वस्तुओं में सबसे पहले कालिदास की कविता का ही नाम लिया–

''कालिदास्स कविता नवं वयः माहिषं दधि सशर्करं पयः।

एणमांसम बला सुकोमला संभवन्तु मम जन्म जन्मनि।।''

(जन्म–जन्म में मुझे कालिदास की कविता, नई चढ़ती हुयी जवानी, भैंस का सजाव दही चीनी पड़ा हुआ दूध, हरिण का मांस और सुकुमारी नवेली मिलती रहा करें।)[3] बाल्मीकीय रामायण में बाल काण्ड के तीसरे सर्ग के नवें श्लोक तथा युद्ध–काण्ड के प्रथम सर्ग के ग्यारहवें श्लोक में 'रघुवंश' शब्द का प्रयोग हुआ है और यह कालिदास की अनन्य कलात्मक उद्भावना है कि उन्होने अपने काव्य की अप्रतिममालिका में रामचरित को मध्यमणि के रूप नियोजित किया है। श्री स्वामी शास्त्री का यह कथन उल्लेख्य है– 'मैं पुनः कहता हूँ कि यदि होमर ने अपना प्रख्यात महाकाव्य यह निदर्शित करने के लिए लिखा कि क्योंकर नितान्त तुच्छ कारणों से विनाशकारी युद्ध उत्पन्न हो जाते हैं यदि वर्जिल ने रोमन जाति के उद्भव एवं भाग्य–परिणति का व्याख्यान करने के लिए अपने महाकाव्य की रचना की, यदि दाँते ने दण्डलोक एवं स्वर्गलोक के चिरंतन प्रान्तों को पृथ्वी–निवासियों के समक्ष उन्मीलित करने के लिये अपने विराट महाकाव्य (डिवाइन कामेडी) का प्रणयन किया और यदि मिल्टन ने मानव की सृष्टि एवं अधःपतन के विषय में मनुष्यों के निकट ईश्वरीय विधानों का औचित्य प्रतिपन्न करने के लिए अपने प्रसिद्ध काव्य 'पैरेडाइजलास्ट' का निबन्धन किया तो कालिदास का निश्चित उद्देश्य प्रस्तुत रचना में निष्कलुष के जीवन कृत्यों का वर्णन करना था जो निष्कलुष मनुष्य थे जिससे कवि चिरन्तन जातीय आदर्शो का चित्रण

1, 2– कालिदास–मिराशी में उद्धृत 3. कालिदास ग्रन्थावली– भूमिका भाग से उद्धृत

कर सके और हमारे राजाओं तथा प्रजाओं को यह चेतावनी दे सके कि यदि वे उन आधारभूत आदर्शो से स्खलित हुए तो वे महती विपदा के गर्त में पतित हो जायेंगे....। अतएव एक निश्चित उद्देश्य पूर्ण पुरुषत्व के आदर्शों को निदर्शित करना– की साधना को लक्ष्य कर कवि ने 'रघुवंश' का प्रणयन किया है और इस प्रकार यह काव्य पूर्ण अन्वित और सामाञ्जस्य महाकाव्य बन गया है।"[1] श्री शास्त्री ने रघुवंश के प्रथम श्लोक 'वागर्थाविव सम्प्रक्तौ...।" की सराहना में यह सम्मति व्यक्त करते हुए कि कविता निर्दोष वाणी के अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं हैं, प्रस्तुत काव्य के आरम्भ को अत्यन्त समीचीन बताया है और राइडर की इस अध्युक्ति का प्रत्याख्यान किया है। कालिदास ने इस महाकाव्य को शोक पर्यवसायी बनाकर अनुचित किया है। तथापि इस तथ्य का निषेध नहीं किया जा सकता कि 'रघुवंश का वर्ण्य विषय एक नहीं, अनेक हैं और इस कारण इसमें प्रकृति एक सूत्रता का अभाव भासित होता ही है। फिर भी कालिदास की विस्मय जनक कवि प्रतिभा नें वर्ण, विम्ब एवं संगीत को उद्भावित करने वाली अपनी अपूर्व क्षमता से, विषयों की विविधता की एक-मनोवांछित अन्विति में अनुस्यूत कर दिया है। विविध वस्तुएँ दृश्य, चरित्र, भाव, घटनाएँ एवं विचार सभी कविता के शाश्वत परिवेश में उपन्यस्त तथा परिष्कृत बन गये हैं।

रघुवंश में वर्णित राजाओं का आख्यान कालिदास ने अनेक स्रोतों से ग्रहण किया है। प्रारम्भ में ही अपने को मन्दमति किन्तु कवि यशःप्रार्थी.. बताते हुए उन्होने अपने पूर्ववर्ती वाल्मीकि आदि कवियों के प्रति आभार व्यक्त किया है, जिन्होने सूर्यवंश पर मनोरम काव्य रचकर वाणी का द्वार पहले ही खोल दिया है, अब तो उनका कार्य केवल हीरे की कनी से विधे हुए मणि में डोरा पिरोना मात्र रह गया है ।

अथवा 'कृत वाग्द्वारे वंशेऽस्मिन् पूर्व सूरिभिः। मनौ वज्र समुत्कीर्णे सूत्रत्ये वास्ति' में गति इसका उपजीव्य ग्रन्थ– पद्म पुराण एवं रामायण। नवम् सर्ग से पन्दहवें सर्ग तक कालिदास ने वाल्मीकि रामायण का आश्रय लिया है। किन्तु उनके आधार ग्रन्थों का अभी पूरा–पूरा पता नहीं चल पाया है। पुराणों में भी सूर्यवंशी राजाओं की नामावली दी हुई है। लेकिन उस नामावली और रघुवंश की तालिका में प्रचुर अन्तर दृष्टिगोचर होता है। उदाहरणत– दिलीप रघु के बीच वाल्मीकि रामायण में दो, वायु

1. कालिदास–मिराशी पृष्ठ–197–198

पुराण में उन्नीस तथा विष्णु पुराण में अठारह राजाओं के नाम दिये हुए है। भास के प्रतिमाा नाटक में दिलीप से लेकर दशरथ तक का क्रम रघुवंश के क्रम से मिलता है। इससे यह जान पड़ता है कि इन दोनों कवियों ने एक समान ग्रन्थ का उपयोग किया होगा। रघुवंश के अठारहवें सर्ग में 21 राजाओं की केवल नामावली दी हुई है। इससे यह स्पस्ट होता है कि कालीदास के पूर्व ग्रन्थों में इन नरेशों का कुछ विशेष विवरण नही उपलब्ध था। दिलीप, रघु और अज के विषय में भी सामान्यतः यही स्थिति रही होगी। एसी दशा में इतनी अपूर्ण सामाग्री का उपयोग कर कवि ने प्रस्तुत काव्य मे उदात चरित्रों के उतुङ्ग प्रासाद का जो निर्माण किया है, वह उसकी नवनवोन्मेष शालिनी प्रतिभा का परिचायक है। कतिपय विद्वानों का मत है कि 'कुमार संभव' के समान कवि ने 'रघुवंश' को भी अपूर्ण ही छोड़ दिया, क्योंकि अग्नि वर्ण के वृत्तान्त के साथ काव्य अकस्मात् समाप्त हो गया है। जनश्रुति के अनुसार इसमें 25 अथवा 26 सर्ग थे किन्तु अतिरिक्त सर्गो का पता नहीं चल पाया और इस कारण यही मानना तर्क संगत होगा कि उन्नीस सर्गों से आगे कवि ने रचना ही नहीं की। विष्णुपुराण में अग्निवर्ण के पश्चात् आठ अन्य राजाओं का भी वर्णन उबलब्ध होता है। और इसी लिए प्रस्तुत काव्य के अपूर्ण होने की बात कही जाती हैं। लेकिन यह स्मरण रखना वांछनीय है कि कालिदास ने पद्य–बद्ध इतिवृत्त का प्रणयन तो किया नहीं है, जिससे वे सम्पूर्ण शूर्यवंशी नरेशों का व्याख्यान करते। उनके कर्तृत्व की इयत्ता यह है कि उन्होने कुछ प्रभावोत्पादक राजाओं का चयन कर, उनके चरित्रों को इस प्रभावाशाली भंगिमा से सजाया है कि उनके अभीप्सित आदर्शों की व्यंजना भी हो गयी है और उनकी रस लिप्सु काव्य संवित को आत्मतोष भी मिल गया है।

ऐसा अनुमान किया गया है कि कालिदास ने अश्वघोष रचित काव्य 'सौन्दरनन्द' की स्पर्धा में 'रघुवंश' का प्रणयन किया है। अश्वघोष ने अपने महाकाव्य की रचना से निवृति मार्ग का स्तवन किया था, जो कालिदास की दृष्टि में राष्ट्र के लौकिक अभ्युदय के लिये आशिषमूलक आदर्श था। प्रस्तुत काव्य की रचना के पूर्व वे 'कुमारसम्भव' और 'मेघदूत मे शृङ्गार की सम्भोग–माधुरी तथा वियोग–विह्वलता के मर्मस्पर्शी चित्र अंकित कर चुके थे। किन्तु वे अपने युग की संस्कृत में, आ–कंठ एवं आ–प्राण, ओत– प्रोत थे।

रघुवंश मे कवि–मान एक व्यापक आदर्श की प्रतिष्ठा की कामना से अनुप्राणित है। वर्णाश्रम धर्म की कक्षा के भीतर जीवन के पार्थिव सुखों का उपभोग, यही उसका महान् संदेश प्रतीत होता है। इक्ष्वाकुवंशी राम की महीयसी परम्परा के गौरव से वह अभिभूत हैं और उसकी प्रशान्ति का गान करने के संकल्प से उस पर जो गम्भीर उत्तर दायित्व उतर आया है, उसे उसका पूर्ण अनुभव हो रहा है तभी तो उसका निवेदन है –

''क्व सूर्य प्रभवो वंशः क्व चाल्पविषया मतिः।

तितीर्षुदुस्तंर मोहादुडुपेनास्मि सागरम् ।।1/2

मन्दः कवि यशः प्रार्थी गमिष्याम्युपहास्यताम्।

प्रांशु लभ्ये फले लोभदुद्बाहुरिव वामनः ।।1/3

सुतरां प्रस्तुत महाकाव्य में रघुवंशी राजाओं के कृत्यों का बड़े उल्लास एवं सजीवता के साथ वर्णन किया गया है। साथ ही युग की जटिल संस्कृत के शुक्ल एवं कृष्ण दोनों पक्षों का प्रभावशाली दिग्दर्शन भी सम्पन्न हुआ है।

यहाँ स्मरण रखना आवश्यक है कि प्रस्तुत काव्य केवल राम के अलौकिक गौरव मान के लिए सृष्ट नहीं हुआ है। अपितु रामचरित इसका एक खण्ड मात्र है। केवल रामचरित की मंजुल प्रशाश्ति निबद्ध करने से कवि को वह व्यापक चित्रपट नहीं मिलता जो उसको अन्यथा मिल सका है। कालिदास न वाल्मीकि थे न तुलसीदास। जिस समृद्ध एवं जटिल संस्कृति की वे प्रसूति थे, उसे अग्रसर करना ही उनका काव्योद्देश्य था।

प्रथम सर्ग में कवि ने रघवंशियों के गुणगान का जो कारण बताया है उससे उनके राजकीय आदर्श पर यथेष्ठ आलोक पड़ता है– ये राजा जन्म से लेकर अन्त तक शुद्ध रहें, उनका राज्य समुद्र के छोर–छोर तक विस्तृत था, शास्त्रानुसार यज्ञ करते थे, मांगने वालों को मनोवांछित दान देते थे, अपराधियों को अपराधों के अनुरूप दण्ड देते थे, यशकांक्षी थे, सन्तानोत्पादन हेतु ही विवाह करते थे, शैशव में विद्याभ्यास कर यौवन में विषयोपभोग करते, वृद्धावस्था में मुनियों के समान जंगल में रहकर तपस्या करते थे, अन्त में परमात्मा का ध्यान करते हुए शरीर त्याग करते थे। यथा–

'सोऽहमाजन्मशुद्धानामाफलोदयकर्मणाम्।

आ समुद्राक्षितीशानामानाकरथवर्त्मनाम् ।।1/5।।

यथाविधिहुताग्नीनां यथा कामार्चितार्थिनाम् ।

यथाऽपराधदण्डानां यथा काल प्रवोधिनाम् ।।1/6।।

त्यागाय संभृतार्थनां सत्याय मितभाषिणाम् ।

यशसे विजिगीषूणां प्रजायैं गृहमेधिनाम् ।।1/7।।

शैशवेऽभ्यस्त विद्यानां यौवने विषयैषिणाम् ।

वार्धके मुनिवृत्तीनां योगेनान्ते तनुत्यजाम ।।1/8।।

ऐसे शास्त्रानुयायी प्रजावरायण नरपतियों का रूप भी कैसा होना चाहिए, वह दिलीप के स्वस्थ शरीर में देखिए–

''व्यूढोरस्को वृषस्कन्धः शालप्रांशुर्महाभुजः।

आत्मंकर्मक्षमं देहं क्षात्रो धर्म इवाश्रितः।।1 / 13।।

''छाती चौड़ी, सांड़ के समान ऊँचे और भारी कन्धे तथा शाल वृक्ष के समान लम्बी भुजाएँ थीं, और उनका अपार तेज देखकर ऐसा प्रतीत होता था जैसे क्षत्रियों का धर्मातीत शौर्य अपने कर्म सम्पादन के निमित्त उनके शरीर में अवतीर्ण हो गया हो।''

रघु के यौवनागम की अभिनव रूपश्री भी इसी प्रकार की है। जैसे गाय का बछड़ा बड़ा होकर साँड़ हो जाता है तथा हाथी का बच्चा बढ़कर गजराज हो जाता है, वैसे ही शैशव व्यतीत करने के बाद जब रघु ने यौवन में पदार्पण किया तो उनका शरीर और भी अधिक मनोहर बन गया। उनकी भुजाएँ हल के जुएँ के सामान दृढ़ एवं लम्बी हो गयीं, वक्ष कपाट के समान चौड़ा हो गया, कन्धे भारी हो गये। इस प्रकार शरीर के उत्कर्ष से वे अपने पिता से भी ऊचे और हृष्ट–पुष्ट दिखायी पड़ते थे–

''युवा युगव्यायात बाहुरंसलः कपाट वक्षाः परिणद्धकन्धरः।

वकुः प्रकर्षादजयद् गुरुं रघुस्तथाऽपि नीचैर्विनयाददृश्यत।।3.34

(युवावस्था को प्राप्त हुए (यान का अंगभूत दारू विशेष) जुआ की भाँति लम्बी भुजाओं वाले बलवान किवाड़ की तरह चौडी छाती वाले तथा विशाल ग्रीवा वाले रघु ने शरीर की अधिकता से पिता को जीत लिया था, तथाऽपि विनय से छोटे ही दीख पड़ते थे।)

फिर भी इतने नम्र थे कि नीचे दिखाई देते थे, 'तथाऽपि नीचै विनयाददृश्यत।' कालिदास ने दिलीप तथा अज का भव्य चित्र अंकित किया है। वह आदर्श राजतन्त्र का रूप प्रस्तुत करता है। कुशलसारथी के रथ चलाते समय जैसे रथ का पहिया रेखागामनी लीक से इधर–उधर नही हटता, वैसे ही दिलीप के शासन काल मे प्रजा भी मनु द्वारा प्रणीत नियमों से रंचमात्र भी विचलित नही होती थी। पुनः जैसे सूर्य अपनी किरणो से पृथ्वी का जल खीचकर उसका सहसा गुण जलवृष्टि के रूप में लौटा देता है, वैसे ही दिलीप प्रजा से प्राप्त सम्पूर्ण कर को उसी के शिवसाधन मे नियोजन कर देते थे। यथा–

प्रजानामेव भूत्यर्थे स ताभ्यो बलिमग्रहीत ।

सहस्रगुणमुत्स्रष्टुमादत्तेहिरसं रविः।।8।।

अज भी न तो अधिक तीक्ष्ण थे न अत्यन्त मृदुल तथा मध्यम मार्ग का आलम्बन कर राजाओं को सिंहासनच्युत किये बिना ही केवल अधीनता स्वीकार करा लेते थे, जैसे मध्यम गति वाला पवन वृक्षों को केवल झुका देता है उन्मूलित नही करता। अज ने नवप्राप्त पृथ्वी का पालन दयालुता के साथ यह समझकर प्रारम्भ किया था कि अधिक कठोरता के व्यवहार से वह कहीं नवपरिणीता वधू के समान घबड़ा न जाय। यथा–

सदयं बुभुजे महाभुजः सहसोद्वेगमियं ब्रजेदिति।

अचिरोपनता स मेदिनीं नवपाणिगृहणां वधूमिव।।8।

रघु की राज्य प्रभा का जितना तन्मयतापूर्ण चित्रण चतुर्थ सर्ग में किया गया है, उसमें से इस बात में रंचमात्र भी सन्देह का अवकाश नहीं रहता कि कालिदास किस प्रतिभा एवं प्रजा वात्सल्य का शासक चाहते हैं। जिसके सत्तारुढ़ होने पर जल की मिठास न बढ़ जाय फूलों की सुगन्ध गहरी न हो जाय, पञ्चतत्वों के नैसर्गिक गुणों में उपचय न हो जाय– **पञ्चानामपि भूतानामत्कर्ष पुपुषुर्गुणाः।**

नवे तस्मिन्महीपाले सर्वंनवमिवाभवत्।।(4/11)।।

पृथ्वी, जल, तेज वायु और आकाश इन पाँच महाभूतों के भी गुण गन्ध, रस, रूप स्पर्श शब्द अत्यन्त पुष्ट हुए। उस नवीन महाराज रघु के राजा होने पर सभी वस्तुएं नवीन की तरह हो गई।।

राजा रघु की प्रशंसा के गीत कृषक, बालक व बालायें गा रही है :—

''इक्षुच्छायनिषादिन्यस्तस्य गोप्तुर्गुणोदयम्।

आकुमार कथोद्घातं शालिगोप्यो जगुर्यशः।।4.20।।

(ईख की छाया में बैठी हुई साठी आदि धान की रखवाली करने वाली किसानों की स्त्रियों ने रक्षा करने वाले उन रघु महाराज के शूरता, उदारता आदि गुणों से प्रकट हुए बालकों तक से तारीफ किए गये यश का गान किया।) वह भी क्या कोई दिग्विजयी नरेश हो सकता है? और उस दिग्विजय का भी क्या औचित्य है? जिसमे पराजित राजाओं के साथ सम्मान पूर्ण आचरण न किया जाए—

'सत्रान्ते सचिवसखः पुरस्क्रियाभिर्गुर्वीभिः शमितपराजयव्यलीकान्।

काकुत्स्थश्चिरविरहोत्सुकावरोधान् राजन्यान्स्वपुरनिवृत्तयेऽनुमेने।।''

दिग्विजय के आकांक्षी नरेशों के लिए युद्ध कौशल तथा सैन्य संचालन की पटुता आवश्यक है, कालिदास ने युद्ध क्षेत्र का अतीव सजीव एवं सटीक चित्रण किया है। इसका यथातथ्य वर्णन सप्तम सर्ग में उपलब्ध होता है। अज कालिदास के 'प्रणय—प्रतीक' कहे गये हैं। लेकिन उस स्त्रीरत्न की रक्षा के लिए जब अज भागीरथी की प्रचण्ड धारा को रोकने वाले, उत्ताल तरंगों से संयुक्त भयंकर शोणनद की तरह आक्रामकों के संहारार्थ खड़े हो जाते हैं, तब ज्ञात होता है कि अज सामान्य कक्षा के प्रणयी नहीं हैं। गान्धर्व अस्त्र के प्रयोग से जब शत्रु धराशायी हो गये, मरे नहीं। इन्दुमती के चुम्बन का रस लेने वाले, अपने ओठो से शंख फूँकते अज ऐसे प्रतीत हुए मानो निज भुज बल से उत्पन्न किए हुए मूर्ति मान यश को ही पी रहे हों—

''ततः प्रियोपात्तरसेऽधरोष्ठे निवेश्य दध्मौ जलजं कुमारः।

तेन स्वहस्तार्जितमेकवीरःपिबन् यशोमूर्तमिवाबभासे।।7/63,

युद्ध स्थल के चित्रण में तो कवि ने इतना सटीक अंकन किया है कि वीर, भयानक एवं वीभत्सरस पाठक के सम्मुख मानो रूप ग्रहण कर उपस्थित हो गये हों—

'शिलीमुखोत्कृत्तशिरः फलाढ्या च्युतैः शिरस्त्रैश्चषकोत्तरेवै।

रणक्षितिः शोणितमद्यकुल्याररराज मृत्योरिव पानभूमिः।।7/49।।

वाणों से कटे हुए मस्तक रूप फलों से परिपूर्ण, गिरे हुए शिरस्राण अर्थात् टोपरूप प्यालियों वाली तथा रक्त रूपी मघ के प्रवाहों वाली वह युद्ध भूमि

मृत्यु की (मद्य) पान–भूमि के समान शोभित हुई।) श्रीमद्भगवत् गीता में भगवान श्रीकृष्ण नें कहा है–

'यदृच्छा चोपन्नं स्वर्ग द्वार, अपावृत्तं, सुखिनः क्षत्रिय पार्थ लभन्ते युद्धमीदृशम् ।

अर्थात् धर्म युद्ध से मृत्यु को प्राप्त होकर भी क्षत्रिय सुखपूर्वक स्वर्ग को प्राप्त करते हैं। उसी प्रकार कवि अपनी कल्पना चातुर्य से उपमा देते हुए कहता है–

'परस्परेण क्षतयोः प्रहभौरुत्क्रान्तवारवोः समकालमेव।

अमर्त्यभावेऽपि कयोश्चिदासीदेकाप्सरः प्रार्थितयोर्विवादः।।7/53।।

(आपस में (एक दूसरे के प्रहार से) मारे गये एक साथ ही निकली हुई प्राण वायु वाले किसी एक ही अप्सरा को चाहने वाले दो योद्धाओं के देवत्व प्राप्त करने पर भी वाद–विवाद ही बना रहा।) इतने भयंकर संघर्ष में भी युद्ध धर्म का पालन कवि ने दिखाया हैः–

'एक अश्वारोही ने अपने विरोधी अश्वारोही पर प्रहार किया जिससे वह (दूसरा) अपने घोड़े के कंधे पर झुक गया, क्योंकि उसमें इतनी शक्ति भी न रह गई थी कि वह सिर उठा सके। इस पर पहले घुड़सवार ने फिर हाथ नहीं उठाया, बल्कि यह मनाने लगा कि वह जीवित हो उठे–

'पूर्व प्रहर्ता न जघान भूयः प्रति प्रहाराक्षमम्श्वसादीं।

तुरङ्गमस्कन्ध निषण्ण देहं प्रत्याश्वसन्तं रिपुमाचकाङ्क्ष।। 7.47।।

बर्नार्डशा का एक पात्र 'Arms and The man' नामक नाटक में आधुनिक युद्धकला की यों व्याख्या करता है– 'यह कायरों की कला है जिसमें शक्ति रहने पर वह आक्रमण करता है और शक्तिहीन होने पर, क्षति के मार्ग से बचना चाहता है।' हमारा कवि जिस युद्ध में रस लेता है, यह कायरों की कला नहीं है, वह भी एक धर्म–कला है जिसमें अभीष्ट के प्राप्त्यर्थ शस्त्र प्रहार तो किया जाता है, किन्तु दुर्बल शत्रु के शक्ति–संचय की कामना भी की जाती है।

सत्रहवें सर्ग में कुश के पुत्र कुमार अतिथि का कवि में राज्यारोहण चित्रित किया है। अभिषेक का बड़ा सटीक अंकन हुआ है। कुल के वृद्ध पुरुषों ने दूर्वा के अंकुर तथा बड़ की छाल दोने में रखकर अतिथि की आरती उतारी। ब्राह्मणों नें

अथर्ववेद के विजय सूचक मेमों के पाठ से उन्हें नहलाना प्रारम्भ किया, तो ऐसा प्रतीत होता था जैसे शिवजी के सिर पर गंगा की धारा गिरती हो–

''दूर्वायवाङ्कुरप्लक्षत्वगभिन्न पुटोत्तरान्।

ज्ञातिवृद्धैःप्रयुक्तान्समेजेनीराजनाविधीन्।। 17–12,

पुरोहितपुरोगास्तंजिष्णुंजैत्रेरथर्वभिः।

उपचक्रमिरेपूर्वमभिषेक्तुंद्विजातयः।। 17–13,

मंत्रपूत जल से स्नान करने पर अतिथि की प्रभा वैसे ही चमक उठी जैसे वर्षा के जल से विद्युत की चमक बढ़ जाती है।

तस्य सन्मन्त्रपूताभिः स्नानमद्भिः प्रतीच्छतः, ववृधे वैद्युतस्थग्नेर्वृष्ठिसेकादिव द्युतिः।

वस्तुतः भारतीय संस्कृति के गायक कवि की योजना में मुक्ति अविभाज्य है–मनुष्य की मुक्ति के साथ–साथ पशु–पक्षियों की मुक्ति भी आकांक्षित है।

बन्धच्छेदं स बद्धानां वधार्हाणापवध्यताम्।

धुर्याणां च धुरोमोक्षम दोहं चादिशरग्द्गवाम्

क्रीडापतत्त्रिवणोऽप्पस्य पञ्जरस्थाः शुकादयः।

लब्धमोक्षास्तदा देशाद्यथेष्टगतयोऽभवन्।

सिंहासनस्थ अतिथि का राजसी श्रृङ्गार भी दर्शनीय है। फूल और मोतियों की मालाओं से आवृत राजा के सिर पर पद्मरागमणि बाँधी गई। कस्तूरी में बासे गये अंगराग का लेपन कर गोरोचन से उनका मुँह चित्रित किया गया। माला एवं आभूषण पहने हुए हंस चिन्ह, खचित दुकूल ओढ़े हुए वे उस समय ऐसे दिखाई पड़े मानो राज्यलक्ष्मी–रूपी वधू के वे दूल्हे हों–

''आमुक्ताभरणः स्रग्वौ हंसचिह्नदुकूलवान।

आसीदतिशय प्रेक्ष्यः स राज्यश्रीवधूवरः।।

पुनः कवि की निम्नोद्धृत अध्युक्ति से उसके आंकाक्षित राजशील पर भी आलोक पड़ता है –

''वयोरूपविभूतिनामेकैकं मदकारणम्।

तानि तस्मिन् समस्तानि न तस्योत्सिषिचे मनः।। 17:43,

(यौवन, रूप तथा ऐश्वर्य, तीनो में एक भी मनुष्य को मतवाला बना देता है। लेकिन अतिथि के पास ये तीनो वस्तुऐं थी। तो भी उन्हे लेश मात्र भी गर्व नहीं था, सत्ताधारियों के लिए कवि की यही चुनौती है।")

अब तक रघुवंश के एक पक्ष का दिग्दर्शन कराया गया है। इसे लोक—पक्ष कहा जा सकता है। 'रघुवंश का दूसरा पक्ष भी है जिसे 'जिसे 'व्यक्ति—पक्ष' कहना भी असंगत नहीं होगा। इस पक्ष में कवि ने लोक की ओर से राजन्यवर्ग के शील, शौर्य एवं ऐश्वर्य की ओर से जिसका प्रतिफलन जन समुदाय को अधिक आकर्षित या प्रभावित करता है, दृष्टि हटाकर, दो विशिष्ट रघुवंशियों के व्यक्तिगत जीवन के भीतर झाँकने का उपक्रम किया है। ये दोनों है, अज और अग्निवर्ण। जिस प्रकार काव्य में प्रथम पक्ष के चित्रण में कालिदास ने अपने सामाजिक तथा राजनीतिक आदर्शों को पल्लवित किया है, उसी प्रकार द्वितीय पक्ष के उद्घाटन में उन्होंने व्यक्ति के रूप में अपनी रसलिप्सु अर्न्तवृत्तियों के तृप्ति की भी योजना की है। इस प्रकार रघुवंश का यह अपर पक्ष युग की जटिल संस्कृति के शृङ्गार प्रिय पटल का उन्मीलन करता है। जिस प्रकार प्रथम पक्ष उसके पौरुषप्रिय परिपार्श्व की व्यंजना के हेतु नियोजित करता है। जिस आनन्दवादी भावना को कालिदास की सरस्वती की मुख्य प्रेरणा कहा गया है, उसका मनोरम प्रस्फुटन इन्दुमती स्वयंवर के प्रसंग में दृष्टिगोचर होता है। यथा—

तस्मिन् विधानातिशये विधातुः कन्यामये नेत्रशतैकलक्ष्ये।

निपेतुरन्तःकरणैर्नरेन्द्रा देहैःस्थिताः केवलमासनेषु।।61।।

'वह कन्या विधाता की रचना की सर्वोत्कृष्ट कला थी जिसे सैकड़ों नेत्र टकटकी लगाकर निहारने लगे। नरेशों के शरीर ही केवल मंच पर आसीन थे, उनके मन तो उस रूप लक्ष्मी में अटक गये। अब प्रणय की अग्रदूतियों के समान नरेन्द्रों ने जो विविध शृंगार चेष्टायें की उनका चित्रण देख रसमग्न होवें—

कश्चित्कराभ्यामुपगूढनालमालोलपत्राभिहतद्विरेफम्।

रजोभिरन्तः परिवेशबन्धि लीलारविन्दं भ्रमयाञ्चकार।।6.13।।

(कोई राजा दोनों हाँथो से पकड़े गये नालदण्ड वाले, हिलते हुए पत्तों से भ्रमरों को दूर करने वाले और भीतर में परागों के मण्डल बाँधते हुए लीला कमल को घुमा रहा था।

एक दूसरा नरेश पहले से ही सीधे मुकुट को बार–बार सीधा कर रहा था जिससे उसकी करांगुलियों के बीच के रन्ध्र रत्नों की किरण से चमक उठते थे–

कश्चिद्यथाभागमवस्थितेऽपिस्वसन्निवशाद्व्यतिलेङ्घिनीव।

वज्रांशुगर्भाङ्गुलिरन्ध्रमेकं व्यापारयामासकरं किरीटे।। 6.19।

द्वारपालिका 'सुनन्दा शूरसेन देश के राजा 'सुषेण' को दिखाकर इन्दुमती से कहती है–

''यस्यावरोधस्तन चन्दनानां प्रक्षालनाद्वारि विहार काले।

कालिन्द कन्या मथुरां गतापि गाङ्गोर्मि संसक्त जलेव भाति।।6.48।।''

(जिस राजा की जल क्रीड़ा के समय में रानियों के स्तनों के श्वेत चन्दन के धुल जाने से मथुरा में भी यमुना गङ्गा के तरङ्गों से मिली हुई के समान शोभमान होती है।'')

प्रसिद्ध टीकाकार मल्लिनाथ ने इन चेष्टाओं की ध्वनिमूलक रसभिनिवेशी व्याख्या की है। यह कहना कठिन है कि कवि का निगूढ़ अर्थ भी वही था जो इस पंडित जी ने विवृत किया है। ये सभी नैसर्गिक प्रति क्रियायें हैं जो प्रणय पिपासुओं के अन्तर्मन को किसी पतिंबरा के सानिध्य में उद्वेलित कर आत्म प्रकाश करती हैं यह विवशता की स्थित है, जिसमें मनुष्य को पता नहीं चलता कि वह रूपश्री उसके प्रति आचरण क्या करेगी? फलतः उसका हृदय आशा– निराशा की आँख मिचौली की दोलायमान रंगस्थली बन जाता है और वह अपनी भीतरी अनिश्चिति को नाना प्रकार की आङ्गिक चेष्टाओं के द्वारा अभिव्यक्त करता है तथापि, जैसा कालिदास ने कहा है ये चेष्टायें प्रणय की अग्रदूतियाँ ही हैं, क्योंकि इनका अंतिम लक्ष्य प्रेमान्वेषियों के हृदयस्थ अनुराग स्फुरण को व्यंजित करना ही है। कवि ने इन चेष्टाओं का चित्रण कर अपनी रसैषणा को ही उन्मीलित किया है।यथा–

सञ्चारिणी दीपशिखेव रात्रौ यं यं व्यतीयाय पतिंवरा सा।

नरेन्द्रमार्गाट्ट इव प्रपेदे विवर्णभावं स स भूमिपालः।।6.67।।

(पति को स्वयं वरण करने वाली वह इन्दुमती रात्रि में चलती हुई दीपक के लौ के समान जिस–जिस राजा को छोड़कर आगे बढ़ गयी, वह–वह राजा सड़क की अट्टालिका के समान उदासीन भाव (पक्ष में अंधेरा) को प्राप्त किया। अर्थात् इन्दुमती

के छोड़कर आगे बढ़ जाने से वे राजा उदासीन हो गये।।) इसी अद्वितीय उपमा योजना के कारण महाकवि कालिदास की 'दीपशिखा' की उपाधि से सुशोभित किया गया है। "वास्तव में प्रणय–व्यापार तर्काश्रित न होकर रूच्याश्रित होता है। वाह्य प्रेरित न होकर अन्तः प्रेरित होता है।

''नासौ न काम्यो न च वेद सम्यग्द्रष्टुं न सा भिन्न रूचिर्हि लोकः।6.30)

सौन्दर्य वह वस्तु नहीं कि उसकी देर तक आन्वीक्षा एवं परीक्षा की जाय। वह ऐसा गुण है जो दृष्टिगत होते ही सीधे प्रवेश करता है और दृश्य की अन्तरात्मा को सद्यः बन्दी बना लेता है। इन्दुमती संकोच त्याग कर अज पर दृष्टिपात करती है और उसकी दृष्टि मानों वरण की माला बन जाती है। कवि ने इन्दुमती के अनुभाव का इस स्थल पर एक ही चित्र अंकित किया है जो परिचित होते हुए भी उसकी कल्पना के लालित्य के पारस से संयुक्त होकर अभिनव सौन्दर्यस्वर्ण सा मोहक बन गया है। देखिए–

'सा यूनि तस्मिन्नभिलाषबन्धं शशाक शालीनतया न वक्तुम्।

रोमाञ्चलक्ष्येण सगात्रयष्टिं भित्त्वा निराक्रामदरालकेश्याः।। 6.81।

(शालीनता के कारण इन्दुमती, अनुरागविद्ध होने पर भी अपनी प्रेमवृत्तियों का कथन न कर सकी परन्तु उसे रोमांच हो आया तथा घुंघराले केशों वाली उस रूपशालिनी का प्रेम छिपाये न छिप सका, मानो खड़े हुए रोगटों के रूप में वह अनुराग शरीर फोड़कर बाहर निकल आया हो।"

'कवि ने इन्दुमती के आचरण में जिस संकेच शालीनता एवं साहस की व्यंजना की है, वह इस बात का प्रमाण है कि वह अनुराग एवं अवसर दोनों की रक्षा करने में कुशल है। प्रेम सुयोग्य पात्र में कितने शौर्य का उद्रेक करता है इसे हमने शत्रु राजाओं के विरूद्ध अज के पराक्रमशील आचरण में ऊपर देखा है। किन्तु यही प्रेम प्रिय वस्तु के विद्रोह में बज्र को भी पिघला देता है, इसका मर्म द्रावक चित्रण इन्दुमती की आकस्मिक मृत्यु पर महाराज अज के विलाप वर्णन में उपलब्ध होता है। अज नें अपनी मृत पत्नी को अपनी गोद में उठाकर उसी प्रकार रख लिया जैसे तार मिलाने के समय वीणा रख ली जाती है–

प्रतियोजयित व्यवल्लकी समवस्थामथंसत्वंविप्लवात्।

स निवाय नितान्त वत्सलः परिगृह्योचितमङ्कमङ्गनाम् ।।8.41।।

नारद की वीणा के पुष्पमाला के कारण हुई मृत्यु पर अज कहते हैं—

''स्रगियं यदि जीवितापहा हृदयेनिहतां किं न हन्तिमाम्।

विषमप्यमृतं क्वचिद्भवेदमृतं वा विषमीष्वरेच्छया।।रघु 8.46,

'यदि इस माला में प्राणापहरण करने की शक्ति है, तो यह मेरे प्राण क्यों नही लेती? मै भी तो इसे अपने छाती पर रखे हूँ, असली बात तो यह है कि परमात्मा की इच्छा से ही विष अमृत होता है और अमृत विष।'

कुसुमान्यपिगात्र सङ्गमात्प्रभवन्त्यायुर पोहितुं यदि।

नभविष्यति हन्त साधनं किमिवान्यत्प्रहरिष्यतो विधेः।।8.44।।

(यदि फूल भी शरीर पर गिरने से मारने के लिए समर्थ होते हैं तब खेद है कि भविष्य में मारने वाले दैव की दूसरी कौन वस्तु (मारने के लिए) साधन नहीं होगी।'' अज का पत्नी वियोग एक विशेष परिस्थिति में, एक विशेष कारण से, घटित हुआ है। जैसे क्रौंच मिथुन में से एक की मृत्यु हो जाने पर आदिकवि की वाणी से करूणा का स्रोत फूट पड़ा था। उसी प्रकार इन्दुमती के अनाशंकित देहावसान से कालिदास की भारती द्रवित होकर रो रही है। अब अज का शोक विह्वलध्यान पत्नर के शरीर की ओर आकृष्ट हुआ है और एक से एक करूणोद्वेचक विचार उनके हृदय को चीरते चले जा रहे हैं।

कुसुमोत्खचितान्वलीभृतश्चलयन्भृङ्गरूचस्तवालकान्।

करभोरूकरोति मारूतस्त्वदु पावर्तनशङ्कि में मनः।।8:53।।

(हे कर भोरू! फूल गूँथे हुये तथा टेड़े—मेढ़े तुम्हारे बालों को हिलाती हुई वायु मेरे मन में तुम्हारे लौटने (जीने) का संदेह उत्पन्न करती है।)

इदमुच्छ्वसितालकं मुखं तव विश्रान्त कथं दुनोतिमाम्।

निशिसुप्तमिवैक पङ्कजम् विरताभ्यन्तरषट्पदस्वनम।। 8:55।।

हिलते हुये केशों वाला भाषण शून्य (चुप) तुम्हारा मुख, रात्रि में कमलकोश में भ्रमर के गुञ्जार से रहित बन्द हुये कमल के समान मुझे पीडित कर रहा है। वे कहते हैं कि तुम ग्रहणी, मंत्री एकान्त की सखी और मनोहर कलाओं के प्रयोग में प्रिय शिष्या थी

तुमको हरण करते हुये निर्दय मृत्यु ने मेरा क्या नहीं हरण कर लिया! कहो, अर्थात मृत्यु नें मेरा सब कुछ हरण कर लिया।। 8–67।

'गृहिणी सचिवः सखी मिथः प्रिय षिश्या ललिते कलाविधौ

करूण विमुखेन मृत्युयान हरता त्वां वद किं न में हृतम।। 67।।

फरसी और उर्दू के विद्वान बड़े गर्व के साथ कहा करते हैं कि विलाप काव्य या मरसिया कोई लिख सकता है तो हम ही लिख सकते हैं, किन्तु कालिदास तो ऐसे निराले कवि निकले जिन्होने स्त्री के लिये पुरूष का और पुरूष के लिये स्त्री का विलाप दोनों लिख डाले हैं और ये अज–विलाप तथा रति–विलाप दोनों ही अनुपम हैं। अज विलाप करूण विप्रलम्भ का अविस्मरणीय प्रतीक है, इसकी स्पर्धा कुमारसंभव का रति–विलाप ही कर सकता है। एक अर्थ में ये दोनों एक दूसरे के पूरक है।

एक में रमणाधार प्रिय के प्राणान्त पर नारी हृदय के फूटकर निकलने का चित्रण हुआ, तो दूसरे में प्राणवल्लभा प्रिय के आकस्मिक निधन पर पुरुष ह्दय की दारूण वेदना का मर्मद्रावक– उन्मीलन सम्पन्न हुआ है। समस्त साहित्य में ये दोनों विलाप निराले एवं अनुपम हैं। अस्तु चन्द्रबली पाण्डेय की यह टिप्पणी बडी सटीक है– ''प्रेम की साधना में अज किसी से पीछे नहीं परन्तु, जो बात अन्यत्र कही नहीं मिलती, वह है प्रेम पर धर्म और कर्म अंकुश...। प्रेम की भूमि में अज की खेती होती, तो प्रेमी को न तो बावला बनने का काम करना पडता और न पहाड़ खोदने का साहस। सचमुच मर्यादा के भीतर यदि प्रेम का दर्शन और राग का साक्षात्कार करना है, तो निश्चय ही अज का अध्ययन करें और यह सभी प्रकार जान लें कि वास्तव में किसी वियोगी का प्रेमयोग क्या है? जो यह प्रिया की प्रतिकृति और स्वप्न दर्शन से अपने जीवन का निर्वाह करता है और जीवन से मुक्त हो, अन्त में उपवास कर उसी में लीन हो नित्य विहार में मग्न हो जाता है।''[1]

अज जैसे कर्तव्यानुमोदित प्रणय का प्रतीक है वैसे ही अग्नि वर्ण विलास का कवि अग्नि वर्ण की कामुकता का कारण यह बताता हे कि उसे पिता सुदर्शन से भोग के लिये ही राज्य लक्ष्मी मिली थी क्योंकि शत्रुओं का उच्छेद पहले ही हो चुका था। उसकी विलास मग्नता के परिचय के लिये रघुवंश का अन्तिम सर्ग पठनीय हे।

1.– कालिदास–मिराशी, पृ0सं0 162

प्रजाहित निरपेक्षता के सम्बन्ध में कवि का केवल एक ही चित्र पर्याप्त होगा—

''गौरवाद्यदपि जातु मन्त्रिणां दर्शनं प्रकृति कांक्षितं ददौं।

तदगवाक्षविवरावलम्बिना केवलेन चरणेन कल्पितम्।।''19/7,

(वह सदा रनिवास में मग्न रहता) और यदि कभी मन्त्रियों के अनुरोध से प्रजा को दर्शन भी देता तो बस इतना ही कि इन झरोखे से एक पैर नीचे लटका देता।'' इसी तरह अग्निवर्ण की विलास प्रियता की जानकारी के लिये भी एक ही चित्र स्मरणीय हे—

'' तस्य सावरण दृष्ट संक्षयः काम्यवस्तुषु नवेशु संगिनः।

बल्लभाभिरुपसृत्य चक्रिरे सामिभुक्तविषयाः समागमाः।।'' 19/16,

वह सदा नव—नव भोग की सुन्दर वस्तुऐं चाहता था, जिस वस्तु से मन भर जाता, उसे वह छोंड देता था इसलिये सुन्दरियाँ उससे आधी ही रतिकर उठ जाती थीं क्यों कि उन्हें भय बना रहता था कि पूर्ण रूप से तृप्त हो जाने पर वह उन्हें छोंड देगा।

''क्लृप्तपुष्पषयनांल्लतागृहानेत्य दूति कृत मार्ग दर्शनः।

अन्वभूतपरिजनाङ्गनास्तं सोऽवरोधभयवेपथूत्तरम्।।''19/23,

रामचरित का व्याख्यात रघुवंश का एक महत्वपूर्ण खण्ड है। कालिदास ने राम को विष्णु का अवतार माना है तथा राक्षसों के विनाश को रामजन्म का प्रयोजन। यों तो पांच—छः सर्गों में राम कथा का निबन्ध हुआ है तथापि ऐसा लगता है कि इसके अनेक प्रसंगों में कवि का मन रमा नहीं है। ऐसा हम इसलिये कहते हैं कि हमें तुलसीदास द्वारा चित्रित मार्मिक प्रकरणों की याद बिल्कुल हरी है। कालिदास मानों रामचरित की घटनाओं को एक ही सांस में त्वरा पूर्वक उल्लिखित कर देना चाहते हैं।

मेरी समझ से समग्र राम कथा में दो ही प्रसंग ऐसे आए हैं जिनमें कवि की सहृदयता के दर्शन होते हैं और संबद्ध श्लोकों की संख्या केवल 9 है। मेरा अभिप्राय है लक्ष्मण को दिये गये राम के लिए सीता के संदेश तथा लक्ष्मण के प्रस्थान पर सीता के क्रन्दन से सीता के संदेश में यथेष्ट उष्णता वर्तमान है जो हमारे मर्म को स्पर्श कर पिघला सकती है । अन्तिम उक्ति में कितनी कारूणकिता भरी है—

''नृपस्य वर्णाश्रम पालनं यत्स एवं धर्मों मनुना प्रणीतः ।

निर्वासिताऽप्येवमतस्त्वयाऽहं तपस्विसामान्यमवेक्षणीया ।।14/67,

मनु ने वर्णाश्रम की रक्षा करना राजा का धर्म कहा है। इस कारण बाहर निकाली हुई भी मुझको तुम सामान्य तपस्विनी के समान देखना (मुझको पत्नी समझते हुए एक तपस्विनी समझकर वर्णाश्रम पालन के नाते मेरी भी अन्य तपस्विनी के समान रक्षा करना) लक्ष्मण से माता जानकी श्री राम के लिये संदेष्श देती हुई पुनः कहती है– मै सन्तान के बाद सूर्य की ओर देखती हुई वैसा तप करने के लिये प्रयत्न करूँगी जिससे जन्मान्तर मे भी मेरे पति तुम्ही हो और (मेरा तुमसे) वियोग न हो।

''सोऽहं तपः सूर्यनिविष्टदृष्टि रूर्ध्वं प्रसूतेष्चरितुं यतिष्ये।

भूयोयथा में जननान्तरेऽपि त्वमेव भर्ता न च विप्रयोगः।।

रामचरित का पूरा प्रकरण 'रघुवंश' के लोकपक्ष अन्तर्गत समझना चाहिए। व्यक्ति पक्ष के लिये कवि ने उपर्युक्त चित्रों के अतिरिक्त कोई भी योजना नही की है। वर्णाश्रम धर्म मर्यादा का पालन ही राम कथा वर्णन का प्रधांन उदे्श्य हैं।

वीर्यशुक्ल राम तथा 'अयोनिजा' सीता के दाम्पत्य जीवन में प्रेम के ललित रूप का प्रकाश नहीं हो सका हैं लेकिन वहीं राम सीता का संदेश सुनकर कितने द्रवित हो जाते है इसका एक ही चित्र अंकित हुआ है जो नितान्त संकेत पूर्ण हैः–

''बभूव रामः सहसा सवाष्पस्तुषारवर्षीव सहस्यचन्द्रः।

कौलीनभीतेन गृहान्निरस्ता न तेन वैदेह सुता मनस्तः। ''14–84

लक्ष्मण द्वारा सीता का संदेश सुनकर तुषार बरसाने वाले पौषमास के चन्द्रमा के समान राम आसूं गिराने लगे क्योंकि लोक निन्दा से डरे हुए राम ने सीता को घर से निकाला था, मन से नहीं निकाला था (कारण की सीता की विशुद्धता के विषय में राम को पूर्णतया विश्वास था।) अयोध्या की नगर देवी के अनुरोध पर कुश, कुशावती छोड़कर अयोध्या लौट आए थे उसकी विगत वैभव श्री पुनः उज्जीवित हो गई थी।

रघुवंश मे रस व्यंजना का जो समृद्ध स्वरूप परिलक्षित होता है उसको देखते हुए ये पदवी सर्वथा उचित एवं न्याय्य प्रतीत होती है। इस काव्य मे प्रायः सभी मुख्य रसों का परिपोष सम्पन्न हुआ है क्योंकि इसमे चित्रित घटनावली का फलक अत्यन्त व्यापक रहा है।

" पवित्र जीवन आदर्शो का दृढता पूर्वक अनुपालन गति की उन्मुक्त स्वाधीनता दान देने के लिये सम्पत्ति संचय शिष्टता शौर्य एवं आतिथ्य परिशुद्धि के हेतु दण्ड की व्यवस्था विचार कथन एवं कार्य मे पूर्ण साम्य जन्म से मृत्यु पर्यन्त अनुशासित जीवनचर्या यौवन मे लौकिक एवं पारलौकिक ज्ञान का अर्जन वैवाहिक जीवन के आनन्दो का उपयोग ही नही प्रत्युत वंशावली गौरव के हेतु तथा देश भ्रमण एवं भगवान की सेवा के लिये निमित्त उसके पालन कर्तव्यो एवं कोमल सुषमाओ का अनुसंधान वार्धक्य मे कठोर संयम का पालन एवं लोक सेवा अथ च सबसे बढकर रोग एवं व्याधि से नही अपितु के समाश्रयण से जीवन की भौतिक धारा से मुक्ति का प्रयास—ये संपूर्ण आदर्श रघुवंश के पृष्ठ मे स्पन्दनवान हो रहे है"।[1]
अतः कहना पड़ेगा—

"क इह रघुकारे न रमते "।—सुभाषित

(रघुवंशकार कालिदास में किसका मन न रमेगा?)

कुमारसम्भवम्

अब तक प्राप्त हुई कुमार सम्भव की प्रतियों में सत्रह सर्ग है कुछ लोगो का कहना है कि इसमें पहले 22 सर्ग थे। इसके विषय मे कुछ लोगो का यह भी कहना है कि कालिदास इस काव्य को पूर्ण नही कर सके तथा आरम्भ के 8 सर्ग ही वास्तव मे कवि के रचे हुए है। साथ ही सुप्रसिद्ध टीकाकार मल्लिनाथ कृत संजीवनी टीका भी प्रथम 8 सर्गो पर ही मिलती है आगे नही।

एक बार ब्रह्मा के वरदान से उन्मत्त होकर तारकासुर ने देवताओ को बहुत सताया देवताओ ने ब्रह्माजी के आदेशानुसार शिव और पार्वती का विवाह करा दिया । फलतः दोनो के संयोग से कार्तिकेय की उत्पत्ति हुई। तारकासुर के वध के लिये उनको सेनापति बनाया गया और उनके हाथों उस उग्र असुर का संहार हुआ। यह कथा इस काव्य मे वर्णित है। सर्गानुसार इसकी संक्षिप्त कथा इस प्रकार है।

1.शास्त्री पृ0 198 "कालिदास"

प्रथम सर्ग मे कवि ने हिमालय का बहुत ही मनोरम वर्णन किया हैं। आगे पार्वती के जन्म और उसके शैशव और यौवन का मनोहर वर्णन है। एक बार पार्वती को उसके पिता के निकट बैठी देख महर्षि नारद ने भविष्यवाणी की कि यह कन्या शिव की अर्द्धांगिनी होगी। उनकी इस बात पर विश्वास कर हिमालय ने उसके यौवन मे पदार्पण करने पर भी विवाह की जरा भी चिन्ता नही की। उस समय भगवान शंकर हिमालय पर ही तप कर रहे थे। उनकी सेवा करने की आशा पर्वतराज ने अपनी पुत्री को दे दी। **(सर्ग–1)** इसी प्रकार तारकासुर के त्रास से डर कर देवता लोग ब्रह्मा जी की शरण में गये। उनकी स्तुति से प्रसन्न होकर उन्होने देवताओ से कहा कि मैं स्वयं उसे वर दे चुका हूँ। इसलिये उसका नाश करना मेरे लिय असम्भव है, आप लोग यत्न कर पार्वती–परमेश्वर का परिणय कराइये। उनसे उत्पन्न पुत्र तारकासुर को मार कर तुम्हे निर्भय करेगा। **(सर्ग–2)** इन्द्र ने अपनी सभा में कामदेव को बुलाया और समाधिस्थ शंकर के ह्रदय में पार्वती के प्रति आकर्षण पैदा करने का भार उसे सौंपा। मदन अपनी पत्नी रति तथा बसंत को लेकर हिमालय पर गया। जहाँ शिव जी के ह्रदय में काम–वासना का बीज बोने के लिए बसन्त ने सर्वप्रथम अपना साम्राज्य स्थापित किया। शिवजी जिस जगह ध्यानस्थ बैठे थे उस लता ग्रह के द्वार पर नन्दी पहरा दे रहा था। उसकी नजर बचाकर मदन अन्दर चला गया। योगस्थ शिव उस समय परमात्म दर्शन में लीन थे। कुछ काल के अनन्तर समाधि टूटने पर उनकी अनुमति से नन्दी ने पार्वती को भीतर आने दिया पार्वती ने उनके चरणों में पुष्पान्जलि अर्पण कर गंगा नदी में उत्पन्न हुए कमलों के शुष्क बीजों की माला शिवजी को भेंट करने हेतु आगे बढ़ाई। माला स्वीकार करते समय बहुत अच्छा मौका पाकर मदन ने अपने धनुष में सम्मोहन नामक बाण चढ़ाया, परिणाम यह हुआ कि शिवजी की चित्तवृति क्षण भर के लिए चंचल हो गयी किन्तु उन्होंने तुरन्त उस वृति का दमन कर चित्त को अपने वश में किया और उस कारण को ढूढ़ने लगे जिससे उनके मन में विक्षोभ हुआ था सामने निगाह डाली तो मदन को धनुष पर बाण चढ़ाये आगे खड़ा देखा बस फिर क्या था मारे क्रोध के उन्होंने अपना तीसरा नेत्र खोल दिया और जो उससे भयंकर अग्नि निकली उसमें मदन जलकर भस्म हो गया। **(सर्ग–3)** अपने पति की यह दुर्दशा देखकर रति एकदम मूर्छित हो गई जब उसे कुछ होश आया तो वह

विलाप करने लगी। उसे सान्त्वना देने के लिये उसके प्रियतम का सखा बसन्त वहाँ आया उसे देख रति का दुख दुगना हो उठा। वह पिछली बातें याद कर फूट–फूट कर रोने लगी। अत्यन्त दुख के साथ वह देहत्याग करना ही चाहती थी कि उतने में आकाशवाणी हुई कि शिवजी जिस समय पार्वती का पाणिग्रहण करेंगे उस समय वो मदन को अवश्य प्राण दान देंगे। तब तक तू अपनी देह रक्षा कर। **(सर्ग–4)** अपनी नजर के आगे मदन का दहन देख पार्वती को अत्यन्त निराशा हुई और वे शिव की प्राप्ति के लिए कठोर तपश्चर्या करने लगी। उनकी तपस्या से प्रसन्न होकर शिव ब्रह्मचारी का वेष धारण कर तप से कृश शरीर पार्वती के पास आये उन्होंने ब्रह्मचारी की पूजा की ब्रह्मचारी ने उनसे यह प्रश्न किया कि सब प्रकार से अनुकूल सुख साधनो के होने पर भी इस यौवन काल में कठोर तपस्या करने का कारण क्या है? परन्तु पार्वती की सखी के द्वारा ब्रह्मचारी को ज्ञात हुआ कि ये शिवजी पर मोहित हो चुकीं हैं और उनको पाने हेतु ही अपने सुकुमार शरीर को कष्ट दे रही हैं। इतना हाल मालूम होने पर ब्रह्मचारी ने शिव की खूब निंदा की। उनके सर्प आभूषण का, रक्त बिन्दु टपकने वाले गजचर्म के दुपट्टे का, श्मशान वास का, दरिद्रता का, तथा तीसरे नेत्र के होने से उत्पन्न हुई कुरूपता का खूब निन्दात्मक वर्णन किया और ऐसे कुरूप वर को पाने के लिए कड़ी साधना करने का प्रत्याख्यान किया। ब्रह्मचारी के भाषण को सुनते ही पार्वती का क्रोध भड़क उठा और उन्होंने उनकी बातों का खण्डन कर अपना शिवमोह करने का अटल निश्चिय सूचित किया। ब्रह्मचारी कुछ कहने को ही थे कि पार्वती उठकर जाने लगी तब शिवशंकर ने प्रकट होकर उन्हें दर्शन दिया और जाने से रोककर कहा कि मै तुम्हारी कठिन तपश्चर्या से प्रसन्न होकर आज से तुम्हारा दास हो गया हूँ **(सर्ग 5)**।

इसके बाद शिवजी ने अरून्धती सहित सप्तर्षियों को भेजकर पार्वती का हाँथ मांगा। हिमालय ने पत्नी से सलाह कर शंकर का यह प्रस्ताव सहर्ष स्वीकार किया । **(सर्ग 6)** शुभ मुहूर्त में पार्वती के साथ शिवजी का परिणय हुआ। इस मांगलिक अवसर पर पार्वती की वेष–भूषा का, उनकी सखियों द्वारा किये हुए परिहास का, विवाह के लिए प्रस्थान करते हुए शिवजी के परिवार का, उनके पुर प्रवेश के समय नगर स्त्रियों

की जल्दबाजी का तथा विवाहोत्सव का विस्तृत और अत्यन्त रमणीय वर्णन कवि ने किया है । **(सर्ग7)**

विवाह होने के बाद शिव के पार्वती के साथ विविध भोग विलास में सैकड़ों वर्ष बिता दिये। **(सर्ग–8)**

तब इन्द्रादि देवताओं ने अग्नि को कबूतर बनाकर शिव पार्वती के विलास–स्थल पर भेजा। पहले तो शिवजी को बड़ा क्रोध आया किन्तु अग्नि नें उन्हें वस्तुस्थिति का पूरा ज्ञान कराया तब वे प्रसन्न हुए और उन्होंने अपना वीर्य उसमें स्थापित किया। अग्नि को यह सहन न हुआ तो उसने इन्द्र के कहने से स्वर्ग की गंगा में उस वीर्य को डाल दिया।**(सर्ग 9)**

गंगा भी उसे धारण न कर सकी तो उसने वहाँ स्नान करने आई हुई छः कृत्तिकाओं के शरीर में डाल दिया। इससे उनको गर्भ रह गया। उस गर्भ का भार छः–कृत्तिकायें सह न सकी इसलिए उन्होंने वन में छोड़ दिया और आप चली गयीं। **(सर्ग 10)**

उसी समय शिव और पार्वती विमान में बैठे हुए उस मार्ग से जा रहे थे, उनकी दृष्टि उस बालक पर पड़ी। वे उसे अपने वीर्य से उत्पन्न समझ कर उपने घर उठा लाए। वह केवल छः दिन की अवधि में सकल शस्त्रों एवं शास्त्रों में पारंगत हो गया। इस प्रकार कुमार की उत्पत्ति इुई। **(सर्ग11)** आगे इन्द्रादि देवताओं की प्रार्थना करने पर शिवजी ने उसे देव सेना का सेनापतित्व देकर स्वर्ग भेज दिया **(सर्ग 12)**। सेनानी स्कन्ध को आगे कर देवताओं ने तारकासुर पर चढ़ाई कर दी। **(सर्ग 13)**उसने भी लड़ाई की तैयारी की और बुरे शकुन होने पर भी कुमार के साथ युद्ध किया। बड़ा लोमहर्षक युद्ध हुआ और अंततः कुमार के वाण सें तारकासुर मारा गया। स्वर्ग से देवों ने कुमार पर पुष्प वृष्टि की। अब इन्द्र निश्चिन्त हो गया। **(सर्ग 14–17)**।

विशेषतायें:– इस काव्य में महादेव, पार्वती और मदन इनकी ही विविध चेष्टाओं के वर्णन मे कवि ने सारी प्रतिभा दिखाई है। महर्षि अरविन्द के शब्दों में, ''प्राक्तन संस्कृत साहित्य में 'कुमार–सम्भव' का वही महनीय स्थान है जो आँग्ल साहित्य में मिल्टन के 'पैराडाइज लास्ट' का। यह महाकाव्य की पद्धति की अपने युग की सर्वश्रेष्ठ रचना है। इस महान् काव्य का केन्द्रीय वक्तव्य है शिव और पार्वती का

विवाह, जा, अपने मूल भाव में, पुरुष तथा प्रकृति के मंगल मिलन का प्रतीक है। इस कहानी में आत्मा के द्वारा परमेश्वर की खोज एवं प्राप्ति का प्रतीकत्व भी अभिप्रेत है, और पार्वती के शिवोपलब्धि के अनुष्ठानों में यह भाव एक प्रकार से ओत–प्रोत है।''[1]

प्रारंभ में हमने युग की जिस मनोवृत्ति का उल्लेख किया है उसको ध्यान रखते हुए अरविन्द की यह टिप्पणी संगत प्रतीत होती है क्योंकि 'कुमारसंभव' में दैविक और लौकिक स्वर्ग और मर्त्य, त्याग और भोग, तप एवं विलास का अपूर्व सामञ्जस्य सम्पन्न हुआ है।

'कुमारसंभव' में चित्रित शिव–पार्वती का प्रणय, श्रमण–परम्परा के ऊपर प्रतिष्ठित उपभोगवाद की विजय है। ईसा के तीन सहस्र वर्ष पूर्व के चिन्हों में संन्यासियों और देवालयों में नर्तकियों को सम्भोग मुद्रा में चित्रित किया गया है क्योंकि उस युग के शैव धर्म के प्रारम्भिक स्वरूप में, इस धर्म के दो परस्पर विरोधी तत्वों योगी और भोगिनी के लक्षण दृष्टिगोचर होने लग गए थे। वैदिक जातियों के प्राचीनतम साक्ष्य ऋग्वेद (1/179) में एक ऐसी कविता आई है जिसमें लोपा मुद्रा अपने पति अगस्त्य से शिकायत करती है कि मै तुम्हारी गत एक वर्ष की विरक्ति से थकित हो गई हूँ। तब अगस्त्य बड़ी प्रसन्नंता से अनुमति प्रदान करते हैं कि वह अपनी चेष्टाओं एवं क्रियाओ से उन्हें आकृष्ट करें।[2]

पहले आठ सर्गों के सभी वर्णन कवि ने बड़ी ही कुशलता से किये हैं। फिर भी आरंभ में हिमालय का वर्णन, व तीसरे सर्ग में आकस्मिक बसन्त ऋतु के आगमन से वनश्री का वर्णन, चौथे सर्ग में रति विलाप, पंचक सर्ग में बटुवेषधारी शिव तथा तपस्विनी पार्वती का संवाद ये विषय बहुत ही उत्कृष्ट प्रसादपूर्ण शैली में अंकित किये गये हैं। इस काव्य में श्रंगार के संभोग और विप्रलम्ब इन दानों भेदों की तथा करूण रस की प्रधानता है। विस्तार भय से इस काव्य में वर्णित सभी उत्कृष्ट वर्णन यहाँ नही दिये जा सकते। हिमालय वर्णन का दृश्य दृष्टव्य हैः–

''अनन्तरत्नप्रभवस्य यस्य हिमं न सौभाग्य विलोपि जातम्।

एको हि दोषो गुण सन्निपाते निमज्जतीन्दोः किरणेष्विवाङ्कः।।1.3।।

1. महाकवि कालिदास–डॉ0 रमाशंकर में उद्धृत पृ0–70
2. वैदिक सा0 का इतिहास–डॉ0 कर्णसिंह

अनगिनत रत्न उत्पन्न करने वाले इस हिमालय की शोभा हिम के कारण कुछ कम नहीं हुई क्योंकि जहाँ बहुत से गुण हों वहाँ यदि एक–आध अवगुण आ भी जाय तो उसका वैसे ही पता नहीं पड़ता जैसे चन्द्रमा की किरणों में उसका कलङ्क छिप जाता है।" हिमालय की गुफाओं का स्वाभाविक वर्णन तथा सूक्तिपरक वाक्य वर्णित है–

''दिवाकराद्रक्षति यो गुहासु लीनं दिवाभीतमिवान्धकारम्।

क्षुद्रेऽपि नूनं शरणं प्रपन्ने ममत्व मुच्चैः शिरसां सतीव।।1/12।।

हिमालय की लम्बी गुफाओं में दिन में भी अँधेरा छाया रहता है मानो अँधेरा भी दिन से डरने वाले उल्लू के समान इसकी गहरी गुफाओं में दिन में जा छिपता है और हिमालय भी उसे अपनी गोद में शरण दे देता है क्योंकि जो महान् होते हैं वह अपनी शरण में आए हुए नीच लोगों से भी वैसा ही अपनापन बनाए रहते है जैसा सज्जनों के साथ।

इन्द्र -को आगे करके देवताओं द्वारा ब्रह्म की की गई स्तुति में सांख्य न्याय आदि दर्शनों का व्यापक प्रभाव है–

'आत्मानमात्मनावेत्सि सृजस्यात्मानमात्मना।

आत्मना कृतिना च त्वमात्मन्येव प्रलीयसे ।। 2/10।।

आप अपने में ही अपने को जानते हैं और अपने आप अपने को उत्पन्न करते है। और जब अपना काम पूरा कर चुकते हैं तब अपने को अपने में ही लीन कर लेते हैं। कामदेव इन्द्र से अपने प्रताप का वर्णन करते हुए कहता है–

'आप की कृपा हो तो मै केवल बसन्त को ही अपने साथ लेकर अपने फूल के बाणों से ही पिनाक धारण करने वाले स्वयं महादेव जी तक के छक्के छुड़ा दूँ, फिर और दूसरे धनुर्धारियों की तो गिनती ही क्या।

तब प्रसादात्कुसुमायुधोऽपि सहायमेकं मधुमेव लब्ध्वा।

कुंर्या हरस्यापि पिनाकपाणे धैर्यच्युतिं के मम धन्विनोऽन्ये।।8/10।।

चौथा सर्ग सबसे महत्वपूर्ण है इसमे कवि ने रति के विलाप को जो वर्णन किया है वह अद्वितीय हैं। स्वयं अपनी आँखों के आगे पति को भस्म हुआ देख रति को पहले मूर्च्छा आती है। कुछ देर पीछे होश आने पर वह जमीन पर पड़ी हुई

विलाप करती है। उसकी केशावली विखर् गई है और उसका विलाप सुनकर सारा वन रो उठता है :—

''हृदये वसतीति मत्प्रियं यदवोचस्तदवैमि कैतवम्।

उपचार पदं न चेरिदं त्वमनङ्ग कथमक्षता रतिः।।4/6।।

तुम तो कहा करते थे कि तू मेरे हृदय में सदा रहती है परन्तु अब मुझे मालूम हुआ कि ये सब बनावटी बातें थी। यह केवल मुझे खुश करने के लिए ही कहते थे। नहीं तो तुम्हारे नष्ट हो जाने पर मै कैसे अक्षत बनी रहती?''

''विधिना कृतमर्द्ध वैशसं ननु मां कामवधे विमुञ्चता।

अनपायिनि संश्रय द्रुमे गजभग्ने पतनाय वल्लरी ।।4–3।।

बसन्त! क्या तुम समझते हो कि ब्रह्मा ने मुझे जीता छोड़कर मेरे आधे अङ्ग कामदेव का बध करके केवल आधा ही बध किया है? नहीं! उसने तो मुझे भी मार डाला है, क्योंकि तुम्ही बताओ कि भला हाथी की टक्कर से वृक्ष के टूट जाने पर उसके सहारे चढ़ी हुई लता क्या कभी बची रह पांती है? पंचम सर्ग में ब्रह्मचारी का छलपूर्ण भाषण और उस पर पार्वती का दिया हुआ मुँहतोड़ उत्तर भी बेजोड़ है। शंकर के अकिञ्चनत्व और उनके श्मशान निवास आदि के दोष जिस समय ब्रह्मचारी ने पार्वती को सुनाये उस समय पार्वती ने निम्नलिखित उत्तर दिया—

अकिञ्चनः सन् प्रभवः स सम्पदां त्रिलोकनाथः पित् सद्म गोचरः।

स भीम रूपः शिव इत्युदीर्यते न सन्ति याथार्थ्यविदः पिनाकिनः।। 5/77,

स्वयं धनहीन होकर भी वे दूसरों को सम्पदा देते हैं, श्मशान में रहकर भी तीनों लोकों के स्वामी हैं भयंकर रूप होने पर भी लोग उन्हें शिव (कल्याणकारी) कहते हैं। सच बात तो यह है कि उनके संबंध में, सच्च ज्ञान किसी को नहीं हैं। भगवान शंकर की जात—पाँत और जन्म किसी को मालूम नहीं हैं? ब्रह्मचारी के इस आक्षेप का उत्तर पार्वती ने इस प्रकार दिया—

'विवक्षता दोषमपिच्युतात्मना त्वमैकमीशं प्रति साधु भाषितम्।

यमामनन्त्यात्मभुवाऽपि कारणंकथं स लक्ष्यप्रभवोंभविष्यति।। 5/81।।

निर्दोष शंकर में तू जो दोष ही दोष दिखाने की चेष्टा कर रहा है सो इस अनधिकार चेष्टा में भी तेरे मुख से एक बात तो सच निकल ही गई है। तूने जो यह

कह दिया कि शिव के जन्म का कोई ठिकाना नहीं, सो बहुत ठीक है। ब्रह्मा तक की उत्पत्ति जिनसे हुई है, उन अनादि शिव के जन्म का पता किसी को कैसे लग सकता है? आत्मानुभूति के सार–सर्वस्व भरी हुई अर्थान्तरन्यास की उक्तियाँ, कालिदास की असाधारण विश्वव्यापिनी प्रतिभा को प्रदर्शित करती है–

'एकोहि दोषो गुण सन्निपाते निमज्जतीन्दो किरणेष्वङ्कः।। 1/3,।।

जहां सैकड़ों हैं वहाँ एक जरा से दोष के कारण किसी के महत्व में कमी नहीं आ सकती। 'कालिदास मानव सौन्दर्य के अनूठे चित्रकार है। अपनी मँगनी के प्रस्ताव को सुनने वाली पार्वती की स्थिति निम्नवत् है–

''एवंवादिनिदेवर्षौपार्श्वेपितुरधोमुखी। लीलाकमलपत्राणिगणयामासपार्वती।। (6/84)

देवर्षि लोग जिस समय यह कह रहे थे उस समय पार्वती अपने पिता के पास नीचा मुह किए खिलौने के कमल के पत्ते बैठी गिन रही थी।

तपोलीना पार्वती पर गिरी हुई वर्षा की प्रथम जल बिन्दु उसकी नाभि तक जिस प्रकार पहुँचती है, उसे देखिए–

''स्थिताः क्षणंपक्ष्मसु ताड़िताधराः पयोधरोत्सेधविशीर्ण चूर्णिताः।

वलीषु तस्याःस्खलिताः प्रपेदिरे चिरेण नाभिं प्रथमोदविन्दवः।।5/24।।

यह पद्य निर्माता की बहुदर्शिता का प्रधान साक्षी है। इसमें योगशास्त्र नें जो समाधि मे नासाऽग्रदृष्टि, मुख का खुला न रहना, मेरुदण्ड को उन्नत रखना, निश्चल रहना उपदिष्ट किया है इनमें से प्रथम वर्णन में दृष्टि बिन्दुओं की पलकों पर स्थिति द्वारा पलकों का अर्धोन्मीलन ध्वनित किया, इससे उनमें निविडता ध्वनित हुई जिससे सामुद्रिकोक्त सुलक्षण व्यक्त हुआ अर्धोन्मीलन से नासिकाऽग्रदर्शन भी लब्ध हो गया, क्षण्शब्द से पलकों मे मसृणता सूचित हुई तांड़ित पद से अधर में कोमलता झलकी अधर से च्युत बिन्दुओं के कुचों पर ही गिरने से मुख संवृति तथा बिखर जाने के द्वारा उनकी कठिनता व्यञ्जित् हुई, साथ ही त्रिकोन्नाति भी ध्वनित हुई। वहाँ से गिरकर त्रिवली से फिसलने द्वारा उनकी चिकनाई स्पष्टता, सुलक्षणता भी प्रत्यायित हुई वहाँ से हटे बिन्दुओं के नाभि में प्राप्ति वर्णन से उसकी गम्भीरता रूप सच्चिह्न की अभिव्यक्ति हुई है। इस भांति सलक्ष्यक्रम स्वतः संभवी पदगत वस्तु ध्वनियों से भगवती का अलौकिक सौन्दर्य वस्तु ध्वनित उपसकृत हुआ जो सबका अङ्गी है। पार्वती की

चकित मुद्रा की जो मूर्ति अंकित की है वह उसकी मार्मिक सूझ, गहरे अनुभव तथा संवेदनशील कल्पना पर मनोरम आलोक डालता है–

''तं वीक्ष्य वेपथुमती सरसांग यष्टि –

निक्षेपणाय पदमुद्धृतमुद्वहन्ती ।

मार्गाचलव्यतिकराकुलितेवसिन्धुः

शैलाधिराजतनया न ययौ न तस्थौ।''5/85।

अचानक शंकर जी को देखकर पार्वती के शरीर मे कपकपी छूट गई, वे पसीने से तर हो गई आगे चलने को उठाए अपने पैर को जहाँ का जहाँ रोक लिया । जैसे प्रवाह पथ मे पहाड़ आ जाने से नदी न आगे बढ़ पाती है और न पीछे हट पाती है, उसी प्रकार न आगे बढ़ पाई और न खड़ी ही रह सकीं।'' अभीष्ट वस्तु की आकस्मिक उपलब्धि से पार्वती की मनोभूमि मे उत्पन्न सकपकाहट का भाव यहाँ अत्यन्त ढंग से चित्रित हुआ है।[1] कुमारसंभव के प्रथम आठ सर्गों पर ही अरुण गिरिनाथ तथा मल्लिनाथ जैसे टीकाकारों की टीकाएं उपलब्ध है। परवर्ती सर्गों के पद्यों का उल्लेख संस्कृत के आचार्यों ने अपने ग्रन्थों में नहीं किया है। शैली शिल्प की दृष्टि से भी ये सर्ग प्रथम आठ सर्गों की तुलना मे हीन एवं नीरस प्रतीत होते हैं। उपमा अर्थान्तरन्यास इत्यादि जैसे अलंकारों का जो सुण्ठु प्रयोग रघुवंश इत्यादि अन्य ग्रन्थों मे उपलब्ध हें वह इन सर्गों में दृष्टि गोचर नहीं होता। कई स्थानों में यति–भंग कई अशुद्ध प्रयोग, सद्यः या अलम् जैसे असमर्थ प्रयोग सु च अथवा हि के समान पादपूरक अव्ययों का प्रचुर प्रयोग तथा एक ही पद का बार बार प्रयोग इन सर्गों को प्रथम आठ सर्गों से भिन्न कोई का सिद्ध करते हैं। इन सभी प्रमाणो से कीथ इत्यादि विद्वानों ने प्रतिपादित किया है कि कुमारसंभवम् के इन सर्गों मे कालिदास की स्वाभाविक समर्थ सरस्वती की छवियों के दर्शन नहीं होते और किसी उत्साही व्यक्ति की रचना है जिसने इनको जोड़कर कुमार संभव नाम की सार्थकता सिद्ध की है।''[2]

कुमार संभव और रघुवंश दोनो महाकाव्य है दोनो कालिदास की काव्य सरस्वती विख्यात विभूतियों से विभूषित हैं। रघुवंशम् महाकवि कालिदास का महत्तम एवं अन्तिम महाकाव्य के रूप में जाना जाता है। पाश्चात्य विद्वान कीथ ने उसे उनकी

1. महाकविकालिदास –डॉ रमाशंकर तिवारी, पृ0 –102.103 2. महाकविकालिदास– डॉ रमाशंकर, पृ0–106

प्रौढ प्रतिभा का प्रसून माना है। यह समस्त संस्कृत साहित्य में एक उत्कृष्ट महाकाव्य है। आदर्शों की सृष्टि जैसी रघुवंश में है, वैसी अन्यत्र नहीं है। त्याग तपस्या और तपोबल इन तीनों का सम्बन्ध इस काव्य मे हैं। रवीन्द्रनाथ ठाकुर जी ने दोनो महाकाव्यों के विषय में कहा है कि– "दोनो ही काव्यों में कामदेव ने जिस मिलन–व्यापार की सिद्ध करने की चेष्टा की है, उसमें देवशाप से विघ्न उपस्थित हुआ है। वह मिलन असम्पन्न और न असम्पूर्ण रहकर अपने विचित्र कारू कार्य खचित परम सुन्दर मिलन मन्दिर में ही दावाहत होकर मर गया है। उसके बाद कठिन दुःख और दुःसह विरह वृत द्वारा जो मिलन सम्पन्न हुआ है उसकी प्रकृति ही भिन्न है। यह मिलन सौन्दर्य के सारे बाहरी आडम्बरों को छोंड़कर निर्मल वेश में कल्याण की कमनीय दीप्ति से जगमगा उठा है। किन्तु कवि ने यहीं पर विश्राम नही किया इस शक्ति मे निकट ही उन्होंने आपकी सारी काव्य शक्ति खर्च नही कर डाली। उन्होंने जैसे इस शक्ति की जय–घोषणा की है। वैसे ही अन्य दुर्जय शक्तियों के द्वारा पूर्णतर अन्तिम मिलन कराके ही अपना काव्य समाप्त किया है। स्वर्ग के देवताओं से उत्साहित और बसन्त की मोहिनी शक्ति से सहाय सम्पन्न कामदेव को केवल परास्त करके ही नहीं छोड़ दिया है बल्कि उसके स्थान पर एक ऐसे को विजयी बनाकर छोड़ा है। जिसके पास न तो कुछ वेशभूशा है और न किसी की सहायता जो तपस्या से दुर्बल है और दुःख से मलिन।"[1]

खण्डकाव्य/गीतिकाव्य

''खण्डकाव्य महाकाव्यस्यैकदेशानुसारि च'' खण्डकाव्य में महाकाव्य के एक भाग का वर्णन होता है, इसका प्रारम्भ कब हुआ इस पर विचार करें तो प्रथम वर्णन ऋग्वेद के अनुसार विपाशा–शुतुद्री सूक्त, सुदास–विजय सूक्त में खण्ड काव्य के प्रथम रूप के दर्शन होते हैं– **'अभ्रातेव पुंस एति प्रतीचीं गर्त्तारूगिव सनये धनानाम्।**

जायेव पत्ये उषतीं सुवासा उशा हस्रेव निरिणीते अप्सः।।[2]

महाकवि कालिदास ने मेघदूत और ऋतुसंहार की रचना करके खण्डकाव्य परम्परा

1.– प्राचीनसा0–रवीन्द्रनाथ ठाकुर '(अनुवादक पं0 रामदास मिश्रा),पृ0 240–290, उद्धृत डॉ0रमाशंकर–कालिदास पृष्ठ–120
2. सं0सा0इति0–आचार्य रामचन्द्र मिश्र, पृ0–80 में उद्धृत

का शिलान्यास किया है। ये खण्ड काव्य पाँच प्रकार के बताये गये हैं।[1] इन पाँचों प्रकारों में कालिदास, अमरूक, भर्तृहरि, जगन्नाथादि प्रमुख खण्ड काव्यकार हुए हैं।

इन्हीं खण्डकाव्यों को ही अत्याधुनिक समीक्षक गीतकाव्य (Lyric) नाम भी कहते हैं। वर्णन के अनुसार– गीति व्यक्तिगत सीमा में सुख दुःखात्मक अनुभूति का वह शब्द रूप है जो अपनी ध्वन्यात्मकता में गेय हो सके, इस प्रकार ध्वन्यात्मकता, रागात्मकता ही गीतकाव्य के प्रमुख तत्व हैं।[2] इन दो तत्वों के अतिरिक्त भावमयता भी एक विशिष्ट तत्व है।

उक्त तत्त्व उपस्थित होने के कारण मेघदूतम् तथा ऋतुसंहार को गीतकाव्य माना गया है। शृङ्गार, धर्म एवं नीति विषयों वाले गीतिकाव्यों को क्रमशः तीन भागों में बाँट सकते हैं :–

1. **प्रबन्धात्मक गीति काव्य–** मेघदूतं गीतिगोविन्दम्।
2. **मुक्तक गीतिकाव्य–**इसका प्रत्येक पद्य स्वतन्त्र होता है।

   यथा– शतकत्रय, अमरूकशतक, भामिनी विलास।
3. **निंबन्धात्मक गीति काव्य** – मात्र ऋतु सहार

महाकवि कालिदास के खण्ड काव्यों का परिचय एवं विशेषतायें संक्षिप्ततः इस प्रकार हैं:–

मेघदूतम्

संस्कृत के गीतिकाव्यों में इस प्रसाद मधुरा शृङ्गार संगोज्जवला रमणीय कृति को जो सम्मान मिला है, वह अन्य किसी काव्य को उपलब्ध नहीं हो सका। पंडितों ने इसे खंडकाव्य की आख्या प्रदान की है, लेकिन कथा–सूत्र इसमें अत्यन्त क्षीण किंवा नगण्य है। वास्तव में, यह प्रेम से आर्द्र एवं कातर हृदय की मधुर उद्वेजनाओं का मन्द्र मनोरम कोश है। एक सौ बीस ललित पद्यों (मन्दाक्रान्ता छन्दों) में महाकवि नें कान्ता विश्लेषित यक्ष की वियोग–व्यथा का मर्मस्पर्शी चित्रण किया है। कथा इस प्रकार है– ' अलकापुरी के अधीश्वर कुबेर ने अपने सेवक यक्ष

---

1. सं0सा0इति0–आचार्य रामचन्द्र मिश्र, पृ0–80 के अनुसार– 1.ऋग्वैदिक 2.भक्तिरस 3.ऐतिहासिक 4.रूपकान्तर्गत 5. उत्तरकाल खण्डकाव्य
2. मेघदूतं–डॉ0 बाबूराम त्रिपाठी, भूमिका पृ0–7से

को, कर्तव्य–च्युति के कारण, एक वर्ष के लिए निर्वासित कर दिया है। निर्वासन की अवधि यक्ष भारत के दक्षिणांचल में अवस्थित रामगिरि नामक पर्वत पर व्यतीत करता है। आठ मास व्यतीत कर चुकने के बाद, वर्षा ऋतु के आगमन से उसके प्रेम कातर हृदय में अपनी प्राणदयितायाक्षिणी की स्मृतियाँ सहसा उद्वेलित हो जाती है और वह मेघ को दूत बनाकर उसके पास अपना प्रणय–संदेश प्रेषित करता है।' प्रस्तुत काव्य के पूर्वार्द्ध (पूर्वमेघ) में यक्ष ने रामगिरि से अलका तक के मार्ग का विशद वर्णन किया है तथा उत्तरार्द्ध (उत्तरमेघ) में अपनी प्रेयसी की विरह–विह्वल दशा का कथन कर अन्ततः अपना मर्मविदारक संदेश भेजा है। इतने ही स्वल्प वृत्त को लेकर कवि ने अपनी प्रसन्न–मधुरा वाणी को "मन्दाक्रान्ता की झूमती चाल" प्रदान कर वह अलौकिक इस धारा बहाई हैं जिसमें काव्य–रसिक अद्यावधि डूबते–उतराते चले आ रहे हैं।

मेघदूत के अनुकूल मन्दाक्रान्ता पर कवि का अधिकार देखकर क्षेमेन्द्र ने कहा है[1]–

"सुवशा कालिदासस्य मन्दाक्रान्ता प्रवल्गति।"

प्रसिद्ध टीकाकार मल्लिनाथ ने 'मेघदूत' की कल्पना को वाल्मीकीय रामायण की उस घटना से गृहीत बताया है जिसमें राम–सीता के लिए हनुमान द्वारा संदेश भेजते हैं। यथा–

"सीतांप्रति रामस्यहनुमत्संदेशं मनसिनिधाय मेघ सन्देशं कविः कृतवानित्याहुः।[2]

'कालिदास ने चेतन' अचेतन की विभाजक रेखा मिटाने का श्रेय 'काम' को दिया है– **'कामार्ता हिं प्रकृति कृपणाश्चेतनाचेतनेषु'**। मेघदूत का मौलिक प्रतिपाद्य सृष्टि–संचालन में काम–तत्त्व की प्रधानता है। यक्ष मेघ को इन्द्र का कामरूप प्रधान पुरुष ही मानता है– 'जानामि त्वां प्रकृति पुरुषं कामरूपं मघोनः।' इसीलिए, वह अपनी कामातुर दशा में उसके पास प्रार्थी बनकर गया है। मेघ की इसी कामरूपता ने सम्पूर्ण चराचर सृष्टि में द्वैत–भाव का जनन कर दिया है। सब में एक प्रकार की उद्वेजना उत्पन्न कर दी है। कालिदास ने मेघ को साधु, सौम्य, सुभग एवं आयुष्मान् विश्लेषणों से सम्बोधित किया है क्योंकि वह 'स्थूल' और सूक्ष्म दृश्य निरिन्द्रिय और सेन्द्रिय सभी पदार्थों को एक समान आर्शीवाद देता है।[3]

---

1. महाकवि कालिदास–डॉ0 रमाशंकर, पृ0 121,
2. मल्लिनाथ–मेघदूत प्रथम श्लोक टीका
3. मेघदूत एक अध्ययन, –डॉ0 वासुदेवारण अग्रवाल, पृ–1

यक्ष का प्रणय संदेश किसी परकीया प्रेयसी के प्रति नहीं, अपितु अपनी पतिव्रता धर्मपत्नी के लिए प्रेषित किया गया है। यक्ष को विश्वास है कि उसका भव्य भवन उसके विप्रयोग में छविहीन बन गया होगा। क्योंकि सूर्य के .अभाव में कमल श्रीहीन हो जाता है।[1] इसी प्रकार उसकी प्रियतमा अत्यन्त सुंदर 'सृष्टिराद्येवधातुः' अर्थात विधाता की पहली सृष्टि है।[2] वियोगावस्था में आज वह पाले से मारी हुई कमलिनी इव हो गई होगी।[3]

फारसी के प्रसिद्ध कवि उमर खय्याम ने भी कहा है कि मेरे पास साकी हो, वृक्ष की छाया हो, मदिरा से भरी हुई सुराही और प्याला हो और हाथ में पुस्तक हो। उमरखय्याम ने उस पुस्तक का नाम तो नहीं बताया किन्तु उन्होंने यदि कालिदास की कविता का अनुवाद पढ़ा होगा तो निश्चय ही वह मेघदूत पोथी ही चाहते होंगे।[4] संस्कृत के विद्वान कहते हैं– 'मेघे माघे गतं वयः।' '(मेघदूत और माघ के शिशुपाल वध को जीवन भर पढ़ते रहेंगे किन्तु तृप्ति) नहीं हुई किन्तु उन्हें कहना चाहिए– मेघे -मेघे गतं वयः। (मेघदूत ही मेघदूत पढ़ते रहने में जीवन बिता दिया, माघ में वह रस कहाँ है?)'

इस प्रकार प्रस्तुत प्रबन्धात्मक गीतकाव्य में विरह से युक्त व्यक्ति की मनःस्थित का वर्णन किया गया है। पूर्व मेघ में वाह्य प्रकति एवं उत्तर मेघ में अन्तः प्रकति का वर्णन हुआ है।

ऋतुसंहार

'ऋतुसंहार' महाकवि कालिदास की प्रथम काव्य रचना है। अतः इसमें उनके अन्य काव्यों में उपलब्ध होने वाली उच्चाशयता एवं अभिव्यक्ति की चारुता के दर्शन नहीं होते। यह उनके उद्दाम यौवन के उद्गारों का मंद्रकोष है जो उनकी सहज गीत्यात्मक प्रतिभा का प्रसाद पाकर रस से आर्द्र बन गया है। जो मेघदूत का माधुर्य अवश्य उसमें वर्तमान नहीं है, लेकिन उसके प्रणयन की भूमिका के रूप में वह काव्य रसिकों का हृदय हरण करने में समर्थ है। यह निबन्धान्मक गीति काव्य कहलाता है। संस्कृत काव्य में ऋतुओं पर लिखी जाने वाली एक मात्र रचना

---

1 महाकवि कालिदास, पृ0–130 2. उ0मे0श्लोक–22, तन्वीश्यामा....धातुः। 3. उ0मे0श्लोक–23

4. मेघदूत में रसवत्ता–पं0 सीताराम चतुर्वेदी, पृ0–68, कालिदास ग्रथ्नी भूमिका से।

'ऋतुसंहार' ही है। इसके छः सर्गों में क्रमशः ग्रीष्म, वर्षा, शरद, हेमन्त, शिशिर तथा बसन्त ऋतु का गीत्यात्मक स्वरों में वर्णन हुआ है। प्रत्येक सर्ग में 16 से लेकर 28 तक श्लोक संख्या मिलती है। प्रत्येक सन्दर्भ में प्रकति की स्वतन्त्र छवियों अथवा व्यापारों के तथा उस ऋतु विशेष से प्रेमी जनों के मानसों पर पड़ने वाले प्रभावों के चित्र अंकित किये गये हैं।[1]

ग्रीष्म वर्णन के प्रथम श्लोक में ही, अपनी प्रिया को सम्बोधित करते हुए कवि ने शिकायत की है कि सूर्य की प्रचण्डता वाले काल में कामदेव एकदम शान्त पड़ गया है। "**अभ्युपशान्तमन्मथः**।"[2] गर्मी के प्रभाव का वर्णन कवि ने निम्नवत किया हैः–

"रवेर्मयूखैरभितापितो भृशं विदह्यमानः पथि तप्तपांसुभिः।

अवाङ्गमुखो जिह्य गतिः श्वसन्मुहुः फणी मयूरस्यतले निषीदति।।

इस श्लोक में कवि ने बताया है कि 'सूर्य की अन्यन्त प्रखर किरणों द्वारा ऊपर से और गरम–गरम धूल से नीचे से गरमी पहुंचने के कारण झुलसा हुआ और व्याकुलता के कारण जल्दी–जल्दी श्वांस छोड़ने वाला वक्र गति सर्प अपना सहज जाति बैर भूलकर मयूर की छाया का सहारा ले रहा है।[3] ग्रीष्म काल की चांदनी बहुत भली मालूम होती है।[4]

ग्रीष्म काल की चांदनी बहुत भली मालूम होती है। ठंडे पानी के लिए जी चाहता है। रात्रि में भवन के ऊपर खुली छत पर प्रिया सहित कामोदीपक सुरापान और वीणावादन में कामीजन रात्रि का समय विताते हैं। निशा में स्वच्छ सफेद घरों के ऊपर छतों पर सुख निद्रा लीन रमणियों की मुखकान्ति देखकर चन्द्रमा लज्जा से फीका पड़ जाता है इत्यादि वर्णन द्वारा कवि ने ग्रीष्म ऋतु में कामीजनों की चित्त–वृत्ति पर होने वाला परिणाम दिखाया है।[5]

ग्रीष्म के बाद वर्षा का आगमन होता है। उस समय प्यास से चातक पक्षियों की याचना पर जलभार विनम्र मनोहर गर्जन ध्वनि करते हुए मेघ जल बरसातें हैं और पथिकों को अपनी प्रयोसियों का विरह सताता है, इत्यादि विषयों का इस ऋतु में वर्णन किया गया है।[6] शरद् का वर्णन देखिये–

1.महाकवि कालिदास, पृ0145–147
2. ऋ0सं0–1/1
3. ऋ0सं0–1/13
4. ऋ0सं0–1/2
5. ऋ0सं0–1/28
6. ऋ0सं0–प्रावृड्वर्णनम् श्लोक–2

काशांशुका विकचपद्म मनोज्ञवक्त्रा,

सोन्मादहंसरवनूपुरनादरम्या।

आपक्वशालि रूचिरानवगात्रयष्टिः,

प्राप्ता शरन्नवधूरिव रूपरम्या।। 3/1।।

'श्वेत काश की सुन्दर साड़ी पहने हुए विकसित कमल ही जिसका मनहोर मुख है। उन्मत्त हंसों की ध्वनि ही जिसके नूपुरों की आवाज है पके हुए धान ही जिसका सुन्दर कश शरीर है, ऐसी नक्वधू सदृश रमणीय इस शरद ऋतु की रातें चन्द्र की प्रभा से नदियां हंसों से, सरोवर सारस पक्षियों से, वनस्थली पुष्पभार से, विनम्र सप्तवर्ण वृक्षों से तथा उपवन मालती पुष्पों से श्वेत दिखाई पड़तें हैं।[1] ''चतुर्थ तथा पंचम सर्ग में कवि ने हेमन्त तथा शिशिर ऋतुओं का वर्णन किया है। इनमें प्रकृति वर्णन के साथ–साथ युवा–युवतियों की प्रेमलीला का वर्णन है। अन्त में बसन्त ऋतु का वर्णन अधिक रमणीय हुआ है। इस ऋतु में वृक्षसपुष्प, सरोवर पद्मयुक्त, कामिनियां काम वश, पवन परिमल युक्त, संध्या समय खुखकारी तथा दिन रमणीय होते हैं, ऐसा कवि ने एक ही श्लोक में इस ऋतु की रमणीयता का दिग्दर्शन कराया है। यह वर्णन अत्यन्त मनोहर है स्वाभविकता की अच्छी मात्रा दिखाई पड़ती है। बसन्त समीर का वर्णन देखिए:–

आकम्पयन् कुसुमिताः सहकार शाखा

विस्तारयन्परभृतस्य वचांसि दिक्षु।

वायुर्विवाति हृदयानि हरन्नराणां

नीहार पात विगमात् सुभगो वनान्ते।। 6/22।।

कुहरा नष्ट हो जाने से सुखकारी वायु बौरे हुए आमों की डालियों को हिलाकर कोकिल के कलकूजन को चारो तरफ फैलाकर लोगों के हृदयों को अपनी ओर खींच रहा है, इत्यादि वर्णन है।

उपर्युक्त वर्णनों से 'ऋतुसंहार' के अन्य श्लोकों द्वारा यह ज्ञात होता है कि कवि का मन वाह्य स्मृति तथा श्रंगार की ओर अधिक झुका हुआ है। 'ऋतुसंहार' में कवि

1.सं0सा0का इति0 पृ0–83

ने स्वभावोक्ति की ओर विशेष ध्यान दिया है।लघुकाय छः सगीत्मक कुल 153 श्लोकों में कवि कालिदास ने प्रकृति शब्द चित्र प्रत्यक्ष दृष्ट इव हृदय को प्रसन्न करते हैं।[1]

रॉइडर (A.W.Ryder) की यह टिप्पणी है कि 'ऋतुसंहार' का वर्णन वस्तून्मुख नहीं है; अपितु वह प्रत्येक ऋतु द्वारा प्रेमियों के हृदयों में उद्रिक्त भावनाओं से समबद्ध है। वस्तुतः प्रस्तुत कविता को 'प्रेम का तिथि पत्र (Low's Calender) कहा जा सकता है।" लेकिन यह मूल्याङ्कन युक्तिसंगत नहीं है। इस रचना में वस्तुनिष्ठ एवं आत्मनिष्ठ दोनों प्रकार के गुण वर्तमान हैं।[2]

प्रस्तुत रचना ने हमारे साहित्य में एक नवीन आयाम जोड़ दिया है। आदि कवि वाल्मीकि ने वर्षा, शरद्, बसन्त तथा हेमन्त इन्हीं चार ऋतुओं का वर्णन किया है। इसके विपरीत कालिदास ने सर्वप्रथम सप्त ऋतुओं का क्रमबद्ध एवं काव्य सुलभ सौन्दर्य युक्त ललित चित्रण किया है जिसे परवर्ती काव्यकारों ने काव्य वर्णन के आवश्यक अङ्ग रूप में स्वीकार कर लिया है। हिन्दी में ऋतु वर्णन-के अतिरिक्त बारहमासा लिखने की परिपाटी भी चल पड़ी जिसकी परोक्ष प्रेरणा ऋतुसंहार से मिली होगी।[3]

संस्कृत-नाट्योत्पत्ति

संस्कृत नाटक की उत्पत्ति समझने के पूर्व नाट्य, रूप और रूपक का अर्थ समझना आवश्यक है। अनुकार्य राम, दुष्यन्त आदि की अवस्था का उनके चरित्र का अनुकरण की नाट्य कहलाता है- **'अवस्थानुकृतिर्नाट्यम।'**[4]
रंगमंच पर अभिनीत किये गये इन नाट्यों को दर्शक गण देखते हैं अतः इन्हें रूप भी कहते हैं। साथ ही इन नाट्य रूपों का अभिनय करने वाले नटों पर राम, दुष्यन्त, सीता का आरोप किया जाता है। नटों को राम आदि के समान समझा जाता है अतः इन्हें रूपक भी कहतें हैं। वैसे ही जैसे कि रूपक अलंकार में मुख पर चन्द्र, कमल आदि का आरोप किया जाता है- मुख चन्द्र, मुख कमल आदि। अतः रूपक अलंकार में उपमेय और उपमान में अभेदारोप की ही भांति अनुकाय और अनुकर्ता में अभेदारूप

1. सं0सा0काइति0 पृ0-83
2. महाकवि कालिदास पृ0-156 में उद्धृत
3.महाकविकालिदास पृ0-156-157 में उद्धृत
4. दशरूपकम्-धनंजय-1/7

–होने से सभी नाट्य रूपक भी कहलाते हैं।[1] आचार्यों ने इन संस्कृत रूपकों के दशभेद माने हैं। इन संस्कृत रूपकों का उद्भव कब और कैसे हुआ यह एक विवाद ग्रस्त विषय रहा है। पाश्चात्य मनीषीनाट्यों की उत्पत्ति को लेकर विविध सिद्धान्त प्रस्तुत करते है और ये लगभग सभी सिद्धान्त एक दूसरे के विरुद्ध है।

भारतीय मनीषी एक मत है और नाट्यों की उत्पत्ति वेदों से मानते हैं। पाश्चात्य विविध मत संक्षिप्ततः निम्नवत् हैं:–

1. **वीरपूजा से सम्बन्धित मत–** इस मत के प्रवर्तक डा0 रिजवे हैं। इनके अनुसार भारतीय नाट्यों की उत्पत्ति मृत वीर पुरुषों के प्रति आदर एवं श्रद्धा की भावना से सम्बन्धित है। यूनानी नाटकों के तरह भारतवर्ष में भी दिवंगत महान् आत्माओं के प्रति सम्मान की भावना से रामलीला,रास लीला रूप में नाट्योत्पत्ति हुई है।[2]
2. **पुत्तलिका नृत्य से सम्बन्धित मत–** इस मत के प्रवर्तक जर्मन विद्वान डॉ0 पिशेल हैं। इस सिद्धान्त का मुख्य आधार संस्कृत नाटकों में सूत्रधार और स्थापक शब्दों का प्रयोग है। किन्तु नाटक के सूत्रधार में सूत्र शब्द का अर्थ डोरा न होकर 'नाटकीय विविध उपकरण' होता है।[3]

''नाट्योपकरणादीनि सूत्रामित्यामिधीयते।

सूत्रं धारयतीत्यर्थे सूत्रधारो निगद्यते।।''

3. **मे0पोल नृत्य मत–** अनेक पाश्चात्य विद्वान संस्कृत रूपकों की उत्पत्ति का आधार विदेशों में मई मास में लम्बे बांस के नीचे खेले जाने वाले खेलों नृत्य, उत्सव तथा आनन्दोल्लास को मानते हैं। विदेशों में यह उत्सव एक प्रकार का लोक नृत्य है।
4. **छाया नाटकों से सम्बन्धित मत–** इस सिद्धान्त के समर्थक डॉ0 लूडर्स तथा डॉ0 कोनो है। इन विद्वानों के अनुसार संस्कृत रूपकों की उत्पत्ति छाया नाटकों से मानी गई है।
5. **यूनानी विद्वानों से सम्बन्धित मत–** कुछ विद्वान संस्कृत नाटकों की उत्पत्ति ग्रीक नाटकों के प्रभाव से मानते हैं। इस मत के प्रमुख प्रवर्तक प्रो0 विन्डिश

---

1. दशरूपकम्, धनंजय–1/7
2. Drama and Drama tic dances a non European Races –Dr. Rijvi

3-महाकवि कालिदास से उद्धृत

है। ग्रीक व भारतीय नाटकों में बहुत अन्तर है ।

ग्रीक नाटक	**भारतीय नाटक**
1. ग्रीक नाटक दुखान्त होते हैं।	1. जबकि संस्कृत रूपक सुखान्त होते हैं।
2. विदूषक ग्रीक नाटकों में नहीं होता है।	2. विदूषक की कल्पना भारतीय रूप की अपनी देन है।
3. उद्देश्य मनोरंजन होता है।	3. उद्देश्य रसानुभूति होता है।

वेदमूलक उत्पत्ति से सम्बन्धित भारतीय मत

यह भारतीय सिद्धान्त है भारत एवं पश्चिम के अधिकांश मनीषी इस पर एक मत है। नाट्य शास्त्र के प्रथम अध्यायानुसार ब्रह्मा ने कृपा पूर्वक ऋग्वेद से संवाद, सामवेद से गान, यजुर्वेद से अभिनय एवं अथर्ववेद से रस ग्रहण करके एक **'नाट्यवेद'** नामक पञ्चमवेद का निर्माण किया–

जग्राह नाट्यं ऋग्वेदात् , सामभ्योगीतमेव च ।

यजुर्वेदादाभिनयान् , रसानथर्वणादपि।।[1]

इस नाट्यवेद मे समस्त ज्ञान, समस्त शिल्प, सभी विद्यायें एवं कलायें समाविष्ट हैं।

न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं, न सा विद्या न सा कला।

न स योगो न तत्कर्म, यन्नाट्येऽस्मिन्न दृष्यते।।[2]

इसके अतिरिक्त विभिन्न वेदों में उपलब्ध होने वाले संवाद सूक्त रूपकों के संवादों के मूल रूप माने जा सकते हैं। पुरूरवा–उर्वशी, यम–यमीं, विश्वामित्र नदी, अगस्त्य लोपामुद्रा, सरमापणि, संवाद आदि में नाटकीय संवादों का मूल रूप उपलब्ध होता है। कालिदास के विक्रमोर्वशीय नाटक का आधारनिश्चित ही पुरूरवा उर्वशी संवाद होना चाहिए। यजुर्वेद में शैलूष शब्द का प्रयोग आया है जो नट का पर्यायवाची है। रामायण तथा महाभारत में अनेकत्र नट तथा नर्तक शब्दों का प्रयोग मिलता है–**'आनर्ताश्च तथा सर्वे नटनर्तक गायकाः'**।[3] विराट पर्व में रंगशाला का उल्लेख आया है। हरिवंश मे एक नाटक खेले जाने का वर्णन है। रामायण में नट–नर्तक नाटक शब्दों का प्रयोग मिलता है– **नाराजके जनपदे प्रकृष्ट–नट नर्तकाः**।[4] 500ई0पूर्व में

1. नाट्य शास्त्र– 1/1
2. नाट्यशास्त्र 1/116
3. महाभारत 2/15/13
4. रामायण, अयोध्या काण्ड–67/15

पाणिनि ने अष्टाध्यायी में **पाराशर्य शिलालिभ्यां भिक्षुनट सूत्रयोः**, सूत्र में नट शब्द का उल्लेख किया है।[1] 150ई0पूर्व में पतञ्जलि के महाभाष्य में कंस वध तथा बलिबन्ध नामक दो नाटकों का उल्लेख मिलता है। 500ई0पूर्व में पाणिनि ने अष्टाध्यायी के अतिरिक्त एक जाम्बवती जय नामक नाटक भी लिखा यथा–

स्वस्ति पाणिनये तस्मै येन रुद्र प्रसादतः।

आदौ व्याकरणं प्रोक्तं ततो जाम्बवतीं जयम्।।

इस प्रकार से सिद्ध होता है कि संस्कृत नाट्यों की परम्परा भारतवर्ष में ही आरम्भ हुई।

नाटक परिभाषा, स्वरूप एवं विकास

ये रूपक दस प्रकार के होते हैं– नाटक, प्रकरण, भाण, प्रहसन, डिम, व्यायोग, समवकार, वीथी, अंक और ईहामृग।[2]

नाटक प्रथम प्रकार का रूपक है। आचार्य विश्वनाथ ने साहित्य दर्पण में नाटक की परिभाषा इस प्रकार दी है[3]–

''नाटकं ख्यातवृत्तं स्यात्पञ्चसन्धिसमन्वितम्।

विलासद्धर्यादिगुणवद्युक्तंनानाविभूतिभिः।।

नाटक का कथानक इतिहास प्रसिद्ध, पाँचों सन्धियों तथा रसों से युक्त होना चाहिए। पाँच से लेकर दस तक अङ्क होने चाहिए। नाटक का अङ्गीरस श‍ृङ्गार या वीर में कोई भी एक हो सकता है।

विकास– संस्कृत नाटकों का प्रारम्भ कब से हुआ यह निश्चित रूप से तो नहीं कहा जा सकता किन्तु वैयाकरण पाणिनि ने अष्टाध्यायी के अतिरिक्त एक 'जाम्बवतीजय' (पाताल विजय) नामक नाटक लिखा था यह उल्लेख मिलता है। महर्षि पतंजलि ने कंसवध एवं वलिबन्ध नामक दो नाटकों के खेले जाने की चर्चा की है[4]। लगभग इसी समय लिखे गये नाट्य शास्त्र में भी समुद्रमन्थन तथा त्रिपुरदाह नामक दो नाटकों का उल्लेख है। संस्कृत में सर्वप्रथम नाटककार के रूप में 'भास' का नाम आता है। महाकवि कालिदास ने 'भास' को एक नाटककार के रूप में स्मरण किया है[5]। भास के 13 नाटक इस प्रकार है :–

---

1. अष्ध्यायी 4/3/110 2. दशरूपक 1/8 3. साहित्य दर्पण–6/711

4. पतञ्जलि महाभाष्य 3/2/111 5.मालविकाग्निमित्र प्रस्तावना से

(क) महाभारत से सम्बन्धित– उरुभङ्ग, दूतवाक्य, पञ्चरात्र, बालचरित, दूतघटोत्कच, कर्णभार मध्यम व्यायोग।

(ख) रामायण से सम्बन्धित– प्रतिमा नाटक, अभिषेक नाटक।

(ग) उदयन कथा से सम्बन्धित– प्रतिज्ञा यौगन्धरायण, स्वप्नवासवदत्तम्।

(घ) कल्पनामूलक– अविमारक, चारूदत्त।

भास के ही समकालीन कवि शूद्रक थे जिनका 'मृच्छकटिक' प्रकरण संस्कृत साहित्य में अद्वितीय है। इनका एक भाण 'पद्म प्राभृतक' भी है।[1]

यदि कालिदास को ई0पूर्व प्रथम सदी का माना जाय तो कवि शूद्रक के बाद उनकी स्थिति मानी जानी चाहिए। कालिदास काव्यकला एवं नाट्यकला दोनों के सरस ललित व मृदुल कवि हैं। इनके तीन नाटक हैं–

1. विक्रमोर्वशीयम, 2. मालविकाग्निमित्रम् 3. अभिज्ञानशाकुन्तलम्।

तीनों ही प्रणय प्रधान शृङ्गार रस के नाटक हैं और नाट्यकला की दृष्टि से तीनों ही उत्तरोत्तर उत्कर्ष युक्त हैं। अभिज्ञान-शाकुन्तलम् तो विश्व के सर्वश्रेष्ठ नाटकों में से एक हैं। कालिदास के ही समकालीन महाकवि अश्वघोष हैं, जिनका 'शारिपुत्रप्रकरण' एक प्रकरण है। इसमें दो पात्र शारिपुत्र एवं मोद्गल्यायन दोनों के बौद्ध धर्म में दीक्षित होने की प्रमुख घटना है।

5वीं शताब्दी में विशाखदत्त नें मुद्राराक्षस नाटक लिखकर संस्कृत जगत में एक क्रान्ति पैदा कर दी यह परम्परागत शैली से किञ्चिद् भिन्न, कूटनीति से भरा हुआ, राजनैतिक संघर्ष प्रधान एक गम्भीर नाटक है जिसका अनुकरण सम्भवतः किसी अन्य नाटककार नें नहीं किया। 7वीं शताब्दी में राजा हर्षवर्द्धन के तीनो रूपक बहुत प्रचलित हुए। इनमें दो नाटिकायें प्रियदर्शिका एवं रत्नावली हैं तथा एक नाटक नागानन्द है। हर्षवर्धन के बाद 7वीं शताब्दी के लगभग अन्त में भवभूति की स्थिति आती है। इनकी तीन नाट्य कृतियाँ हैं– 1.मालतीमाधव 10 अंकों का प्रकरण, 2. महावीर चरित 3.उत्तर रामचरित नाटक है।। इन्हीं के समकालीन नाटककार भट्टनारायण (बेणीसंहार) है। आठवीं सदी के कवि मुरारी का नाटक अनर्धराघव तथा बारहवीं शताब्दी के कवि जयदेव का प्रसन्नराघव नाटक है। दशवीं शताब्दी के

1. संस्कृत भाण साहित्य की समीक्षा, पृ0 41, डॉ0 बाबूलाल तिवारी

राजशेखर की चार नाट्य कृतियाँ मिलती हैं— रामायण से सम्बन्धित नाटक— बालरामायण, महाभारत से सम्बन्धित, बालभट्ट नाटक और रत्नावली अनुकरण पर लिखी नाटिका— 'विद्धशालभञ्जिका तथा रत्नावली कथा से मिलता एक सट्टक उपरूपक 'कर्पूरमञ्जरी है। नाटककार दिङ्नाग का उत्तर रामचरित के अनुकरण पर लिखा गया नाटक 'कुन्दमाला' आपकी सरसता एवं सरलता के कारण प्रसिद्ध है। दामोदर मिश्रा कृत महानाटक (हनुम्मनाटक) आकार में सबसे बड़ा है। यह अपने ढंग का एक विचित्र नाटक है। जिसमें गद्य का प्रयोग स्वल्प तथा प्राकृत का सर्वथा अभाव है। 11वीं सदी के कृष्ण मिश्रा का सामान्य परम्परा के विपरीत एक प्रतीकात्मक नाटक' प्रबोध चन्द्रोदय मिलता है जिसमें अमूर्त पात्र विवेक, करूणा, शान्ति, मोह, सन्तोष, क्षमा आदि के द्वारा अध्यात्म दर्शन एवं भक्ति का निरूपण किया गया है।
महाकवि कालिदास ने तीन नाटकों की रचना की है, जिनका परिचय, विशेषतायें संक्षिप्त में इस प्रकार हैं—

1. मालविकाग्निमित्रम्

इसमें पांच अंक हैं। इसका कथानक बहुत जटिल है। विदिशा का राजा अग्निमित्र इस नाटक का नायक है जो धीरोदात्त की अपेक्षा धीरललित अधिक है। मालविका नायिका है जो विदर्भराज की भगिनि है। इन दोंनो की प्रणय—कहानी ही नाटक का मूल प्रतिपाद्य है। कवि कुल गुरू की यह पहली नाट्य रचना है। अतः इसमें लालित्य, माधुर्य, अथवा भाव गांभीर्य दृष्टिगोचर नहीं होता। नाटक के प्रथम सर्ग में कहा है कि ''पुरानी होने से ही न तो सभी वस्तुएं अच्छी होती हैं और न नई होने से बुरी अथवा हेय। विवेकशील व्यक्ति अपनी बुद्धि से परीक्षा करके श्रेष्ठतर वस्तु को अङ्गीकार कर लेते हैं ओर मूर्ख लोग दूसरों के बताने पर ग्राह्य अथवा अग्राह्य का निर्णय करते हैं।''[1]

सूत्रधार और परिपार्श्वक की इस बातचीत में कवि ने पूर्ववर्ती भास आदि प्रसिद्ध कवियों के नाटकों की अपेक्षा अपने नाटकों की गुणोत्कृष्टता ध्वनित की है।[2]
मालविकाग्निमित्र का पहला अंक मिश्र विष्कंभक से प्रारम्भ होता है। इसमें आरम्भिक

1— मालविकाग्निमित्र—1/2 —**पुराणमित्येव न साधु सर्वं न चापिकाव्यं नवमित्यवद्यम्।**

सन्तः परीक्ष्यान्यतरद् भजन्ते मूढः परप्रत्ययनेय बुद्धिः।।

2— सं0सा0 का इति0 आचार्य रामचन्द्र मिश्र पृ0 106 एवं कालिदास—मिराशी।

सूचना यह प्राप्त होती है कि महारानी धारिणी के एक दूसरे सम्बन्ध वाले भाई वीरसेन ने मालविका को अपनी बहन के पास भेजा है वह नाट्याचार्य गणदास की देखरेख में 'छलिक' नाट्य का अभिनय सीख रही है एक चित्र में उसकी रम्याकृति को देखकर राजा अग्निमित्र उससे मिलने की अभिलाषा करने लग गया है तथा इस कारण मालविका बडे पहरे में रखी जा रही है। जिससे वह राजा की दृष्टि में न पड सके।

इसके अनन्तर मुख्य अंक का प्रारंभ होता है। प्रथम राजा और आमात्य प्रवेश करते हैं। उनके संभाषण से मालूम पडता है कि मगध में राज्य क्रान्ति हुई है और मौर्य राजा को पदच्युत किया गया है। उसके सचिव को कारागार में बन्द कर अग्निमित्र के पिता पुष्यमित्र ने गद्दी ले ली है। इसी समय विदर्भ के राज सिंहासन के विषय में दो चचेरे भाइयों में कलह उत्पन्न हुआ था उसमें से एक भाई माधव सेन अपनी बहन मालविका, अग्निमित्र को देने और मदद मांगने के लिये विदिशा जा रहा था। इधर उसके चचेरे भाई यशसेन ने गद्दी छीन ली और अपने सीमान्त अधिकारियों द्वारा उसे कैद करा लिया। अग्निमित्र ने माधवसेन और उसकी बहन को छोंडने के लिये उसे लिखा। तब उसने उत्तर में कहा कि मेरे साले और मौर्य राजा के मंत्री को आपने कैद किया है, यदि आप उनको छोंड देगे तो मै भी माधव सेन को छोंड दूंगा। माधव सेन को पकडने की गडबड में उसकी बहन कही भटक गई हैं। उसका भी पता लगाने का यत्न करूंगा। अग्निमित्र विदर्भ पर चढ़ाई करने के लिये अपने सेनापति को आज्ञा देता है। राजकार्य पूरा होने पर आमात्य जाता है और विदूषक प्रवेश करता है। उसके और राजा के संभाषण से राजा को मालविका दिखा देने की कोई युक्ति उसे सूझी है ऐसा प्रेक्षकों को मालूम पडता है। इतने में गणदास और हरदत्त इन दोनों नाट्याचार्यों में विदूषक की कलह प्रियता से लडाई शुरू होती है और वे दोनों उसका निर्णय कराने राजा के पास आते हैं। गणदास को धारिणी का आश्रय प्राप्त है। यह सोचते हुए राजा–रानी के सामने पंडिता कौशिकी नामक परिव्राजिका को इसका मध्यस्थ बनाकर निर्णय कराने का सुझाव देता है। दोनों इस प्रस्ताव को मान लेते हैं। परिव्राजिका कहती है कि जो स्वतः अत्यन्त निपुण होकर दूसरों को सिखाने में भी निपुण होता है वही श्रेष्ठ शिक्षक है। अतः तुम अपनी शिष्याओं की परीक्षा दिलाओं और उनका अंग सौष्ठव स्पष्ट दिखाई दें इसलिये पात्र

नेपथ्य–रहित रहें। गणदास के आग्रह से मृदंग ध्वनि सुन पडने पर नाच की तैयारी हो गयी ऐसा समझकर सब लोग वहां जाते हैं।

इस प्रकार पहले अंक में राजकीय परिस्थिति का संक्षेप में वर्णन, हरदत्त व गणदास का कलह, मालविका राजा की दृष्टि में न पडे इसलिए रानी की व्याकुलता, उसको देखने के लिये राजा की उत्सुकता, परिव्राजिका कौशिकी का निष्पक्ष बनने का आडम्बर, विदूषक का गणदास जी को चिढाना और उसका उपहास पूर्ण विनोद उत्तम रीति से अंकित किया गया है। दूसरे अंक का स्थल राजमहल की संगीत शाला है। गणदास की निर्देशन में मालविका अपना अभिनय प्रदर्शित करती है तथा हरदत्त की शिष्या रानी इरावती का प्रदर्शन दूसरे दिन के लिये स्थगित कर दिया जाता है। भगवती कौशिकी मालविका की निर्दोष अभिनय कला की मुक्तभाव से प्रशंसा करती है। जिससे गणदास सात्विक गर्व के अनुभव से फूला नहीं समाता। इस अंक की कथावस्तु इतनी ही है। लेकिन इसका महत्व इस बात पर है कि अग्निमित्र को मालविका के रूप दर्शन का भरपूर अवसर मिल जाता है। मालविका के दर्शन पर अग्निमित्र इस प्रकार प्रतिकिया व्यक्त करता है–

'चित्रगतायामस्यां कान्तिविसंवाद शंकि में हृदयम् ।

सम्प्रति शिथिल समाधिं मन्ये येने यमालिखिता ।। 2/2।।

चित्र में उसका रूप देखकर मुझे यह संदेह हो रहा था। कि यह उतनी कान्तिमती नहीं होगी। लेकिन अब ऐसा प्रतीत हो रहा है कि चित्रकार ने पूर्ण तन्मयता से इसका चित्र नहीं बनाया।

मालविका के सम्पूर्ण गात्र अनवद्य सौन्दर्य से पूर्ण है। उसके बडे–बडे नेत्र हैं शरद ऋतु के चन्द्रमा की क्रांति से युक्त चमकीला मुख है। कंधो पर झुकी भुजाएं है छोटे किन्तु कठोर स्तनों से जकडी हुई छाती है चिकनी कोखें और मुठ्ठी में समाने वाली कमर है, मोटी जांघे ओर थोडी झुकी हुई दोनों पैरों की अंगुलियां है। ऐसा जान पड़ता है मानों इसका शरीर उसके नाट्य गुरू गणदास जी के कहने पर ही गढा गया होगा।[1] इस प्रकार मालविका के रूप सौन्दर्य तथा अग्नि मित्र के पूर्व राग की निविडता की व्यंजना ही द्वितीय अंक का मुख्य प्रतिपाद्य है। तृतीय अंक में विदूषक व

1. माल० अंक 2/3

राजा प्रमदवन जाते हैं। वहाँ राजा बसन्त ऋतु का शोभा का वर्णन करता है। विदूषक की धूर्तता से धारिणी झूले से गिर जाती है। अतः पैर में चोंट के कारण सुवर्ण अशोक में फूल आवें, इसलिए आवश्यक पाद प्रहार करने के लिए वह मालविका को भेजती है और पाँच रात के भीतर उसमें फूल आयें तो मैं तेरी इच्छा पूरी करूंगी, ऐसा वचन भी देती है। मालविका तथा राजा अग्निमित्र प्रमद वन में मिलते हैं।

चौथे अंक के प्रारम्भ में राजा और विदूषक गौतम के भाषण से हमें मालूम होता है कि इरावती के शिकायत करने पर धारिणी ने मालविका और बकुलावलिका को सुरंग में बन्द कर रखा है और मेरी सर्पमुद्राङ्कित मुहर की अगूंठी देखे बिना उनको मत छोड़ना, ऐसा पहरेदारों को आदेश दिया। विदूषक सर्पदंश का झूठा बहाना बनाकर रानी धारिणी से अगूंठी प्राप्त कर मालविका और बकुलावलिका को मुक्त कराकर प्रमद वन भेज देता है। वहाँ मालविका और राजा का मिलन होता है। इधर पाँच रात्रि के पूर्व ही अशोक में पुष्प आने की सूचना उद्यान पालिका रानी को देती है।

पाँचवे अंक के पहले छोटे प्रवेश में उद्यान–पालिका और धारिणी के सेवक सारसक के भाषण से प्रतीत होता है कि धारणी के पुत्र वसुमित्र की नियुक्ति अश्वमेघ के घोड़े की रक्षा के लिए हुई थी। रानी की भाई वीरसेन ने विदर्भ नृपति पर विजय प्राप्त कर माधवसेन को छुड़ाया है। उसने मूल्यवान रत्न और शिल्प कुशल दासी भेंट में भेजी है। इसके बाद के मुख्य प्रवेश में पुष्पित अशोक देखने के लिए अलंकृत मालविका और परिव्राजिका सहित धारिणी प्रमद वन की तरफ जाती है और राजा को वहाँ बुलाती है। वहाँ माधवसेन की दो संगीत निपुण दासियाँ को मालविका को पहचान लेती हैं। मालविका दासी नहीं राजकन्या है उसके साथ मैंने वृथा बुरी तरह व्यवहार किया है। इसके लिए रानी को पश्चाताप होता है और वह राजा से उसका विवाह करने का निश्चित करती है। आमात्य परिषद् की सम्मति से राजा विदर्भ का राज्य विदर्भसेन और माधवसेन दोनों में बांट देता है। पाटिलपुत्र से सेनापति पुष्यमित्र समाचार भेजता है कि यज्ञ के घोड़े के सिन्धु नदी के दक्षिण तीर पर यवनों ने पकड़ लिया था, परन्तु कुमार वसुमित्र ने उनको हराकर उसे छुड़ाया। इसलिए क्रोध को छोंड़कर सब रानियों के साथ तुम यज्ञ समारम्भ के लिए यहाँ आ जाओ। अपने पुत्र

का पराक्रम सुनकर धारिणी को अत्यन्त आनंद होता है और वह इरावती की सम्मति से मालविका राजा को सौंप देती है। राजा मालविका को स्वीकार करने में लज्जित होता है। अंत में भरत वाक्य से नाटक समाप्त होता है।

विशेषतायें:–हेनरी वेल्स ने मालविकाग्निमित्र की सिफारिस में लिखा है कि 'कालिदास के अन्य दो नाटकों के साथ इसे तुलित कर अन्याय किया गया है। दोनों श्रेष्ठतर कृतियाँ निश्चित ही सहजोम्मिषित कला की उपलब्धियाँ हैं, जबकि प्रस्तुत नाटक निर्देश पर रचित कुशल चातुर्यपूर्ण शिल्प–सृष्टि है। शेक्सपियर के नाटक Mid Summer Night's Dream से इसकी तुलना की जा सकती है।'[1]

नाटक के कथानक का पुष्ट ऐतिहासिक आधार है। मौर्यवंश के अंतिम राजा वृहद्रथ को मारकर उसकी पुरोहित सेनापति पुष्यमित्र शुंग मगध के सिंहासन पर आसीन हुआ और भारतवर्ष में प्रथम ब्राह्मण राजवंश की स्थापना की। अग्निमित्र उसी का पुत्र था जो कुल के मूल स्थान विदिशा में साम्राज्य के दक्षिणी–पश्चिमी प्रान्तों पर शासन करता था। पुष्यमित्र ने अश्वमेघ यज्ञ किया, जिससे अश्व की रक्षा करते हुए उसके पौत्र कुमार वसुमित्र ने यवनों को परास्त कर उन्हें देश से बाहर निकाल दिया।[2] उनका घटना काल ई0पू0 दूसरी शताब्दी ठहरता है। श्री रामास्वामी शास्त्री ने अग्निमित्र के चरित्र की परिशंसना की है। उनका कथन है कि 'अग्निमित्र समग्र, भावेन, शिष्ट एवं संस्कृत है, स्वजनों के चित्तरक्षण की उसे निरन्तर चिन्ता बनी रहती है, जीवन एवं जगत में उपलब्ध सौन्दर्य का वह प्रशंसक है, प्रेम के ही समान युद्ध में भी वह सफल है तथा महान हिन्दू राजाओं के गुणों से संयुक्त है[3]। इस प्रकार कालिदास ने अग्निमित्र को राजनीति एवं राष्ट्रीय जीवन की सुन्दर पीठिका प्रदान की है। 'Dus Kalidas gives his kings a fine setting political and national life' P-236 यह कथन युक्तिसंगत नहीं प्रतीत होता।[4] वाल्टर रूबेन के मतानुसार नाटकान्त में अग्निमित्र Model husband (आदर्श पति) के रूप में उपस्थित किया गया है, क्योंकि जब तक उसकी पत्नी धारिणी मालविका को उसे सौंप नहीं देती, तब तक वह शान्त भाव से प्रतीक्षा करता है। विदूषक का महत्व नाटक में सबसे अधिक है। वस्तुतः वही सम्पूर्ण नाट्यवस्तु का नियोजक एवं नियामक है। कालिदास के नायकों में

1. महाकवि कालिदास पृ–290
2. ई0पू0–185 'अयोध्या के शुंगकालीन शिलालेख
3 के0एस0रामास्वामी–कालिदास, पृ0235–238
4. वाल्टेयररोमन,–कालिदास पृ089

जैसे अग्निमित्र सबसे हीन है। वैसे ही उनके विदूषकों में गौतम सबसे चतुर, छल–कुशल एवं प्रतिभावान है। मालविकाग्नि मित्र प्रमदाओं का नाटक है। इसकी कथावस्तु रमरणियों के अन्तःपुर एवं राजप्रासाद के प्रमद वन की सीमाओं में नियोजित की गयी है तथा ललितांगनाओं के वस्त्रों की सरसराहट, उनके आभूषणों की खनखनाहट, उनकी वेणियों की मादक सुगन्ध उनकी वाणियों की मोहक संगीत से परिपूर्ण है।[1]

विक्रमोर्वशीयम्

विकमोर्वशीयम् रचना कम की दृष्टि से कालिदास की दूसरी नाट्य कृति है। तथा कालात्मक पूर्णता की दृष्टि से यह मालविकाग्निमित्र एवं अभिज्ञान शाकुन्लतम की मध्यवर्ती भूमिका में पडती है। शास्त्रीय शब्दावली में इसे त्रोटक कहा जा सकता है क्योंकि इसमें पांच अंक हैं और इसके नायक–नायिका मानवी एवं दैवी दोनों कोटियों से सम्बन्ध रखते हैं।

पण्डितों को अनुमान है कि यह नाटक चन्द्रगुप्त विकमादित्य के पुत्र कुमार गुप्त के राज्यभिषेक के समय रंगमंच पर अवतरित किया गया होगा क्योंकि इसके अन्त में नायक पुरूरवा के आयु नामक पुत्र के यौवराज्याभिषेक का प्रसंग वर्णित है।[2]

विक्रमोंर्वशीयं में नाटक के चित्र पट का अर्धांश केवल नायक के लिये सुरक्षित है। अतएव इसमें नारी चरित्रांकन के लिय अवकाश सीमित हो गया लेकिन जो कुछ बच गया है, उसे कालिदास ने चमकती सुन्दर आकृतियों एवं रम्यरूचिर आननों से भर दिया है।[3]

इसमें कवि ने राजा पुरूरवा और उर्वशी की प्रणयकथा वर्णित की है। भारतीय साहित्य में इस कहानी की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है। पुरूरवा–उर्वशी संवाद सूक्त ऋग्वेद के दशममण्डल का प्रसिद्ध 95वां सूक्त है। 18मंत्रों में पुरूरवा और उर्वशी की प्रेम कथा वर्णित है। उर्वसी इन्द्र की अप्सरा होने के कारण 'आयु' नामक पुत्र को जन्म देकर पुरूरवा को त्याग कर पुनः वापस चली जाती है। इन्द्र उन दोनों का वियोग करा देता है।

1 श्री अरविन्द–कालिदास पृ0 63 2. कालिदास–प्रो0 मिराशी पृ0 163
3. श्री अरविन्द Kalidas (Second series) पृ0 63

उर्वशी के वियोग में पुरूरवा पागल व्यक्ति के समान इधर–उधर भटकता हुआ, एक दिन सरोवर में सखियों के साथ स्नान करती हुयी उर्वशी को देखता है। वह कहता है उर्वशी तुम मेरे साथ चलो। लेकिन वह कहती है कि तुम मुझे पुनः स्वर्ग में प्राप्त करोगे। पुरूरवा उर्वशी के सामने अनेक याचनाएं करते हैं लेकिन उर्वशी स्वीकार नहीं करती। अन्त में पुरूरवा आत्मघात करने के लिए उद्वत होते हैं तो उर्वशी उन्हें समझाते हुए कहती है–'हे राजन्! तुम आत्महत्या मत करो क्योंकि स्त्रियों और भेड़ियों का हृदय मित्रताहीन होता है'–

पुरूरवो मा गृधा प्रपन्तों मात्वा वृकासो अशिवास उक्षन् ।

न वै स्त्रैणानि सख्यानि सन्ति सालावृकाणां हृदयान्येता।।

सम्पूर्ण तथ्यों को मिलाने पर यह अर्थ निकलता है कि पुरूरवा सूर्य है तथा उर्वशी प्रातः कालीन ऊषा है। सूर्योदय होने पर ऊषा लुप्त हो जाती है।[1]

शतपथ ब्राह्मण में भी उर्वशी और पुरूरवा का परिचय तथा गन्धर्वों के छल के कारण उनके विच्छेद का वर्णन मिलता है। शतपथ ब्राह्मण की कथा थोडे भेद से विष्णु पुराण और भागवत पुराण में भी मिलती है। कथा सरित्सागर में भी उर्वशी व राजा पुरूरवा के वियोग का वर्णन मिलता है। मत्स्य पुराण में उर्वशी पुरूरवा की कथा इस प्रकार वर्णित है कि धर्म, अर्थ और काम एक बार पुरूरवा के सम्मुख उपस्थित हुए और यह बताने का अनुरोध किया कि उनमें कौन सर्वश्रेष्ठ है। धर्म के शीर्षस्थ कहने पर अर्थ और काम ने उन्हें शाप दे दिया। जिससे राजा उर्वशी के विरह में भटकता रह गया। महाकवि कालिदास के विक्रमोर्वशीयं नाटक के प्रथम तीन अंकों का कथानक मत्स्य पुराण से ही लिया गया प्रतीत होता है।[2] इस नाटक के पाँच अंक हैं। विक्रमोर्वशीय की कथा संक्षेपतः इस प्रकार है:–

सूर्य पूजा करके लौटते हुये पुरूरवा को यह ज्ञात होता है कि कुबेर भवन से वापस आती स्वगीर्य अप्सरा उर्वशी को केशी नामक दैत्य ने पकड लिया है। पुरूरवा थोडी देर मे दैत्यग्राह से उर्वशी का उद्धार कर लौटता है और वह उर्वशी के सौन्दर्य से आकर्षित हो उसके प्रेम–पाश में फँस जाता है। उर्वशी का हृदय भी उसके शौर्य

---

1. यू0जी0सी0 नेट/स्लेट संस्कृत (वैदिक साहित्य) लेखक डॉ मुरारी लाल अग्रवाल पृ0 13 वैदिक साहित्य।

2. महाकवि कालिदास–डॉ0 रमाशंकर तिवारी, पृ0 240–242 तक

एवं मधुर भाषण से उसकी ओर आकृष्ट होता है। इस प्रथम दर्शन के बाद उर्वशी इन्द्रपुरी को, पुरूरवा अपनी राजधानी को लौट आते हैं। लेकिन दोनों के मनों में एक दूसरे के प्रति जो आसक्ति उत्पन्न हो गयी है वह सान्द्र बनती जा रही है। राजकीय प्रमद वन में दोनों की पुनः भेंट होती है। उर्वशी भोज पत्र पर प्रेमलेख लिखकर प्रमद वन में डाल देती है और लक्ष्मी स्वयंवर नामक नाटक में लक्ष्मी का अभिनय करने के लिये इन्द्रपुरी लौट जाती है। पुरूरवा की पत्नी रानी औशीनरी को वह पत्र उसी प्रमद वन में हाँथ लग जाता है और वह रुष्ट होकर दासी के साथ वापस चली जाती है। उक्त नाटक में लक्ष्मी का अभिनय करने वाली उर्वशी के मुख से पुरूषोत्तम की जगह पुरूरवा नाम भूल से निकल पड़ता है और भरत मुनि उसे स्वर्गच्युत होने का शाप देते हैं। तब नम्र शिरस्का उर्वशी को इन्द्र यह आदेश देते हैं कि जब तक पुरूरवा तेरे पुत्र का मुँह न देखे तब तक तू उसके साथ मर्त्य लोक में रह। इस प्रकार उर्वशी–पुरूरवा समागम सम्पन्न होता है। इसी बीच रानी औशीनरी भी पुरूरवा को अपनी सहानुभूति का त्यागमूलक दान देती है। कुछ काल उपरान्त पुरूरवा उर्वशी के साथ बिहार करने के लिये गन्धमादन पर्वत पर जाते हैं वहां राजा के शील स्खलन के अनुमान से रूष्ट होकर उर्वशी प्रमाद से कार्तिक स्वामी के बन में प्रवेश कर लता हो जाती है। यही से राजा का वियोग की आँच में तपना प्रारम्भ होता है। कवि ने पुरूरवा के उन्माद का विशद चित्रण किया है। संगमनीय मणि के स्पर्श से वह लता पुनः उर्वशी बन जाती है और तब दोनों राजधानी को लौट जाते हैं। उसी संगमनीय मणि के आश्रय से राजकुमार आयु का पता चलता है जिसे उर्वशी ने महर्षि च्यवन के आश्रम में पलने को रख छोंडा था। अन्त में पुत्र गोपन का रहस्य खुलता है और नारद के आगमन से उर्वशी तथा पुरूरवा जीवन भर के लिये पति–पत्नी रूप में बंध जाते हैं।

महाभारत कें चन्द्रवंशी राजकुल का प्रथम नरेश पुरूरवा कहा गया है। चन्द्रमा का पुत्र बुध पुरूरवा का पिता है और ब्रह्मा द्वारा उत्पन्न (मनु की विचित्र पुत्री) इला उसकी माता है।

महर्षि अरविन्द ने पुरूरवा–उर्वशी कथा को सुन्दर रूपक (Allegory) बताया है। उर्वशी नारायण के जंघे से उत्पन्न अप्सरा है जो विश्व के सकल काल्पानिक सौन्दर्य की सारतत्त्व है। वह अप्राप्य आदर्श है जिसके लिये सभी कालों तथा सभी देशों मे

मनुष्य की आत्मा तड़पती आई है। पुरूरवा धीरोदात्त नायक है। वह शूर, शीलवान, एवं दाक्षिण्य सम्पन्न है।

अभिज्ञान–शाकुन्तलम्

कालिदास की काव्य–सरस्वती का सर्वोत्कृष्ट प्रसाद 'अभिज्ञान–शाकुन्तल' है।[1] इसका चित्रपट अत्यन्त व्यापक तथा समृद्ध है। एक नव–प्रस्फुटित यौवना प्रकृति किशोरी है तो आश्रमस्थ लता विरूधों की सेवा–परिचर्या करती है। यह कथानक का आरम्भ बिन्दु है। वह किशोरी अन्ततः राजमहिषी बन जाती है यह कथानक का पर्यवसान बिन्दु है। किन्तु इन दोनों बिन्दुओं को मिलाने वाली रेखा अत्यन्त कुटिल हो गयी है और इस कौटिल्य की आड़ में कवि को अपनी प्रबुद्ध संवित् के समग्र स्वरूपों की विवृत्ति का मनोरम संयोग प्राप्त हुआ है। सौन्दर्य की पवित्रता एवं मादकता प्रेम की निश्छलता एवं विवशता, प्रकृतिजन्य सरलता एवं मुग्धता, ऋषिकुल की उदारता एवं दयालुता, महर्षि कण्व का आदर्श वात्सल्य, दुर्वासा का निर्मम दण्ड, वासना की मांसलता का प्रक्षालन तथा आत्मा का सुशांत निर्मलीकरण, रोमांश के आसव एवं संस्कृति के पीयूष का मंगलमय सम्मिलन, प्रेयस् एवं निःश्रेयस् का मनोग्राही ग्रन्थि–बंधन इन सभी उपादानों को एक साथ मिश्रित कर कालिदास ने शाकुन्तलम् में जो 'प्रपाणक' रस तैयार किया है, वह जीवन के लिए निश्चित ही नितान्त मूल्यवान है। नाटक के प्रथम चार अङ्कों को भोग–भूमि, बीच के दो अङ्कों को दण्ड–भूमि और अन्तिम अङ्क को सिद्ध–भूमि कहा गया है। भोग–भूमि का उद्घाटन दुष्यन्त के मृगया–प्रेम की व्यंजना से होता है। शरीर को सिकोड़कर, रथ में एकटक दृष्टि लगाये हुए, ग्रीवाभंगाभिराम, उस व्याकुल हरिण के जी तोड़ भागने से ज्यों ही हम प्रभावित होते हैं, त्यों ही वैखानस की यह गंभीर चेतावनी सुनायी देती है–

''क्व बत हरिणकानां जीवितञ्चातिलोलम्

क्व च निशितनिपाता वज्रसाराः शरास्ते ।। 1/10।।

संस्कृत साहित्य में जितने भी नाटक हैं, उनमें अभिज्ञान शाकुंतलम् सर्वश्रेष्ठ है। न केवल भारतीय विद्वानों की दृष्टि में अपितु पाश्चात्य दृष्टि से भी शाकुंतलम से उत्तम विश्व का कोई भी नाटक नहीं है। यद्यपि कालिदास विरचित 'विक्रमोर्वशीयम् एवं

1. कालिदास सर्वस्वमभिज्ञान शाकुन्तलम् । तत्रापि च चतुर्थोऽङ्को यत्रयाति शकुन्तला।।

मालविकाग्निमित्रम् ये दो नाटक और भी हैं। तथापि अभिज्ञान शाकुंतलम उनकी अद्वितीय सर्वातिशायिनी रचना है। इसलिए विद्वानों ने कहा है–

''काव्येषुनाटकं रम्यं तत्र रम्या शकुन्तला।''

कथासार

इसमें दुष्यन्त और शकुन्तला की प्रणय गाथा अंकित है। सात अंको का यह नाटक महाभारत के आदि पर्व पर आधारित है। दुष्यन्त शिकार खेलते–खेलते मृग का पीछा करते हुए कण्व ऋषि के आश्रम में पहुंच जाते हैं। वहां ऋषि कन्या शकुन्तला के अतिरिक्त और कोई न था। शकुन्तला ने राजा दुष्यन्त का आतिथ्य किया। उसके मनोहर रूप को देखकर राजा का अनुराग उत्पन्न होता है। शकुन्तला भी आभिजात्य और पौरुष की प्रत्यक्ष प्रतिमा दुष्यन्त के प्रति आकर्षित होती है। क्षत्रिय कन्या जानकर दुष्यन्त ने गान्धर्व विवाह–विधि से उसका पाणिग्रहण किया। उसके बाद राजा को आवश्यक कार्य से अपने नगर को लौटना पड़ता है। जाते समय वह अपनी नामांकित अगूंठी शकुन्तला को यह कह कर देते हैं कि जितने अक्षर इस नाम के हैं, उतने ही दिनों में मैं तुम्हें हस्तिनापुर बुला लूंगा। परन्तु दुर्वासा मुनि के शाप के कारण राजा ने शकुन्तला को लिवा लाने के लिए किसी को नहीं भेजा। इधर कण्व ऋषि ने कन्या की कृति पर कुपित न हो उल्टे उसके योग्य वर के साथ परिणति हो जाने पर अपना आनन्द प्रकट किया और अपने शिष्यों के साथ शकुन्तला को दुष्यन्त के नगर भेज दिया। शकुन्तला पर राजा का प्रेम किञ्चिन्मात्र भी कम नही था। लेकिन दुर्वासा के शाप के कारण दुष्यन्त पहचान नहीं पाते हैं और शकुन्तला को अंगीकृत करने में हिचकिचाते हैं। अन्त में शकुन्तला को छोंड़कर उसके साथ आये आश्रमवासी चले जाते है। इसके बाद राजा पुरोहित के परामर्श से बच्चा पैदा होने तक शकुन्तला को पुरोहित के घर रखने का तैयार हो जाता है। इसके बाद पुरोहित जब शकुन्तला को लेकर जा रहा होता है, उसी समय स्त्री के आकार की एक दिव्य ज्योति आकाश से आकर शकुन्तला को उड़ा ले जाती है। पुरोहित से इस घटना को सुनकर राजा को आश्चर्य होता है। उधर शकुन्तला हेमकूट पर्वत पर महर्षि मारीचि के आश्रम में अपनी माता मेनका के साथ वियोग के दिन काटती है। इधर एक मछुए को राजा की वह

नामांकित अंगूठी एक मछली के पेट में मिलती है, ज्यों ही राजा उस अगूंठी को देखते हैं, उन्हें शकुन्तला के साथ अपने प्रणय का स्मरण हो आता है और वे शकुन्तला से मिलने के लिए व्याकुल हो उठते हैं। एक दिन वह अपने संताप को दूर करने के लिए विदूषक के साथ प्रमद वन में जाते हैं। वहाँ शकुन्तला के चित्र को देखकर वियोग की अग्नि में जलने लगते हैं। अन्त में इन्द्र की सहायता करके स्वर्ग से लौटते समय उनका अपने पुत्र सर्वदमन और शकुन्तला से पुनर्मिलन होता है। वहाँ से हस्तिनापुर लौटकर दुष्यन्त शकुन्तला के साथ सुखमय जीवन व्यतीत करते हैं।[1]

विशेषतायें:– नाटक के आरंभ में मृगया दृश्य की योजना हुई है, जिसमें दुष्यन्त रथ पर आरूढ़ दिखायी पड़ते हैं। इस दृश्य में कवित्वमयता एवं वर्णनात्मकता अधिक है, नाटकीयता कम। द्वितीय अंक प्रथम अंक का ही परिणाम है, जिसमें हमें प्रणय दग्ध राजा के मुख से प्रथम अङ्क की शकुन्तला की शारीरिक और मानसिक अवस्था का आभास मिलता है। इस अंक में नाटक का द्वंद्व मुख्यतः आन्तरिक है। यों तो दुष्यन्त के हृदय में ही पहले यह उथल–पुथल मचती है कि शकुन्तला उपभोग के योग्य है या नहीं लेकिन वास्तविक अन्तर्द्वन्द शकुन्तला के भीतर घटित होता है। जब नवोत्थित प्रणयावेग उसे एक ओर खींचता है और उसका मुग्ध स्वभाव तपोवनोचित संस्कार तथा कन्योचित लज्जा दूसरी ओर खींचते हैं। चौथे अंक की विष्कम्भक कथानक में मौलिक परिवर्तन का प्रातः काल का वर्णन 'सूर्य–चन्द्रमा' के एक साथ उदय अस्त द्वारा मानों संसारियों का भाग्यचक्र नियन्त्रित हो रहा है।

यह सूचित करता है कि जीवन अथवा प्रणय निरा आनन्दमय ही नहीं है। दुर्वासा के शाप जैसी महत्वपूर्ण घटना को विष्कम्भक में उल्लिखित कर अपूर्ण नाट्य कौशल का परिचय दिया गया है। शकुन्तला के प्रयाण के दृश्य में मानो मानव हृदय ही शतधा–सहस्रधा, मुखारित हो उठा है। करुणा की यह भावना पाँचवें अंक के हंस–पादिका के गीत से तीव्रतर हो जाती है। इस अङ्क में नाट्य का कथानक शकुन्तला के प्रत्याख्यान से अपनी चरम सीमा पर पहुँच जाता है। चौथा अङ्क जितना ही कवित्वमय है, पाँचवां अङ्क उतना ही नाटकीय है। दुर्वासा का शाप कार्यरूप में परिणत हो चुका है। पर शकुन्तला के न पहचाने जाने की दशा में अपनी

1. नाट्य एवं नाट्य–शास्त्र, –डॉ० मुरारीलाल अग्रवाल, 410–11

अंगूठी पर ही सारी आशाएँ लगा रखी है। फिर हम देखते हैं कि इस अंक में एक प्रेमी पति पूर्णतया अपरिचित बन जाता है और उसकी गर्भवती पत्नी उससे शरण और आश्रय की याचना करती है। एक ओर बेचारी शकुन्तला का अपने प्रेमी की स्मृति जागृत करने का करूण प्रयास और दूसरी ओर राजा का राजोचित गर्व और निर्मम व्यवहार है। शारद्वत राजा के प्रति शकुन्तला की ओर से जो उत्तेजनात्मक शब्द कहता है उससे शकुन्तला की निःसहाय स्थिति का आभास और भी तीव्र हो जाता है। अन्त में शकुन्तला को एक दिव्य ज्योति उठा ले जाती है। छठे अङ्क के प्रवेशक मे कवि ने पुलिस अधिकारियों और धीवर के बीच वार्तालाप द्वारा लोक जीवन का उत्पन्न वास्तविक और स्वाभाविक चित्रण किया है। छठा अङ्क पाँचवें अङ्क का ही परिणाम है जो प्रत्याभिज्ञान अगूँठी की उपलब्धि से आरंभ होता है। उसमें दुष्यंत के अपनी प्रियतमा के प्रत्याख्यान जनित मानसिक परिताप का प्रगाढ़ अंकन है। समुद्र वाणिक की मृत्यु की घटना से रजा का आग्रह अपनी प्रियतमा की ओर से हटकर अपने पुत्र के प्रति हो जाता है और यह भी दर्शनीय है कि पुत्र के अभाव ज्ञान से ही प्रियतम का प्रत्यार्थ ज्ञान होता है। अन्तिम अङ्क का घटना चक्र पृथ्वी के उपरिवर्ती लोकों में है। मारीच आश्रम की अलौकिक पवित्रता और सुन्दरता के बीच चरम नाटकीय व्यवस्था का शनैः–शनैः उद्घाटन होता है। राजा का अपने पुत्र और पत्नी से मिलन होता है। ऋषि और पत्नी राजा और कुटुम्ब पर आशीर्वाद की वृष्टि करते हैं। ऐसे पावन व शान्त वातावरण में नाटक समाप्त होता है।[1]

बंगाल सुप्रीम कोर्ट के न्यायाधीश सर विलियम जोन्स ने सन् 1789 में सर्वप्रथम अभिज्ञान शाकुन्तलम का गद्यानुवाद 'अंग्रेजी' में प्रकाशित किया। 1791ई0 में फार्स्टर ने जोन्स–कृत अनुवाद को जर्मन में अनुदित किया और उसकी एक प्रति सुविख्यात कवि एवं विचारक 'गेटे' को भेज दी, जिसे पढ़कर वह आनन्द–विभोर हो गया और शाकुन्तल की प्रशंसा में ये उद्गार व्यक्त किये थे–

"Wouldst thou the young year's
blossoms and the fruits of its decline,
And all by which the soul is charmed.
enraptured, fed ?

1.स0सा0की रूपरेखा–चन्द्रशेखर शास्त्री पृ0 117–118

wouldst thou the earth and heaven

itself in one sole name combline

I name thee, O sakuntala, and

all at onee is said,"

बसन्त ऋतु के समस्त पुष्प और फल तथा ग्रीष्म काल के भी तमाम फल–पुष्प और जो कुछ भी मन को रसायन की तरह संतृप्त और मोहित करने वाला है तथा स्वर्ग लोक और भू–लोक दोनों के अभूत पूर्व एकत्रित ऐश्वर्य को हे प्रियमित्र! यदि तुम देखना चाहते हो तो शाकुन्तल का सेवन करो।[1] 'शाकुन्तल की तुलना प्रायः शेक्सपियर के सुखान्त नाटक 'टेम्पेस्ट' से की जाती है और इस विषय में श्री रवीन्द्र नाथ ठाकुर का कथन दृष्टव्य है :–

शकुन्तला की तुलना उसकी नायिका 'मिराण्डा' से की गई है। दोनो नाटक महान रचनाएँ हैं लेकिन दोनों की कल्पना में मौलिक अन्तर है।'[2]

"टेम्पेस्ट' में भी शक्ति है और शाकुन्तल में भी है। टेम्पेस्ट में बल के द्वारा विजय है और शाकुन्तल में मंगल द्वारा सिद्धि। टेम्पेस्ट की समाप्ति असम्पूर्णता में है ओर शाकुन्तल की समाप्ति सम्पूर्णता है।

टेम्पेस्ट में मिरांडा सरलता और मधुरता की मूर्ति है पर उस सरलता की प्रतिष्ठा अज्ञता और अनभिज्ञता के ऊपर है। शकुन्तला की सरतला अपराध में दुःख में अभिज्ञता में, धैर्य में ओर क्षमा में परिपक्व है, गंभीर है और स्थायी है।[3]

अतः 'शाकुन्तला' के साथ प्रतिस्पर्धा करने वाला कोई नाटक शेक्सपियर का नहीं है। शाकुन्तल का शिल्प सौन्दर्य अनिन्द्य समझा गया है। इसकी विश्व व्यापी प्रसिद्धि का मूल रहस्य उसका जीवन दर्शन[4] एवं मंगल कामना है।

---

1. महाकवि कालिदास पृ0 107 में उद्धृत एवं कालिदस मिराशी पृ0 127 में उद्धृत एवं सं0सा0 का इतिहास पृ0–106 में गेटे महोदय के कथन का श्री बल्देव उपाध्याय द्वारा अनुदित संस्कृत अनुवाद दृष्टव्य है–

'वासन्तं कुसुमं फलञ्च युगपद् ग्रीष्मस्य सर्वं चयत्,। यच्चान्यन्मनसो रसायनमतः सन्तर्पणं मोहनम्।।

एकीभूतमभूत पूर्वमथवा स्वर्लोक भूलोकयो । रैश्वर्यं यदि वाञ्छसि प्रियसखे! शाकुन्तलम सेव्यताम्।।

2. दृष्टव्य, महाकवि कालिदास–डॉ0 रमाशंकर पृ0 233–235
3. प्राचीन साहित्य–रवीन्द्रनाथ ठाकुर, पृ0 40–64
4. शाकुन्तल चतुर्थ अंक– श्लोक 2, 3, 6, 9, 14, 17, 18, 22 दृष्टव्य

यथा भरत वाक्य दृष्टव्य है–

प्रवर्ततां प्रकृति हिताय पार्थिव

सरस्वती श्रुतमहतां महीयताम्।

ममापि च क्षमयतु नीललोहितः

पुनर्भवं परिगत शक्तिरात्मभूः ।। 7/35 ।।

(राजा प्रजाओं के कल्याण के लिए प्रवृत्त होवें, शास्त्रों के श्रवण करने से गोरवान्वित पुरुषों की वाणी पूजा को प्राप्त करे और सर्व व्यापक शान्ति वाले स्वयं भू शिव मेरे भी पुनर्जन्म को नष्ट कर दें।)

अध्याय

३

महाकविकालिदास की रचनाओं में प्राप्त पार्थिव वनस्पतियाँ

अध्याय–3

''महाकवि कालिदास की रचनाओं में प्राप्त पार्थिव वनस्पतियाँ''

कवि कुलगुरू ने अपनी सभी रचनाओं में लगभग 98 वनस्पतियों का नामोल्लेख विविध प्रसङ्गों में किया है। उत्पत्ति की दृष्टि से इन्हें चार वर्गों में बाँटा जा सकता है– पार्थिव, जलीय, मिश्रित, मरुस्थलीय।

51 पार्थिव वनस्पतियों का प्रयोग कवि ने किया है। विस्तार भय से इनका संक्षिप्त वर्णन वर्णक्रमानुसार निम्नवत् हैः–

1. अशोक (SARACA-INDICA)

कुल– शिम्बी कुल (LEGU MINOSAE)

उपकुल– कण्टकी करञ्ज

गण– कषायस्कन्ध, वेदना स्थापन (चरक), लोघ्रादि (सु0)

पर्याय[1]– शोकनाश, विचित्र, कर्णपूरक, विशोक, रक्तक, रागी, चित्र, रक्ताशोक और षड्पदमंजरी।

अन्य भाषाओं में नामः[2]–

बं0,म0– अशोक, गाछ, आसापाली

गु0– आशुपालो, देशीपीलफुलनो,

अं0– **THE ASHOKA TREE**

ले0– सैरेका इण्डिका

त0– अशोधम ,

ते0– अशोकमु

प्रसङ्गोल्लेखः– कवि की रचनाओं में अशोक का बहुशः वर्णन मिलता हैः–

1. अज विलाप करते हुए कहते हैं कि हे इन्दुमती जिस अशोक को तुमने अपने चरणों की ठोकर लगाई थी वह जब आगे चलकर फूलेगा तब तुम्हारे केशों को सजाने वाले उसके फूलों को मैं जलदान की अंजलि में कैसे ले सकूँगा[3]।

---

1. **अशोकःशोकनाशश्चविचित्रःकर्णपूरकः।विशोकोरक्तकोरागीचित्रःषटपट्मञ्जरी।** ध0नि0–5/146आम्रादिवर्ग पृ0 241
2. शा0नि0 पृ0 383, वनौ0विशे0–1 पृ0 223
3. रघु0 8/62

इसी प्रकार राम स्तन की तरह वाली अशोक लता को गले लगाने बढते हैं लेकिन लक्ष्मण जी रोकते हैं।[1]

2. वियोगावस्था में यक्ष उत्तर मेघ में अपने घर का वर्णन करता है कि मेरे घर में रक्ताशोक वृक्ष है जो यक्षिणी के वामपाद का अभिलाषी है[2]।
3. कुमार संभवम् में कामदेव के प्रभाव से अशोक वृक्ष तुरन्त ही फूल गया। पत्तों से पार्वती जी ने श्रृङ्गार किया।[3]
4. प्रमद वन की शोभा का वर्णन करते हुए राजा पुरुरवा कहते हैं कि 'रक्ताशोक खिलने ही' वाला प्रतीत होता है। पुनः वह उस अशोक वृक्ष से प्रिया का पता पूँछता है।[4]
5. राजा अग्निमित्र ने रक्ताशोक की लालिमा को स्त्रियों के विम्बाधरों की तरह माना है।[5]
6. अशोक के पुष्पों को देखकर नवयुवतियों को शोक होने लगता है।[6]

इस प्रकार स्पष्ट है कि कवि ने इसका उल्लेख वियोगावस्था प्रदर्शन हेतु या उपमान और प्राकृतिक सौन्दर्य प्रकट करने हेतु किया है। यह आम्रादि वर्ग की वनस्पति है।

गुण[7]:– आयुर्वेदानुसार यह रस में कटु, कषाय, वीर्य मे शीत, ग्राही, रक्त संग्राहक, वर्ण–उज्ज्वालक, अस्थि संयोजक, प्रिय, सर्वप्रदर ज्वर[8] सन्धिवातज पीडानाशक है[9]।

स्त्रियों के स्वप्नदोष पर जैसा कि भाव प्रकाश में कहा गया है:–

''ऋतुस्नाता तु या नारी स्वप्ने मैथुनाचरेत्। आर्तवं वायुरादाय कुक्षैगर्भकरोतिहि''।

अर्थात् ऋतुस्नान बाद जिस स्त्री को स्वप्न दोष हो उसके आर्तव को वायु कुक्षि में ले जाकर मिथ्या गर्भधारण कर देती है। अतः इस पर अशोक छाल दो तोले जौकुट कर एक पाव पानी में पकावें। पाँच तोले शेष रहने पर छानकर ठंडा हो जाने पर उसमें छैः माशे शद मिलाकर पिलावें। अशोकारिष्ट, अशोक–घृत भी इसमें हितकर है।[10]

---

1. रघु 13/32
2. उ0मे0–18
3. कु0–3/26, 3/53
4. वि0उ0–2/7, 4/61
5. माल0 अंक–3, प्रवेशक में 3/5
6. ऋतु0–6/18
7. च0चि0अ0 एवं ध0नि0–5/147 पृ0 241
8. अशोकस्यत्वचारक्त प्रदरस्य विनाशिनी। शा0नि0 पृ0–384,
9. वनौ0विशे0–1 पृ0 229
10. वनौ0विशे0–1 पृ0 228

2. अखरोट (JUGLHOS REGIA)

पर्याय[1]:— **'अक्षोड: पर्वतीयश्च फलस्नेहो गुडाशय:।**

कीरेष्टः कर्परालश्च स्वादुमज्जा पृथुच्छदः।।

पर्वतीय, फलस्नेह, गुडाशय, कीरेष्ट, कर्पराल, स्वादु—मज्जा और पृथुच्छद।

प्रचलित नाम[2]—

हि0— अखरोट, **अ0**—WAINUT **ले0**—जुगलांस रेजिया।

प्रसङ्गोल्लेख:—रघु के दिग्विजय प्रसंग में कंबोज व काबुल में अखरोट वृक्षों में हांथियों को बांधने से उसकी डालें झुक गयीं इस प्रकार का वर्णन है।[3]

गुण:— यह आम्रादि वर्ग का वृक्ष है। आयुर्वेदानुसार यह मधुर स्निग्ध उष्ण, रूचिदायक, शीतलभारी, वीर्यवर्धक, विरेचक, वात पित्त नाशक तथा क्षय, हृद्रोग रूधिर दोष रक्तवात और दाहकारक है[4]।

औषधीय प्रयोग[5] :— 'प्रयोज्य अड्ग—मज्जा

विबन्ध क्षय, हृद्र दौर्वल्य एवं वात विकार में उपयोगी है।

3—अगरू (AQUILARAIA AGALLOCHA ROXB)

कुल— अगरूकुल, थाइमेलियेसी (**THYMELAEACEAE**)

पर्याय[6]:—कृष्णागुरू, प्रवर कृमिज, लौह

प्रचलित नाम[7]:—

(हि0, म0, गु0, भा0 बाजार)—अगर। **ले0**— एक्वीलेरिया एजोलोवन।

अं0— एलोवुड (ALOE WOOD), ईगल वुड (EAGLE WOOD)

सं0—अगरू, कृमिजग्ध, वश्व,रूपक, **बं0**—अगरु,

ता0—आगलिचन्द्र, **ते0**—अगुई, **अ0**—ऊद

---

1. ध0नि0—5/53, पृ0—213
2. शा0नि0, पृ0—456 एवं वनौ0विशे0—1, पृ0—32
3. रघु0—4/69
4. ध0नि0—5/54, पृ0—214— **अक्षोडक:स्वादुरसोमधुर:पुष्टिकारक:। पित्तश्लेष्मकराबल्य:स्निग्धोष्णोगुरुबृंहण:**
5. च0चि0अ0 एवं रा0नि0 दृष्टव्य है।
6. धन0नि0— 3/24, पृ0—128
7. शा0नि0पृ0—117

प्रसङ्गोल्लेखः–

1. हाथियों के बांधने से जैसे कालागुरू के पेड़ काँपनते थे वेसे ही प्राग्ज्जोतिष के राजा भी रघु के भयसे काँपने लगे[1]। इन्दुमती स्वयंबर समय अगर के सार से बनाई हुई धूप–बत्तियों का धुआँ चारो ओर उड़कर फैला हुआ ऊपर फहराती हुई झांडियों तक जा चढ़ा था[2]। इन्दुमती का दाह संस्कार अगर और चन्दन की लकड़ियों से किया गया[3]। भवनों के ऊपर वायु से छितराया हुआ काले अगर का धुआँ ऐसा लगता था मानों वन से लौटकर राम ने अयोध्यापुरी का जूड़ा ही खोल दिया हो[4]।
2. विवाह के समय पार्वती जी के बाल अगर के धुएं से सुखाये गये तथा अगर से बने अंगराग को शरीर पर मला गया[5]।
3. हेमन्त ऋतु में रति क्रीड़ा हेतु स्त्रियाँ पूर्व में कालागुरू की धूप देकर अपने केश सुगन्धित करती हैं[6]।

इस प्रकार कवि ने अगरू का प्रयोग शृङ्गार प्रसाधन रूप में किया है।

गुणधर्मः–आयुर्वेदानुसार अगरु गरम चरपरी त्वचा को हितकारी कड़वी, तीक्ष्ण, पित्त जनक स्निग्ध मंगलदायक क्रांतिवर्धक और कास कफ, कुष्ठ, खुजली, वातरोग, कर्णरोग, तृषा, मृगीउन्माद आदि नाशक है[7]।

सुश्रुत ने वृण धूपन द्रव्यों के मध्य अगर का पाठ दिया है[8]। इससे छोटे कृमि जू आदि नष्ट हो जाते हैं। यह चन्दनादि वर्ग की प्रमुख वनस्पति है।

4–अपराजिता (CLITORIA TERNATIA)

पर्यायवाची[9]:– गौकर्णी, विष्णुकान्ता (श्वेत पुष्प युक्त) कृष्णकान्ता(नीले फल वाली)

प्रचलित नामः–

सं0– अपराजिता, गिरिकर्णिका **हि0**– कोयल, अपराजिता

अं0– मेग्रिन (MEGRIN) **ले0**–क्लिटोरियाटरनेशिया(CLITORIA TERNATIA)

प्रसङ्गोल्लेखः– महर्षि कश्यप सर्वदमन के उपराजिता औषधि बाँह पर बाँध देते है, जिसे माता–पिता के अलावा कोई भी नहीं बाँध सकता है। उसे छूटकर गिरने से

---

1. रघु0–4/81 2. रघु0–6/8 3. रघु0–8/71 4. रघु0–14/12 5. कु0–7/14,–15
6. ऋतु0–4/5 7. शा0नि0–18, वनौ0विशे0–1, पृ0–37–39 8. सु0सं0अ0–6,8 9. शा0नि0पृ0–248

राजा दुष्यन्त उठा लेते हैं और बाँध देते हैं[1]।

गुणधर्म[2]:– श्वेत व नीली दोनों अपराजिता गुण धर्म में समान ही है। शीत वीर्य प्रधान स्निग्ध तिक्त कषाय रसवाली होती है। नीली की अपेक्षा श्वेत अधिक गुणकारी और प्रभावी है।

मुख्य प्रयोग[3]:– सुजाक, पूयमेह, पथरी, गण्डमाला, पीड़ाशूल आदि पर विच्छू के विष, नेत्र विकार, आमाशय एवं पित्ताशय विकारों पर प्रयुक्त होती है। पर हिक्का, बन्ध्यरोग, नेत्र विकार इसकी बेल को स्त्री के कमर में लपेट देने से शीघ्र ही प्रसव होकर पीड़ा शान्त हो जाती है।

5–अक्ष सूत्र (ILYOCARPUS PENYTRUS)

कुल– रुद्राक्ष

पर्यायवाची[4]:– रूद्राक्ष की माला, शिवाक्ष, पावन, हराक्ष, शिवप्रिय, भूतनाशन्।

प्रचलित नाम– **हि0**–रुद्राक्ष, **आ0**–रुद्रई

प्रसङ्गोल्लेख–भगवान शिव की साँपों से जटा बंधी थी दाहिने कान पर दोहरी रूद्राक्ष की माला टंगी थी। मृगछाला भी गांठ बाँधकर कसी थीं[5]। पार्वती जी अपने हाथों में रूद्राक्ष की माला लेकर तपस्या करने लगी।

रूद्राक्ष शब्द की शास्त्रीय विवेचना से यह स्पष्ट हो जाता है कि इसकी उत्पत्ति महादेव जी के अश्रुओं से हुई है–

रूद्रस्य अक्षि रूद्राक्षः, अक्ष्युपताक्षितम् अश्रु, तज्जन्यः वृक्षः।

रूद्राक्ष दो जाति के होते हैं– रूद्राक्ष एवं भद्राक्ष। रूद्राक्ष के मध्य भद्राक्ष धारण करना महान फलदायक होता है[6]– **रूद्राक्षाणां तु भद्राक्षः स्यान्महाफलम्** ।

गुण[7]– स्निग्ध, गुरु, रस–मधुर, वीर्य–शीत, विपाक–मधुर, रूद्राक्ष अल्प रस युक्त तथा शीत वीर्य है वात रोग तथा पित्त रोग नाशक है। शिरः शूल शान्त करने वाला, लेप, दाह प्रशामक है। यह रक्त भार में (HYPERTENSION) के लिए उत्तम औषधि है। यह ज्वरघ्न है।

1. अ0शा0अंक–7, गद्यभाग
2. शा0नि0पृ–249
3. वनौ0विशे0–1, पृ0–137
4. रा0नि0आम्रादिवर्ग–186, पृ0–378, शा0नि0पृ0–531
5. रघु0–3/46, 5/11
6. दैनिक जागरण–8 अगस्त 2006 कानपुर सं0
7. द्र0गु0वि0अ0–3, पृ0–219

6. आम्र (MANGIFERA INDICA)

पर्यायवाची[1]:– लगभग सभी निघण्टुओं में इसके अनेकों नाम दिए हैं, धन्वन्तरि निघण्टु में इसके नाम निम्नवत् हैं:–

'आम्रश्चूतो रसालश्च कीरेष्टः मदिरासखः।

कामाङ्ग सहकारश्च परपुष्टो मदोद्भवः।।[2]

आम्र, चूत, रसाल, कीरेष्ट, मदिरासख, कामांग, सहकार, परपुष्ट और मदोद्भव।

अन्य भाषाओं में नाम[3]:–

हि0/बं0– आम, **गु0**– आंबो, **अ0**–अम्बज,

ते0– माविडि, **अं0** – MANGO TREE

प्रसङ्गोल्लेख[4]–उपमान रूप मे तथा आलंकारिक रूप में वर्णन कवि ने किया है–

1. नये बौरे हुए आम के वृक्षों की डालियाँ मलय के वायु से ऐसी झूम उठी मानो उन्होंने अभिनय कला सीखनी प्रारम्भ कर दी हो। उन्हें देख–देख कर तो राग, द्वेष को जीतने वाले योगियों तक का मन भी मचल पड़ा।[5] मलय पर्वत से आए हुए दक्षिण पवन से आमों में बौर छाए देखकर प्रेमिकायें कामोन्मत्त होकर राजा से रूठना छोड़ देतीं और उनके विरह में व्याकुल होकर स्वयं उन्हें ढूढ़ने लगती।[6]
2. जैसे भौरों की पक्तियाँ बसन्त के ढेरों फूल छोड़कर आम की मंजरियों पर ही जा मंडराती हैं वैसे ही अनेक सन्तानों के होते हुए भी हिमवान की आँखें पार्वती पर ही अटकी रहती थीं।[7] इन्द्र के स्मरण करते ही कामदेव 'आम के बौर' वाले बाण को मित्र बसन्त को देते हुए उपस्थित हुए।[8]
3. बसन्त ऋतु में आम्र मंजरियों की गन्ध युक्त पवन का वर्णन है।[9]
4. शकुन्तला कहती है वनज्योत्स्ना खिले हुए फूल लेकर नवयौवना हुई खड़ी है उधर फल से लदी हुई शाखाओं वाला आम का वृक्ष भी उभार पर आया हुआ है।[10]

---

1. शा0नि0पृ0–408 एवं रा0नि0पृ0–341 2.ध0नि0–5/1 3. शा0नि0पृ0–408 से 4. रा0नि0पृ0–340
5. ध0नि0–5/2–5 6. शा0नि0पृ0–409–414 7. वनौ0विशे0–1पृ0–273–92
8. कु0–2/64 9 माल0–3/4 10. अभि0शा0अंक–1, गद्यभाग

5. वनज्योत्स्ना को भी आम का ठीक सहारा मिल गया है ठीक उसी प्रकार अब मैं तुम दोनों से चिन्ता मुक्त हो गया हूँ।[1] आम्र मंजरी, फल का उल्लेख अन्य जगह भी मिलता है।[2]

गुणधर्मः– कच्ची कैरी, गुठली रहित, कसैली, खट्टी सुगन्धित गरम रूचिकारक, प्रमेह, अतिसार, वृण और योनि दोष नासक है। इसी कारण इसे फलाधिराज कहा गया हैः–

'सन्तर्पणो यः सकलेन्द्रियाणां बलप्रदोवृष्यतमश्च हृद्यः।

स्त्रीषु प्रहर्ष प्रचुरं ददाति फलाधिराजः सहकार एव।।[3]

आम पाँच प्रकार का होता है– "आम्राः, पंचविधाः, प्रोक्ता"।[4]

आयुर्वेदानुसार इसके गुण इस प्रकार हैं–

बालं कषायं कट्वम्लं रूक्षं वातास्रपित्त कृत् ।

सम्पूर्ण माममल्लं च रक्त पित्त कफ प्रदम् ।।

आम के कच्चे छोटे फल रस में कषाय, कटु, अम्ल गुण में रूक्ष, वातनाशक, रक्तपित्त दूर करने वाले होते हैं। बड़े कच्चे फल अम्ल रक्त पित्त व कफ कारक एवं कम पके फल हृदय के लिए लाभप्रद, कान्ति, रूचि, रक्त, मांस, बलवर्धक है। पूर्ण पके फल पित्तावरोधक, शुक्रवर्धक, रस में मधुर, अजीर्ण कारक होते हैं। आम्र का रस हृदय के लिए उत्तम सुगन्धित गुण में स्निग्ध होता है।

आम्र की त्वचा, मूल और पत्र ग्राही रस में कषाय तथा कफ और पित्त को जीतने वाले होते हैं।[5] आम के विभिन्न अवस्थाओं में गुण भी भिन्न–भिन्न होते हैं।[6]

विषैले जानवरों के दंश, मकड़ी विष, लू लगने, हिचकी, कृमि रोगों पर इसका औषधीय प्रयोग होता है। प्रमेह, मधुमेह, विशूचिका तथा सुजाक आदि रोगों पर भी इसका प्रयोग होता है।[7]

चरक और सुश्रुत में इसका काफी वर्णन मिलता है कहा गया है–

"अपुष्प फलवानाम्रः पुष्पितश्चूत उच्यते।

पुष्पैः फलैश्चसयुक्तः सहकारः स उच्यते।"

1.अभि0शा0–4/13, 6/3

2. कु0–2/6, 2/33, 4/14

3. दृष्टव्य–योगरत्नाकर

4. रा0नि0पृ0–340

5. ध0नि0–5/2–5

6.शा0नि0–409–414 तक दृष्टव्य,

7. वनौ0विशे0–1,पृ0–273–292तक दृष्टव्य

7. इङ्गुदी (BALANITESAEGYPTIACA)
(LINN. DELIBE)

कुल–इङ्गुदी (Simaroubaceae)

पर्याय[1] :– इङ्गुदी, तापसद्रुम, अङ्गारवृक्ष,

प्रचलित नाम[2]:–

सं०– इङ्गुदी,	**हि०**– हिंगोट, हिगन, इंगुवा
गु०– हिंगोट	**अं०**– EGYPTIAN MYTOBALAN
बं०– हिग	**म०**– हिगंणते, रिंगरी

प्रसङ्गोल्लेख– इसका नाम निम्न सन्दर्भों में आया है–

पूजा हो चुकने पर उन तपस्विनियों ने सीता के रहने के लिए एक पत्तों की कुटिया दे दी जिसमें हिंगोट के तेल का दीपक जल रहा था और नीचे मृमचर्म बिछा था।[3] कण्वाश्रम के पास कहीं तो वृक्षों के नीचे नीवार के दाने विखरे हैं, कहीं इधर–उधर पड़े हुए चिकने पत्थर बता रहे हैं कि उन पर हिंगोट के कूटे गए हैं।[4] विदूषक राजा दुष्यन्त से कहता है कि शकुन्तला को शीघ्र ग्रहण कर लीजिए ऐसा न हो कि वह हिंगोट के तेल से चिकने सिर वाले किसीतपस्वी के हाँथ लग जाए। विदा के समय शकुन्तला को मृगशावक रोकता है उसी सन्दर्भ में कण्व कहते हैं कि हे वत्से कुशा के काँटे से छिदे हुए जिसके मुँह को अच्छा करने के लिए तू उस पर हिंगोट का तेल लगाया करती थी वही पुत्र के समान मृग शावक तुम्हें रोक रहा है।[5]

गुणः– लघु, स्निग्ध, रस–तिक्त कटु, विपाक–कटु, वीर्य उष्ण, प्रभाव–कृमिघ्न,

कर्मः– यह उदरशूल, कृमिरोग, जीर्णकास, श्वांस, कुष्ठ आदि चर्मरोगों में, विष मे प्रयुक्त होती है। यथा– सुश्रुत ने लिखा है[6]–

कृमिघ्नमिङ्गुदीतैलमीषतिक्तं तथालघु। कुष्ठामयकृमिहरंदृष्टिशुक्रवलापहम् ।।

अष्टाध्यायी में इसका परिगणन प्लक्षादिगणपाठ (पाणिनि 4–3–164) में हुआ है। सूत्र के आदेशानुसार फलात्मक विकार एवं अवयव अर्थ में अण् प्रत्यय लगाकर 'ऐङ्गुदम्'

1. का० का वा०वै०–माया त्रिपाठी,पृ०–34–35
2. शा०नि० एवं द्र०गु०वि०अ०–5, पृ०–513
3. रघु०–14/81
4. अभि०शा०–1/14,
5. अभि०शा०–2/11 गद्य, 4/14
6. सु०सू०–45

पद की संसिद्धि होती है जिसका अर्थ इङ्गुदी का अवयव (फल) अथवा इङ्गुदी फल विकास (तेल) दोनों होता है। कौटिलीय अर्थशास्त्र में भी इङ्गुदी फल व तेल के प्राचीन लोक ज्ञान एवं व्यवहारिक उल्लेख मिलते हैं।[1] आयुर्वेद में इसे वृणरोपनार्थ प्रयुक्त किया जाता है।[2]

स्निग्धं स्यादिंगुदीतैलं मधुरं पित्तनाशनम्।

शीतलं कान्तिदं बल्यं श्लेश्मलं केशवर्द्धनम्।।

हिंगोट तैल स्निग्ध तथा मधुर होता है पित्त विकार का नाश करता है। यह शीतल कान्तिप्रद, बलकारक, कफकारक तथा केशवर्धक है।[3]

8. इक्षुम (SACEHARUM OFFICINARUM)

पर्याय व प्रचलित नाम[4]:–

सं0– इक्षु, मधुतृण, दीर्घन्छद, भूरिरस, **हिं0**– ईख, ऊख, गन्ना, सांढा गांडों

म0– ऊस, गु0– शेरडी सेडिड, **बं0**– उख, कुशेर, आक

अं0– SUGAR CANE **लै0**– सैकेरम आफिशिनेरम्।

प्रसङ्गोल्लेखः– कवि की रचनाओं में ''इक्षु'' का प्रयोग निम्नवत् हुआ –

1. धान के खेतों की रखवाल करने वाली किसानों की स्त्रियाँ ईख की छाया में बैठकर प्रजा पालक राजा रघु के बचपन से तब तक की गुण–गाथाओं की गीत बनाकर गाती रहती हैं।[5]
2. हे वरोरू सुनो जिस ऋतु में धान और ईख के खेत लहलहा उठते हैं जिसमें कभी–कभी सारस की आवाज भी गूँज जाती है और काम भी बहुत बढ़ जाता है वह स्त्रियों की प्यारी शिशिर ऋतु आ चुकी है।[6]

गुण धर्मः– आयुर्वेद के अनुसार सफेद रंग, काले रंग, लाल रंग की ईखों गुण धर्म में अन्तर होता है। ईख शीतल रस और स्वाद में मधुर इन्द्रियों को तृप्तिकारक वात पित्त रोग नाशक है।[7]

---

1. कौ0अर्थ0–2/15/33 व 14/1/177
2. का0का वा0वै0, पृ0–34–35
3. रा0नि0क्षीरादिवर्ग श्लोक–116, पृ0–527
4. ध0नि0–4/109, पृ0–190
5. रघु0–4/20
6. ऋतु0–5/1
7. वनौ0विशे0–1, पृ0–397

भारतीय आयुर्वेद के अनुसार इसके (गुण) के विषय में ऊँची सम्मति है– **'प्रभुत्त कृमि मज्जा शृङ्गभेदों मांसकरोगुणः'** अर्थात् गुरु अत्यन्त मांस भेद और मज्जा वर्धक है। यह वृद्धिकारक है।[1] चरक नें इसे तृण पंचमूल में गिना है।[2]

9. एलां (ELLEPTARIA CARDAMOMUM- MATON)

पर्याय[3] :– एला, बहुला, मालेया, ताड़कीफल, त्रिपुटा, त्रुटि, सूक्ष्मैला, द्राविडी,

प्रचलित नाम[4]:–

हिं0– छोटी इलाइची (लार्च), गुजराती लाची

गु0– एलची

ता0– एलम्

लै0– ELLEPTARIA CARDAMOMUM

मल0– येलम

अ0– काकुल

अं0–Lessar Candamam

प्रसङ्गोल्लेख[5]:– रघुवंश में एला का प्रयोग निम्न संदर्भों एवं रूपों में हुआ है, वहाँ पृथ्वी पर गिरे हुए इलायची के बीज, घोड़ो की टापों से पिसकर वायु के सहारे हाथियों के उन गालों पर जा चिपके जहाँ उन्हीं की गंध जैसी मद निकल रहा था। छोटी और बड़ी दोनों इलायची के गुण भी भिन्न हैं–

''स्थूलै लारक्तपित्तघ्नीवमिशुक्रश्मजिद्धिमा''

बड़ी इलायची रक्त पित्तनाशक, वमननिवारक, शुक्रनाशक, पथरी को दूर करने वाली शीतल, कण्डू, पित्त व कफ रोग हरने वाली है।[6]

छोटी इलायची कफ, कास, श्वास, बवासीर और मूत्रकृच्छ रोग का नाश करती है। यह रस में चरपरी, शीतल, हल्की और वात विनाशक है। यथा– भाव प्रकाश में उल्लेख है[7]–

एलासूक्ष्माकफश्वासकासार्शोमूत्रकृच्छत्दृत् । रसेतुकटुकाशीतालघ्वीवातहरामता ।।

मुखरोग, तृष्णा, अरूचि, उदरशूल, कास, श्वांस, दाहरोग, दौर्वल्य आदि में इसका प्रयोग करते हैं।[8]

---

1. च0सू0अ0–27
2. च0चि0अ0–1/22
3. 'एकास्थूलैलाबहुलामालेयाताडकीफलम्।
4. शा0नि0पृ0–37
5. रघु0–4/47 (मलयपर्वत वर्णन),6/64
6. शा0नि0,पृ0–37
7. शा0नि0,पृ0–38 मे उद्धृत
8. द्र0गु0वि0अ0–9,पृ0–721

10. कर्णिकार (NERIUMODORUM)

प्रचलित नाम[1] :–

सं0– हयप्रिपाशत कुम्भ, अश्वमारक **हि0**– कनैर (श्वेत, लाल, पीली)

अं0– (THE- EXILE)

प्रसङ्गोल्लेखः– इस पुष्प का उल्लेख कवि ने सौन्दर्य प्रसाधन के रूप में किया है।2 कहीं–कहीं कामोद्दीपन के रूप में उल्लेख है।[3]

गुण एवं प्रयोगः– आयुर्वेद में कनेर का विधान अत्यन्त प्राचीन काल से है। चरक ने इसकी गणना तिक्त स्कन्ध और कुष्ठधन गणों में की है।[4] सुश्रुत ने शिरो विरेचन और लक्ष्यादि द्रव्यों के वर्ग में इसकी गणना की है तथा इसके क्षार का विधान अश्मरी (पथरी) पर किया है।[5] श्वेत कनैर का प्रयोग कुष्ठ, पामा आदि चर्म रोगों पर[6] और विषम ज्वर, लकवा, कुत्ते के विष आदि पर लाभकारी है।[7]

11. कालीयक (SANTALUM ALBUM LINN)

पर्याय/नाम[8] :– कालेयक, कालेय, कालीय हि0–कालागरू, पीत चन्दन

प्रसङ्गोल्लेखः– कवि कुल गुरू कालिदास ने इसका उल्लेख केवल ऋतु संहार में सौन्दर्य प्रसाधन के रूप में किया।[9] लोक व्यवहार में प्रसाधनिक (कास्मेटिक) कर्म में प्रयोग होने के संकेत मिलते हैं। टीकाकर, कोशकार[10] एवं शोधकों ने इसका विनिश्चय पीत–चन्दन, दारुहरिद्रा आदि से किया है।

12. कुड्.कुमम् (CROCUS SATIVUS)

कुल– केशरकुल

प्रचलित नाम :– **हि0**– केशर **ले0**– क्रोकस सेटाइवस **म0,गु0**–केसर
बं0, अ0–जाफरान **फा0**–करकीमास

---

1. वनौ0विशे0–2,पृ0–74–76, रा0नि0पृ0– 199–202 2.कु0सं0–3/28, 3/53, 3/62 एवं ऋतु0–6/6, रघु0 9/40
3.वि0उ0–2/22, 3/3एवंऋतु0–6/29 4. वनौ0विशे0–2,पृ0–74 5 सु0चि0अ0–14
6. च0चि0अ0–7 7. वनौ0विशे0–2,पृ0–76–77 8. का0का0वा0वै0–माया त्रिपाठी
9.ऋतु0–6/14, 4/5 10. अमरकोश–12/4 वै0को0–3/37/76

अं0– सैफ्रन (Saffron) ता0–कुङ्कुमाप्पु

पर्याय[1]– **कुंकुमं रूधिरं रक्तमसृगस्त्रं च पीतकम ।**

काश्मीरे चारू वाल्हीकं संकोचं पिशुनं वरम् ।।

रूधिर रक्त असृग्, अस्र, पीतक काश्मीर, चारू, संकोच, पिशुन वर ये पर्याय है। कुंकुम का वर्णन कवि ने इस प्रकार किया है–

1. उनकी कमर मे पड़ी हुयी केसर के फूलों की करधनी जब नितम्ब से नीचे खिसक जाती थी तब उसे अपने हाँथ से थाम कर ऊपर सरका लेती थीं।[2]
2. मोर पंख को देखकर विदूषक को मुरझाये हुए फूल का धोखा होता है क्योकि दोनो एक जैसे लगते थे।[3]

गुण धर्म– लघुतिक्त कटु उष्ण वीर्य है। यह त्रिदोष (वात पित्त कफ) हरण करने वाला वाजीकरण गर्भाशय संकुचक प्रसन्नता कारक है। आयुर्वेद मे बालकों के उदर कृमि विकार पर, नेत्र विकार पर, उदर शूल पर, पीड़तार्त्तव पर प्रयुक्त होता है। ध्वजभंग, रजोरोध, कष्टार्त्तव एवं कष्टप्रसव में इसका सेवन कराते हैं। प्रसव बाद गर्भाशय–शोधन हेतु केशर की गोली खिलायी जाती है।[4]

13. कुन्द (JASMINUM-MULTIFEORUM- ANDR.)

नाम/पर्याय[5]:–**सं0**– कुन्द, माह्य सदा पुष्प। **हिं0,बं0** – कुन्द

म0– मोगरा, कस्तूरी मलिगे। **ले0**–जेसमीनम् प्युनेसेंस।

अं0–मस्कजसमाईन (MUSK JASMINE)

प्रसङ्गोल्लेख:– कालिदास ने दसपुर के स्त्रियों को कटीली भौहों की उपमा कुन्द के फूलों पर मंडराने वाली भौरों की चमक से दी है।[6] अलकापुरी की स्त्रियाँ अपनी चोटियों में कुन्दके नये खिले हुए फूल गूथती हैं।[7] वियोगी यक्ष प्रातः काल खिले हुए कुन्द के फूल के समान चू पड़ने वाले अपने प्राणों की रक्षा चाहता है।[8] देव सैनिकों के कुन्द पुष्प के समान उजले छत्रों को भी तारकासुर के वायव्य अस्त्र ने झकझोर

1. ध0नि0–3/11,पृ0–124 2. कु0सं0–3/55 3. वि0उ0–2/19
4. वनौ0विशे0–2,पृ0–265–66, ध0नि0 3/12, पृ0–124 5. शा0नि0पृ0–376,वनौ0विशे0–2, पृ0–228
6.पू0मे0–51 7. उ0मे0–1 8. उ0मे0–56

कर उड़ा दिया।[1] बसन्त ऋतु में कामिनियों की मस्तानी हंसी के समान उजले कुन्द के फूलों से चमकते हुए मनोहर उपवन मोह– माया से दूर रहने वाले मुनियों तक का हृदय हरण कर रहे हैं। अपने कुन्द के फूलों की चमक दिखाकर यह बसन्त स्त्रियों की मुस्कान पर चमकने वाले दांतों की दमक की हंसी उड़ा रहा है।[2] मालाविका सुन्दरता में राजा को इस प्रकार दिखाई देती है, जैसे बसन्त के पके हुए पत्तों वाली किसी कुन्द लता मे इने–गिने फूल बचे रह गये हों,[3] परन्तु आयी हुई शकुन्तला को देखकर दुष्यन्त सोंचते हैं कि जैसे प्रातः काल ओस पड़े कुन्द पुष्प पर भौंरा न तो बैठता है और न उसे छोड़कर ही जाता है, वैसे ही मैं भी न तो ग्रहण ही कर रहा हूँ न छोड़ ही पा रहा हूँ।[4]

गुणधर्म और प्रयोग[5]– शीत वीर्य, लघु शिरोरोग, कफ तथा पित्त प्रकोप निवारक, विषनाशक, पाचन हृद्य वात शामक तथा रक्त विकार नाशक है। इसकी मूल आर्त्तवजनन, सर्पदंश प्रतिबन्धक है।

14. कुरूबक (BARLERIA, CRISTATA LINN)

पर्याय[6]:– कुरूवक, मधूत्सव, रक्तकुरण्टक, शोण, झिंटिका

नाम :– **हिं0**– लाल कटसरैया, **ले0**– बर्लेरिया क्रिस्टाटा।

प्रसङ्गोल्लेखः– कवि की कृतियों में इस पुष्प का वर्णन निम्नवत् हैः–

वन में खड़े हुए कुरूबक के पेड़ ऐसे जान पड़ते थे, मानो बसंत में वनश्री के शरीर पर वेलबूटे चीतकर उसका श्रृंगार कर दिया गया हो।[7] अलकापुरी की स्त्रियाँ जूड़े में कुरूबक के पुष्प धारण करती है। बनावटी पर्वतों पर कुरूबक के वृक्षों से माधवी मंडप है।[8] बसन्त ऋतु में स्त्रियों के जूड़े नये कुरूबक के फूलों से सजे हुए रहते हैं। मुख कुरूवक की तरह लगता है।[9] कंचुकी कहता है कि कुरूबक का फूल खिलना ही चाहता था पर ज्यों का त्यों बंधा पड़ा है।[10] कुरूबक के पुष्प का सिरा

---

1. कु0सं0–17/27 2. ऋतु0–6/25, 31 3. माल0–3/8
4.अ0शा0–5/19 5. वनौ0विशे0–2,पृ0–229 एवं रा0नि0पृ0–320
6. शा0नि0पृ0–386 के अनुसार– **''रक्त पुष्पः कुरूबकः पीत पुष्पः कुरण्टकः। नीलपुष्पश्चार्त्तगलः सैरेयः श्वेत पुष्पकः।।''**
7. रघु0–9/29 8. उ0मे0–2, 18 9. ऋतु0–6/20, 6/33 10. अभि0शा0–6/4

स्त्री के नख के समान लाल है।[1] काले उजले और लाल रंगों के कुरूबक के फूल, स्त्रियों के मुखों पर चित्रित चित्रकारी को फीकी किये डाल रहे हैं।[2] मलय–पवन कुरूवक के पराग में बस गया है।[3] इस जाते हुए बसन्त में भी बिखरे हुए कुरूबक के फूल मन में जवानी की लहरे उठाने लगे हैं।[4]

गुणधर्मः– शीतल, दीपन, कफ वात नाशक,शोथ, तृष्णा, विदाह, कृमि, दंताविकार नाशक है। आयुर्वेद में इसके क्वाथ का प्रयोग सूति का रोग पर किया जाता है। स्त्री के गर्भ धारणार्थ मूल को दूध में पीस कर पिलाते हैं।[5]

15. कुसुम्भ (CARTHAMUS TINCTORIUS)

प्रचलित नाम/पर्याय[6] :–

सं0– कुसुम्भ, वह्यिशिखा, वस्त्ररंजन **हि0–** कुसुम, बर्रे

अं0– (WILD SAFFRON) **ले0–** कार्थेमस टिक्टोरिया

प्रसङ्गोल्लेखः– कवि ने इसका उल्लेख ऋतुसंहारम्[7] में किया हैः–

पूरे खिले हुए नये कुसुम्भी के फूल के समान जंगल की आग से जहाँ–तहाँ वन भूमि जल गयी है। कामिनियों ने अपने गोल–गोल नितम्बों पर कुसुम के लाल फूलों से रंगी रेशमी साड़ी पहन ली है।

गुण धर्म और प्रयोग[8]:– लघु, उष्ण, रूक्ष, कफनाशक, निद्राकारक, केशरंजक, स्वर शोधक, कास, श्वास, शूल कुष्ठनाशक है। पाण्डु, चेचक, भयानक वृणों, प्रमेह में इसका प्रयोग होता है।

16. कोविदार (BAUHINIA-ACUMINATA)

पर्याय/नाम[9] :–

सं0– कोविदार, चमरिक **हि0–** कचनार सफेद **ले0–** निरगन्ध श्वेत

---

1. वि0उ0–2/7 2. माल0–3/5 3. माल0–3/9 4. माल0–5/4
5. वनौ0विशे0–2,पृ0–38 6. वनौ0विशे0–2,पृ0–243 7. ऋतु.–1/24, 6/5
8. दृष्टव्य–वनौ0विशे0भाग–2,पृ0–243–44 9. वनौ0विशे0–2,पृ0–20,रा0नि0करविरादिवर्ग,श्लोक–23,24

को
न्ध

प्रसङ्गोल्लेख[1]:— शरद वर्णन मे कवि ने उल्लेख किया है कि जिसकी शाखाओं की सुन्दर चोटियों को मन्द—मन्द पवन झुला रही है, सुकोमल पत्तियों वाले तथा खिले हुए फूलों से युक्त जिसमें बहते हुए मधु के धार मस्त भौरे धीरे—धीरे चुन रहे हैं। ऐसा कचनार का वृक्ष भला किसका हृदय टूक—टूक नहीं किये डालता।

गुण/प्रयोग[2]:— आयुर्वेद के अनुसार यह मधुर रूचिकारक, दाह कफ वात प्रदरनाशक है, इसके बीजों को सिरका के साथ पीसाकर प्रलेपन से घाव के कृमि नष्ट होते हैं। कचनार गुग्गुल से ग्रन्थी घाव, गल्म, कुष्ठ और भगन्दर का नाश होता है।

17. गोधूमः (TRITICUM VULGARE)

पर्याय/नाम[3] :—

सं0— गोधूमः, सुमन **हि0**— गेहूँ, गोहू **अं0**— Wheat

ले0— ट्रिटिकम व्हलगेरी, **टि0** साटिह्वम

प्रसङ्गोल्लेखः— हेमन्त ऋतु में गेहूँ, जौ, आदि के नये—नये अंकुर निकल आने से चारों ओर हरा—भरा दिखाई देने लगा है।[4]

गुणधर्म एवं प्रयोगः— यह गुरू, स्निग्ध पौष्टिक, वीर्यवर्धक है। अस्थि भंग पर इसे किञ्चित् भूनकर चूर्ण करते हैं व शहद से चटाते हैं। अश्मरी पर इसके साथ चने को औंटा कर छानकर पिलाते हैं।[5]

18. चन्दनलता (SANTALUM ALBUM)

पर्यायः— — धन्व0नि0 3/1 पृ0 122 में इसके 9 पर्याय वर्णित हैं:—

चन्दनं गन्धसारं च महार्हं श्वेत चन्दनम्।

भद्रश्रियं श्रीखण्डं मलयजं गाशीर्षं तिलपर्णकम्।।

प्रचलित नाम[6]:—

सं0— चन्दन, श्रीखंड, मलयज, गन्धसार, चन्द्रद्युति **हि0**— चंदन श्वेत

1. ऋतु0—3/6
2. वनौ0विशे0—2,पृ0—18—20,रा0नि0पृ0—25
3. वनौ0विशे0—2,पृ0—375
4. ऋतु0—4/1
53. वनौ0विशे0—2,पृ0—376
6. वनौ0विशे0—2,पृ0—9

अं0– SANDAL WOOD लें0– सेन्टलम एल्बम

को

न्ध

प्रसङ्गोल्लेखः– चन्दन का वर्णन कवि की रचनाओं में इस प्रकार हैं–

1. चन्दन वृक्ष में सर्प के लिपटने[1], चन्दन से पुते दो स्तन रूप में[2] तथा गंगा यमुना के संगम की तुलना श्वेत चन्दन व अगर से हुई है।[3]
2. मलय पर्वत के चन्दन वृक्षों को हिलाने वाली एवं लौंग पुष्प के केसर उड़ाने वाली दक्षिण वायु संभोग से थकी पार्वती की थकावट दूर कर रही थी।[4]
3. ग्रीष्म ऋतु में यह सभी चाहते हैं कि चन्दन चारो ओर छिड़का रहे।[5]

गुणधर्म एवं प्रयोगः– भावप्रकाश में कहा गया है–

स्वादेतिक्तं कषे पीतं छेदे रक्तं तनौसितम्।

ग्रन्थि कोटर संयुक्तं चन्दनं श्रेष्ठमुच्यते।

जो चन्दन स्वाद में तिक्त रस युक्त घिसने में पीत वर्ण, टुकड़े करने या काटने पर पीताभ लाल वर्ण का, ऊपर से देखने में श्वेत, गाँठदार होता है, वही श्रेष्ठ चन्दन है। वमन पर चन्दन चूर्ण 4मा0 आमले के रस और शहद के साथ पीने से शान्ति मिलती है। प्रमेह पित्तज सिर–शूल, नेत्र–विकार व हिस्टीरिया पर चन्दनादि अर्क का प्रयोग करते हैं। विष में भी यह उपयोगी है।[6]

19. चम्पक पुष्प (MICHELIA CHAMPACA LINN)

पर्याय/नाम[7] :–

सं0– चम्पक, हेमपुष्प, चाम्पेय हि0– चम्पा, नागचम्पा

अं0– गोल्डन चम्पा (GOLDEN CHAMPA) लें0– माइनीलिया चम्पक।

प्रसङ्गोल्लेखः– ऋतुसंहारम्–6/3 में चम्पक पुष्प का वर्णन निम्नवत् है–

ईषत्तुषारैः कृतशीतहर्म्यः सुवासितं चारुशिरश्च चम्पकैः।

कुर्वन्तिनार्योऽपि बसन्तकाले स्तनंसहारं कुसुमैर्मनोहरैः।।

---

1. रघु0–4/48, 10/42, अभि0शा0–7/18
2. –रघु–4/51
3. रघु0–13/55
4. कु0सं0–8/25, अभि0शा0–4
5. ऋतु0–1/2
6. च0चि0अ0–25, दृष्टव्य
7. वनौ0विशे0–3,पृ0–18

बसन्त में घरों की छतों पर ठंडी ओस छा गई है। चम्पक के फूलों से सबके जूड़े महकने लगे हैं और स्त्रियाँ भी अपने स्तनों पर मनोहर फूलों की मालाएँ पहनने लगी हैं।

गुणधर्म एवं प्रयोग[1]:— आयुर्वेद में यह लघु रूक्ष तीक्ष्ण, तिक्त, कटु, कषाय, मधुर, शीतवीर्य तथा कफ पित्त शामक, रक्तशोधक, मूत्रल, विषघ्न, काष, कृमि, कुष्ठ, शोथ, आमवात् नाशक है। प्रयोज्य अंग— छाल, पुष्प, पत्र, बीज तथा दुग्ध। पाण्डु प्रकेहादि के लिए चम्पकादि चूर्ण तथा चम्पकासव के सेवन से जुकाम सर्दी कोष्ठ बद्धता दूर होती है।

20. जम्बू (EUGENIA JAMBOLANA)

पर्याय[2] :— **सं0**— राजजम्बू, महाफला, फलेन्द्रा

नाम :— **हिं0**— जामुन (बड़ी), फलांदा **अं0**— जाम्बुल (JAMBUL)

प्रसङ्गोल्लेखः— कवि कुलगुरू ने जम्बू का उल्लेख निम्न प्रसङ्गों में किया है—

1. हे! मेघ जब जल बरसा चुको, तब जंगली हाँथियों के सुगन्धित मद में बसा हुआ और जामुन की कुंजों में बहता हुआ रेवा का जल पीकर ही आगे बढ़ना।[3] दशार्ण देश के जंगल, पकी हुई काली जामुनों से लदे मिलेंगे।[4]
2. कोयल उर्वशी का पता नहीं बताती बल्कि वह पकी हुई जामुनों का रस उसी प्रकार पी रही है, यथा कोई मतवाला अपनी प्यारी के ओठों का रस पीने लगा हो।[5]

गुणधर्म एवं प्रयोगः— आयुर्वेद में फल, गुठली, पत्र और छाल ये सभी अंग प्रयोज्य हैं तथा मधुमेह में अत्यन्त उपयोगी है। इसका फल लघु, रूक्ष, कषाय मधुर, अम्ल, कफ, पित्तशामक व प्रबल वातवर्धक है। अतिसार, श्वास ,उदर कृमिनाशक है।[6]

1.वनौ0विशे0—3,पृ0—19—20 2. काद0 का वा0वै0, पृ0—163—64

3. पू0मे0—21 4. उ0मे0—25

5.वि0उ0—4/27 6. धनि0नि0—5/78,पृ0—220 एवं च0चि0अ0 दृष्टव्य

21. जपा पुष्प (HIBISCUS ROSA SINENSIS)

पर्याय[1]– **"ओंड्रपुष्पं जपाचाथप्रातिका हरिवल्लभा।"**

संस्कृत में ओंड्रपुष्प, प्रतिका, हरिवल्लभा, जपा के पर्याय हैं।

प्रचलिताभिधान[2]–**हि0**– गुड़हल, जवा, ओडहुल **गु0**– जासुम,

म0–जास्वेद **मल0**–चेमबराति **कन्न0**–दासवल

ता0–शेमपरूति **अं0**– शूफ्लावर(SHOE FLOWER)

लै0– हिविस्कस रोजा साइनेन्सिस **ते0**– दासनमु

प्रसङ्गोल्लेखः– कवि ने जपापुष्प का उल्लेख पूर्वमेघदूतं श्लोक 40 में किया गया है। **रासायनिक संगठन**[3]:– पुष्पों में अल्प परिमाण में नाइट्रोजन, वसा, कैल्शियम, फास्फोरस, लौह, विटामिन–'बी', 'सी' होते हैं। पुष्प पीसने पर एक गहरा बैगनी रंग निकलता है, जो केश रंगने के काम आता है। पहले इससे जूते रंगे जाते थे। इसी कारण इसका नाम शूफ्लावर (SHOE FLOWER) कहते हैं।

गुण और प्रयोग[4]:– **जपाशीताचमधुरास्निग्धा पुष्टि प्रदामता।**

यह शीतल, मधुर, स्निग्ध पुष्टिकारक, गर्भ वृद्धि कारक है। यह (केश्या जन्तुप्रदामता) अर्थात बालों को हितकारी प्रमेह बवासीर, धातुरोग, प्रदर रोग को हरने वाली हैं इसके पुष्प हलके मलरोधक कड़वे व केशवर्धक हैं। इसके पुष्प रूधिर विकार, स्त्रियों के रज विकारों में प्रयोग होते हैं।

दोषकर्मः– कफ, पित्तशामक है। **संस्थानिक कर्मः**– रक्तशोधक, केश्य,

प्रजनन संस्थान :– प्रदरनाशक, गर्भनिरोधक है। गर्भनिरोधक हेतु इसके पुष्पों का प्रयोग होता है।

22. तिल (SESAMUM-INDICUM)

पर्याय/नाम[5] :– **सं0**– तिल, पूतहोम, धान्यपितृतर्पण

अं0– सिसेम जिंजिली (SESAMUM-JINJILI)

लै0– सिसेमम इंडिकम, सिसेमम नायगरसीड्स **हि0**– तिल

1,2. शा0नि0(पुष्पवर्गः) पृ0–391
3. द्र0गु0वि0अ0–9,पृ0–720
4. शा0नि0(पुष्पवर्गः) पृ0–391
5. वनौ0विशे0–2,पृ0–253

प्रसङ्गोल्लेखः— कवि ने तिलोदक का प्रयोग अभिज्ञान शाकुन्तलम् में किया है। शकुन्तला कहती है, कि हे! सखियो कोई उपाय सोचो कि मुझ पर राजा दुष्यन्त कृपा कर दें नहीं तो मुझे तिलाञ्जलि देने को तैयार रहना।[1]

गुणधर्म एवं प्रयोगः— तिल—स्नेहन, सारक, पौष्टिक, मूत्रल, दन्त्य एवं स्तन्य है—दांतों की दुर्बलता में इसे चबाते हैं। वहुमूत्र व प्रमेह, उदरशूल, सुजाक, राजयक्ष्मा, शोष, वातरक्त पर कास, अत्यार्त्तव में काले तिल लाभ पहुचाते हैं।[2]

23. तमाल (GARCINIA MORELLA DESR)

नाम/पर्याय[3]:—

अं0— इंडियन गैबोज ट्री (Indian Gambose Tree) **ता0**—मक्की

ते0— रेवलचीनी **हि0**—तमाल

तमाल संस्कृत के कवियों का बहुत चर्चित अलंकारी एवं मान्य वृक्ष है। जिसका उल्लेख प्रायः संस्कृत के सभी कवियों ने अपनी रचनाओं में किया है। किन्तु उनके विश्लेषण से यही लक्षित होता है कि कवियों का तमाल एक से अधिक वनस्पति प्रजातियों का वाचक है। इन्हीं का अनुसरण संस्कृत कोशकारों ने भी किया, संस्कृत कोशो में तमाल पत्र का लक्षणिक प्रयोग ललाट के तिल विशेष के अर्थ में भी हुआ है।[4]

प्रसङ्गोल्लेखः— स्थान—स्थान पर तमाल पत्र फेले हैं।[5] तमाल आदि वृक्षों के कारण नीला दिखाई देने वाला समुद्र तट ऐसा जान पड रहा है जैसे चक्र की धार पर मुर्चा आ जमा हो।[6] पहाड़ की ढाल पर जो तमाल का वृक्ष दिखाई दे रहा है, यह वही है जिसकी कोंपल के कर्ण फूल बनाकर मैं तुम्हारे कान पर पहराया करता था।[7] वायु चलने से तमाल वृक्ष हिल रहे थे।[8]

---

1. अभि0शा0अं0—3,गद्यभाग
2. वनौ0विशे0—3, पृ0—255
3. द्र0गु0वि0अ0—9,पृ0—721
4. अमर0का0—2,वनौ0विशे0—3, 4/68, बै0को0—3/3/87, सं0हि0को0,पृ0—422
5. रघु0—6/64
6. रघु0—13/15,
7. रघु0—13/49
8. रघु0—5/42

24. तिलकवृक्ष (WENDLANDIA EXERTA)

पर्याय[1]– तिलकः, क्षुरकः, श्रीमान्पुरुषश्छिन्नपुष्पकः।

नाम[2] :–**हि0**– तिलकी **म0**– तिल, तिलक **दरभंगा**–तिलिआ, तिलका।

बिहार–तिलआ

प्रसङ्गोल्लेखः:– यह संस्कृत काव्य शास्त्रों का एक बहुचर्चित एवं मान्य पुष्प वृक्ष है। अतः कवि सम्राट ने इसे अपनी रचनाओं में निम्नवत् लिखा है– जैसे किसी युवती के शृङ्गार हेतु उसका मुख चित्रित किया जाता है वैसे ही तिलक वृक्ष के फूलों पर मड़राते हुए काजल की बूंदियों के समान सुन्दर भौंरे ऐसे जान पड़ते थे, मानो वनस्थलियों का मुख भी चित्रित कर दिया गया हो।[3] वहां उड़ते हुए भौंरे खिले हुए तिलक पुष्प व प्रातः के सूर्य की लाली से चमकने वाली कोपलें ऐसी लगती थीं, मानो बसन्त शोभा रूपी रुत्री ने भौंरे रूपी आँजन से अपना मुँह चित्रित कर मस्तक में तिलक पुष्प का तिलक लगाकर प्रातः सूर्य की कोमल लाली से चमकने वाले आम के कोपलों से अपने ओठ रंग लिए हो।[4] काले भौरो से लिपटे हुए तिलक के पुष्प स्त्रियों के माथे पर के तिलक को नीचा दिखाए डाल रहे हैं।[5]

गुणधर्म एवं प्रयोगः– आयुर्वेदानुसार यह पचने में चरपरा रस में भी चरपरा गरम रसायन कफ, कुष्ठ, कृमि, बस्तिरोग, मुखरोग और दन्तादि वे रोगों को दूर करता है। इसका पुष्प तिलपुष्प के समान ही होता हैं।[6]

25. द्राक्षा (VITIS VINIFERA LINN)

पर्याय/प्रचलित नाम[7] :– **सं0**–द्राक्षा, चारूफला, कृष्णा, प्रियाला,

का0– दच्छा **प0**– दाख **सिं0**– द्राख

भार0–दाख **म0**– दाख **हि0**– अंगूर, किसमिस, दाख

अं0– GRAPE RAISINS

---

1. शा0नि0पृ0–377
2. काद0 का वा0वै0पृ0–188
3. रघु0–9/41
4. कु0सं0–3/30
5. माल0–3/5
6. शा0नि0पृ0–377–378
7. का0का वा0वै0पृ0–196, रा0नि0पृ0–360,ध0नि0–5/49

प्रसङ्गोल्लेखः– कवि की कृतियों में द्राक्षा का उल्लेख निम्न स्थलों पर हुआ है– महाकवि कालिदास ने रघु के दिग्विजय वर्णन मे पारिसीकों के विजय के प्रसङ्ग में उस क्षेत्र की प्रकृति–सुषमा का काव्यात्मक चित्रण करते हुए द्राक्षा वाटिकाओं का तदात्मक सुन्दर चित्रण किया है।[1] आयुर्वेदीय साहित्य एवं व्यवहार में भी संहिता काल से लेकर अद्यावधि 'द्राक्षा' सर्वत्र सुविज्ञात है। संहिताओं में इसका भूरिशः वर्णन है। उल्लेखों की बारम्बारता सर्वाधिक चरक संहिता में तदनुसार अष्टांग हृदय व सुश्रुत संहिता में दृष्टिगोचर होती है।[2]

गुण/प्रयोग :– राजनिघण्टु में उल्लेख है :–

द्राक्षाऽतिमधुराम्ला च शीता पित्तार्त्तिदाहजित्।

मूत्रदोष हरा रुच्या वृष्या सन्तर्पणी परा।।

यह फल अत्यन्त मधुर, थोड़ा अम्ल रस वाला शीतल है, मूत्र विकार को दूर करने वाला, रुचिकारक, वीर्यवर्द्धक तथा अच्छी तरह तृप्त करने वाला है।[3]

अच्छी तरह पका सूखा हुआ द्राक्षा फल थकावट तथा पीड़ा शान्त करने वाला, तृप्ति कारक एवं पौष्टिक है। यह श्वास, कास, दाह, भ्रम आदि को दूर करती है। रक्त पित्त विकार शामक है। हृदय के लिए लाभप्रद और ज्वरनाशक है।[4]

प्रयोज्य अंग–फल, **विशिष्ट योग**– द्राक्षारिष्ट,

26. नागकेशरम् (MESUA FERREA LINN)

पर्याय[5] :– **'नागपुष्पं मतंनागं केशरं नागकेशरम् ।**
चाम्पेयं नागकिञ्जल्कं कनकं हेमकाञ्चनम् ।।

नागपुष्प, नाग, केशर, नागकेशर, चाम्पेय, कनक, हेम, कांचन यें पर्याय है।

प्रचलित नाम[6]– **ले0**–मेसुआ फेरिया (MESUA FERREA LINN)

हि0– नागकेशर, नागेसर, **बं0**– नागेश्वर **म0**– नागचांपा

गु0– पीलुंनागकेशर **ता0**– नांगु **मल0**–नंगा

अं0– मेसुआ (Mesua)

---

1. रघु0–4/60–65
2. का0का0वै0पृ0–196
3. रा0नि0आम्रादिवर्ग–101, पृ0–360–61
4. रा0नि0आम्रादिवर्ग–106/107,ध0नि0पृ0–213, शा0नि0फलवर्गः, पृ0–484–85
5,6. ध0नि0–2/48,शा0नि0पृ0–40.

प्रसङ्गोल्लेखः— रघुवंशम् में उल्लेख है कि नाग केशर के पुष्पों पर बैठे हुए भौंरो को जैसे ही खजूर के तनों से बँधे हुए हाथियों के कपोलों से टपकते हुए मद की गन्ध मिली कि वे उन्हें छोंडकर इन पर ही आ टूटे।[1]

गुणधर्म[2]:— धन्वन्तरि निघण्टु में कहा गया है :—

नागकेशरमल्पोष्णं लघु तिक्तं कफापहम्।

वस्तिरुग्विष वातास्रकण्डूघ्नं शोकनाशनम्।।

यह वीर्य में किचिंत उष्ण, गुण में लघु रस, में तिक्त तथा कफ का शमन करने वाला है। यह बस्ति विकार, विष, वातरक्त, कण्डू और शोथ को नष्ट करता है।

प्रयोग[3]— मूत्राघत, रक्तप्रदर, रक्तार्श, विष, अर्श पित्त, कफ, ज्वर मे लाभप्रद है

प्रयोज्य अङ्ग— पुंकेशर।

27. नमेरू (OCHROCARPUS LON GIFOLIUS)

कुल— नागकेशर (GUTTIFERAE)

पर्यायः— राज0नि0 35, करवीरादि वर्ग पृ0 303, में नमेरू के पर्याय निम्नवत् हैं—

नमेरुः सुरपुन्नागः सुरेष्टिः सुरपर्णिका,

सुरतुंगश्च पंचाह्वः पुन्नागगुणसंयुतः।।

प्रचलित नाम[4]**:—ले0**— मैमिया लौगिफोलिया (Mammea, Longifolia Planch)

ते0— सुरचोन्न। **हि0**—लाल नागकेशर**बं0**— नागकेशर **म0**— सुरंगी वृक्ष

गु0— रातुंनागकेशर **ते0**— सरापुन्ना

प्रसङ्गोल्लेखः— महाकवि कालिदास ने अपनी महाकाव्य रचनाओं में हिमालय क्षेत्रानुबन्धी प्रसंगों में नमेरू का कई बार उल्लेख किया है।[5] कामदेव नन्दी की आँखे बचाकर नमेरू की शाखाओं से घिरे हुए स्थान में घुस गया।[6]

गुण/प्रयोगः— आयुर्वेदानुसार यह मधुर शीतल सुगन्धि, पित्तनाशक, रक्तपित्त, कफ,

1. रघु0—4/57
2,3—ध0नि0—2/49,पृ0—106,शा0नि0पृ0—40—41 एवं वनौ0विशे0—4पृ0—37दृष्टव्य
4 का0का0वा0वै0—199
5— रघु0—4/74, कु0सं0—1/55, 6. कु0सं0—3/43

पित्त और भूत बाधा को दूर करना है। इसके पुष्प वीर्य वर्धक, वातशूल और कफनाशक हैं।[1]

28. नड्वल/नल/नड (Aroundo Donax Linn)

कुल—यवकुल (Gramineae)

पर्यायः— सं०— नल, पोटगल, शून्यमध्य, धमन

प्रचलित नाम[2]:—ले०— अरूण्डो डोनेक्स (Aroundo Donax Linn)

हि०— नरकुल, नरकट **गु०—** नाली **म०—**नल

अं०— नाडिंग रीड (NODDING REED) या ग्रेट रीड (GREATE REED)

प्रसङ्गोल्लेखः— नड्वल का अर्थ सरकंडों से व्याप्त है।[3] कवि ने इस वनस्पति का प्रयोग रघुवंशम् में इस प्रकार किया है :—

कमल के समान सुन्दर मुख वाले राजा नल ने शत्रुओं के बल को वैसे ही तोड़ डाला जैसे हाँथी नड्वल (सरकंडे) के गट्ठे को तोड़ डालता है।[4] इसी प्रकार पके सरकंडे से पार्वती के गालों की उपमा कवि ने दी है।[5]

गुणधर्म एवं प्रयोगः— भारतीय बाजार में इसकी सुखाई हुई कलियाँ लाल नागकेशर के नाम पर बिकती हैं।[6] इसके गुण एवं आयुर्वेद प्रयोग लगभग नागकेसर के समान ही हैं। भाव प्रकाश में इसे मधुर, तिक्त, कषाय, कफरक्त, जित कहा गया है—

'नलस्तु मधुरस्तिक्तः कषायः कफरक्तजित्'

दाह शान्ति हेतु व स्तन्य वृद्धि के लिए इसका क्वांथ सेवन करते हैं।

29. पूंगफल (ARECA CATECHU LINN)

पर्याय[7]— संस्कृत में इसके पर्याय हैं— चिक्कणी, चिक्का, चिक्कण, श्लक्ष्णक, उद्वेग, क्रमुकफल तथा पूंगफल।

---

1. शा०नि०पृ०—384—85,द्र०गु०वि०अ०—9,पृ०—787 2. का०का०वा०वै० पृ. 201 3.सं० हि० को० पृ. 507
4. रघु० 18/5 4. कु० सं० 8/74 5. वनौ०नि०पृ०—207 6. रा०नि०पृ०—388 7. शा०नि०पृ०—457

प्रचलित नाम[1]— **हि0**—सुपारी, **बं0**— शुपारी **ले0**—एरिका केटेचु,

अं0— (BETELNUT PALM) **फा0**—पोपिल **गु0**— सोपारी

प्रसङ्गोल्लेखः— कवि की लघु त्रयी कृति रघुवंशम् में 'सुपाड़ी' का वर्णन दो स्थानों पर हैं :—

1. पूर्व दिशा को जीतकर विजयी रघु समुद्र के उस तट पर होते हुए दक्षिण दिशा की ओर बढ़ गए, जिस पर पकी हुई सुपाड़ियों के पेड़ लगे हुए थे।[2]
2. इन्दुमती स्वयंबर प्रसंग में सुनन्दा लंकाधिपति रावण की प्रशंसा करते हुए कह रही हैं :— हे इन्दु! यदि तुम सदा मलय पर्वत की उन घाटियों में विहार करना चाहते हो, जिसमे पान की बेलों से ढके हुए सुपाड़ी के पेड़ खड़े हैं व इलाइची की बेलों से लिपटे चन्दन पेड़ लगे हैं, स्थान—स्थान पर ताड़ के पत्ते फैले हैं, तो तम इनसे विवाह कर लो।[3]

गुणधर्म प्रयोगः— धन्वन्तरि व राज निघण्टु में वर्णित है :—

भेदि सम्मोह कृत्पूगं कषायं स्वादु रोचनम्।

कफ पित्त हरं रुक्षं वक्त्रक्लेदमलापहम्।।[4]

यह मल का भेदन करने वाली, मद उत्पन्न करने वाली, रस में कषाय, मधुर, रुचिकारक, कफ पित्त शामक रुक्ष मुख क्लेद और मल को दूर करने वाली है। इसका मुख्य प्रयोग अरुचि अतिसार तथा श्वेत प्रदर में है इसके विभिन्न भेदानुसार गुणधर्म भी भिन्न हैं।[5] निघण्टुओं में वर्णित है5—

पक्वन्तुवातलं रुक्षं भेदनं कफनाशनम्,

शुष्कमग्निकरं पूगं कषायं मधुरं परम्।

30. पारिजात (NYCTANTHES ARBOR TRISTIS LINN)

नाम/पर्याय[6]— कल्पपादप, पारिजात, कल्पवृक्ष, शेफालिका।

---

1. रघु0—4/44
2. रघु0—6/64
3. ध0नि0—3/38,पृ0—132
4. रा0नि0आम्लादिवर्ग—234—245 तक, पृ0—388—390 तक दृष्टव्य,
5. शा0नि0पृ0—457—460
6. का0वा0वै0पृ0—86

अं0–कोरलजैसमिन (CORAL JASMINE)

ले0– निक्टैन्थिस आर्वर ट्रिस्टिस

प्रसङ्गोल्लेखः– कवि का कल्पवृक्ष/पारिजात उल्लेख निम्नवत् है :–

कल्पवृक्षों में जैसे पारिजात श्रेष्ठ होता है उसी प्रकार राजाओं में अज श्रेष्ठ थे।[1] कुश को तो इन्द्र के सिंहासन का आधा भाग मिला और कुमुद्वती भी कुश के साथ ही सती हो गयी।[2] वहाँ से नन्दन वन पहुँचकर महादेव पारिजात के उन फूलों से बहुत दिनों तक पार्वती का शृंगार करते रहे। जिनसे इन्द्राणी के केश सजाए जाते थे।[3] पार्वती के जूड़े में पारजित के फूलों की माला बाँध दिया।[4] सब देवता भी उस भवन में जा पहुँचे, जहाँ कल्प वृक्ष ही स्वयं बन्दनवार बना हुआ था, जहाँ ढेर के ढेर पारिजात के फूल बिखरे बड़े थे।[5] इसके अलावा अन्य स्थानों पर भी इसका बहुशः वर्णन हुआ है।[6] संस्कृत कोशो मे पंचदेव तरुओं का उल्लेख है[7]–

पंचेते देवतरवो मन्दारः पारिजातकः। संतानः कल्पवृक्षश्च पुंसिवा हरिचन्दनम् ।।

यह स्वर्गिक वनस्पति है। अष्टाध्यायी में 'मन्दार' संज्ञा तन्नामिक वृक्ष वाचक रूप में लक्षित होती है। मन्दार (पारिजात) कल्पवृक्ष विषयक विनिश्चयात्मक ज्ञान जिज्ञासा का विषय बना हुआ है। इस परिप्रेक्ष्य में और भी शोध अपेक्षित है। निघण्टुकारों एवं विभिन्न कोशों में इसे शेफालिका का पर्याय माना गया है। अतः सुविधा की दृष्टि से वर्णक्रम का ध्यान न रखकर क्रमशः शेफालिका का भी उल्लेख किया गया है।

31 शेफालिका (NYENTANTHES ARBORTRISTIS LINN.)

कुल–पारिजात (OLEACEAE)

पर्याय/ प्रचलित नाम[8]– सं0– श्वेत सुरसा, भूतकेशी,

हिं0– हरसिंगार, पारिजात **म0**– पारिजात **बं0**–शेफालिका

अं0– वीपिंगरीक्टाशीज (WIAPING NYCTANTHES), NIGTT JASMINE

फा0– शामाख **गु0**– हारशणगार **ता0**–मज्जपु **कन्न0**–हरसिंग,

1. रघु0–6/6 2. रघु0–17/7 3. कु0सं0–8/27 4. कु0सं0–9/21 5. कु0सं0–13/43
6. रघु0–1/75, 5/52, 17/26 उ0मे0–5, 12 वि0उ0–5/19 7. अमर0का0–1,वैज0–1/3
8. ध0नि0–4/75, का0वा0वै0,पृ0–329

अं0–कोरलजैसमिन (CORAL JASMINE)

ले0– निक्टैन्थिस आर्वर ट्रिस्टिस

प्रसङ्गोल्लेखः– कवि का कल्पवृक्ष/पारिजात उल्लेख निम्नवत् है :–

कल्पवृक्षों में जैसे पारिजात श्रेष्ठ होता है उसी प्रकार राजाओं में अज श्रेष्ठ थे।[1] कुश को तो इन्द्र के सिंहासन का आधा भाग मिला और कुमुद्वती भी कुश के साथ ही सती हो गयी।[2] वहाँ से नन्दन वन पहुँचकर महादेव पारिजात के उन फूलों से बहुत दिनों तक पार्वती का श्रृंगार करते रहे। जिनसे इन्द्राणी के केश सजाए जाते थे।[3] पार्वती के जूड़े में पारजित के फूलों की माला बाँध दिया।[4] सब देवता भी उस भवन में जा पहुँचे, जहाँ कल्प वृक्ष ही स्वयं बन्दनवार बना हुआ था, जहाँ ढेर के ढेर पारिजात के फूल बिखरे बड़े थे।[5] इसके अलावा अन्य स्थानों पर भी इसका बहुशः वर्णन हुआ है।[6] संस्कृत कोशो मे पंचदेव तरुओं का उल्लेख है[7]–

पंचेते देवतरवो मन्दारः पारिजातकः। संतानः कल्पवृक्षश्च पुंसिवा हरिचन्दनम् ।।

यह स्वर्गिक वनस्पति है। अष्टाध्यायी में 'मन्दार' संज्ञा तन्नामंक वृक्ष वाचक रूप में लक्षित होती है। मन्दार (पारिजात) कल्पवृक्ष विषयक विनिश्चयात्मक ज्ञान जिज्ञासा का विषय बना हुआ है। इस परिप्रेक्ष्य में और भी शोध अपेक्षित है। निघण्टुकारों एवं विभिन्न कोशों में इसे शेफालिका का पर्याय माना गया है। अतः सुविधा की दृष्टि से वर्णक्रम का ध्यान न रखकर क्रमशः शेफालिका का भी उल्लेख किया गया है।

31 शेफालिका (NYENTANTHES ARBORTRISTIS LINN.)

कुल–पारिजात (OLEACEAE)

पर्याय/ प्रचलित नाम[8]– **सं0**– श्वेत सुरसा, भूतकेशी,

हि0– हरसिंगार, पारिजात **म0**– पारिजात **बं0**–शेफालिका

अं0– वीपिंगरीक्टाशीज (WIAPING NYCTANTHES), NIGTT JASMINE

फा0– शामाख **गु0**– हारशणगार **ता0**–मज्जपु **कन्न0**–हरसिंग,

1. रघु0–6/6 2. रघु0–17/7 3. कु0सं0–8/27 4. कु0सं0–9/21 5. कु0सं0–13/43
6. रघु0–1/75, 5/52, 17/26 उ0मे0–5, 12 वि0उ0–5/19 7. अमर0का0–1,वैज0–1/3
8. ध0नि0–4/75, का0वा0वै0,पृ0–329

प्रसङ्गोल्लेखः– यह वन में उत्पन्न होने वाली निर्गुण्डी है। इस वनस्पति का प्रयोग कवि ने केवल ऋतु संहारम् शरद्वर्णनम् के अन्तर्गत इस प्रकार किया–

''शेफालिका कुसुमगन्ध मनोहराणि......................''

जिन उपवनों में शेफालिका के फूलों की मनभावनी सुगन्ध फेली है, जिनमें निश्चिन्त बैठी हुई चिड़ियों की चहचहाहट चारों ओर गूँज रही है, जिनमें कमलवत नेत्रों वाली हरिणियाँ जहाँ–तहाँ बैठी पगुरा रही हैं, उन्हें देख–देखकर लोगों के मन उत्कण्ठित हो रहे हैं।[1]

गुण एवं प्रयोगः– चरक संहिता में तो शेफालिका दृष्टिगोचर नहीं है किन्तु सुश्रुत संहिता (सूत्र स्थान अध्याय 8) तथा अष्टांग हृदय (उत्तर स्थान/अध्याय 9) में उल्लेख है। अमर0 2/4/70 में शेफालिका का परिगणन 'निगुण्डी' के पर्यायों में है। यह गुण में लघु, रूक्ष, रस में तिक्त, विपाक में कटु, वीर्य उष्ण।

यह कफ वात्, पित्तहर, रक्तशोधक, कफघ्न, मूत्रल, ज्वरघ्न, विषघ्न है। सर्प विष में इसकी पत्तियों का रस देते हैं।[2] जीर्ण ज्वर में प्रयोग्य है।

प्रयोज्य अंगः–पत्र, त्वक, स्वरस 10–20मिली0 चूर्ण 1–3 ग्राम,

32. प्रियङ्गुलता (CALLICARPA MACROPHYLLA VAHL)

पर्याय[3]– 'प्रियवल्ली, फलिनी, कंगुनी, प्रिया वृत्ता, गोवन्दनी, श्यामा कारम्भा, वर्णभेदनी आदि इसके 19 नाम हैं,4

प्रचलित नाम[5]– **हि0**–उइया, महिला प्रिय (महिलाएं कानों पर धारण करती हैं।)

कुकूदिनी, फूल प्रियंगु, **बं0**– मठारा **प0**–सुमली

म0–गहुआ **गु0**– घरऊ

प्रसङ्गोल्लेखः– प्रियङ्गु का उल्लेख कतिपय विशिष्ट स्थानों में हुआ है :–

देखो प्यारी! पाले से भरे ठंडे वायु से हिलती हुई यह पकी हुई प्रियङ्गु की लता

---

1. ऋतु0–3/14,शरद्वर्णनम्
2. दृ0गु0वि0अ0–5, पृ0–495
3. ध0नि0–3/15,पृ0–125
4. रा0नि0चन्दानादि वर्ग श्लोक–44–45
5. का0वा0वै0पृ0–237,रा0नि0पृ0–404

वैसी ही पीली पड़ गयी है जैसे अपने पति से अलग होने पर युवती पीली पड़ जाती है।[1] बसन्त ऋतु में मद से अलसाई हुई विलासिनी स्त्रियाँ प्रियङ्गु कालीयक और केसर के घोल में कस्तूरी मिलाकर अपने गोरे–गोरे स्तनों पर चन्दन का लेप कर रही हैं।[2]

निपुणिका, इरावती से कहती है– ध्यान से देखिए स्वामिनी! आपसे ठिठोली करने के लिए स्वामी यहीं कहीं छिपे बैठे होगें। आइए हम लोग भी चलकर प्रियङ्गु के लता मंडप में अशोक के नीचे पत्थर की शिला पर बैठें।[3]

देखो पार्वती! यह उदित होता हुआ चन्द्रमा इस समय प्रियङ्गु फल की तरह लाल–लाल दिखाई दे रहा है।[4]

गुणधर्म/प्रयोगः– आयुर्वेद के अनुसार इसके गुण निम्न हैं5–

प्रियङ्गु शीतला तिक्तः दाह पित्तास्रदोषजित्।

वान्तिभ्रान्ति ज्वरहरा वक्र जाड्यविनाशनी।।

फूल प्रियङ्गु तिक्त रस युक्त शीतल होती है। दाह पित्तविकार व रक्त विकार को जीत लेती है।[6] यह वमन, भ्रम (मूर्छा), ज्वर और मुख की जकड़ाहट नष्ट करती है। बाल रोगों, वृणों पर उपयोगी है।[7]

33. प्रियालमञ्जरी (BUCHANANIA LATRIFOLEA)

कुल– एनाकाडिएसी (ANACARDIACEAE)

पर्याय[8]– स्वस्कन्ध चार बहुवल्कल, स्नेह बीज, अवपुट, ललन और तापस प्रिय ये प्रियाल के पार्यायवाची हैं– **'प्रियालोऽथस्वरस्कन्धश्चारों बहुलवल्कलः,**

स्नेह बीजश्चाव पुटो ललनस्तापसप्रियः।।

प्रचलित नाम[9]:– **हि0**– चिरौंजी, पियाल[10] **ले0**–बुकेननिया लेट्रिफोलिआ, **फा0**– बुकलेखाजा। **ते0**– सारड **कन्न0**–नुरकल **गु0**– चारोली

1. ऋतु0–4/11
2. ऋतु0–6/14
3. माल0–3/12, गद्य
4. कु0सं0–8/61
5. रा0नि0पृ0–404
6. च0चि0अ0–श्यामाकश्चप्रियङ्गुश्च भोजनं रक्तपित्तिनाम्।
7. वनौ0विशे0–4, पृ0–363
8. ध0नि0–5/65,पृ0–216
9. शा0नि0पृ0–473
10. सं0हि0को0–आप्टे, *प्रियालः (प्रिय+अल्+अच्)* पियाल वृक्ष पृ0–695

प्रसङ्गोल्लेखः–कवि ने बसन्त वैभव वर्णन में प्रियाल का उल्लेख किया है,–

आँखों में प्रियाल के फूलों के पराग के उड़–उड़ कर पड़ने से जो मतवाले हिरण भली–भाँति देख नहीं पा रहे थे वे वन में इतस्ततः दौड़ रहे थे।[1]

गुणधर्म/प्रयोगः– **प्रियालं मधुरं स्निग्धं बृहणं वात पित्तजित्**

प्रियाल मधुर स्निग्ध, पुष्टिकारक और वात पित्त नाशक है। इसके प्रयोज्य अंग, त्वक्, बीज, मज्जा हैं।[2] इसका मुख्य प्रयोग रक्त विकार हृदय दुर्बलता, मूत्रकृच्छ, कुष्ठ दाह, वातव्याधि, त्वचा विकारों में होता है।[3]

34. बन्धूक पुष्प (PENTAPETS PHORINCEA)

पर्याय[4]– बन्धूक, बन्धुजीव, रक्त माध्याह्निक आदि पर्याय हैं–

'बन्धूको वन्धुजीवश्च रक्तोमाध्याह्निकोपिच।

प्रचलित नामः–

हि0– दुपहरिया, गेजुनिया, **बं0**– बान्धुलिफुलेरगाछ **तै0**– नितिमल्ली

गुणधर्म/प्रयोग[5]:– दुपहरिया, मलरोधक किंचितगरम, भारी, ज्वरनाशक, वात पित्त, पिशाच बाधा और ग्रह बाधा को दूर करता है–

स्याद्बन्धुजीवकोग्राहीकिंचदुष्णो गुरुर्मतः।

कफकृज्जवरहृद्वातपित्तेचैवविनाशयेत।।

पिशाचग्रहबाधांचनाशयेदितिकीर्तितः।।

इसका फूल चार प्रकार का होता है–नीला, श्वेत, पीला और लाल।

प्रसङ्गोल्लेखः– कवि ने इसके बारे में निम्नवत् वर्णित किया है–

सुन्दरी! बहुत दूर पर सूर्य की हल्की सी झलक दिखाई पड़ने से पश्चिम दिशा उस कन्या के समान लग रही है जिसमें अपने माथे पर केसर से भरे बन्धु जीव के फूल का तिलक लगा रखा हो।[6]

---

1. कु0सं0–3/31
2. ध0नि0पृ0–217,शा0नि0पृ0–473
3. वनौ0विशे0–4पृ0–60, सु0सू0–46,च0सू0–27
4. शा0नि0पृ0–387
5. शा0नि0पृ0–388, वनौ0विशे0–4,पृ0–20
6. कु0सं0–8/40

दुपहरिया पुष्पों से लाल बनी हुई धरती किसका मन आकर्षित नहीं करती है।[1] जब परदेश गये व्यक्ति नील कमलों में प्रिया की आँखें, मस्त हंसों की ध्वनि में करधनी की रूनझुन और बन्धुजीव के फूलों में उनके निचले ओठों की चमकती हुई सुन्दरता की चमक पाते हैं तो सुधबुध खोकर रोने लगते हैं।[2]

शरद ऋतु बन्धूक पुष्पों की लाली छोड़कर स्त्रियों के निचले ओठों में जा समाई है।[3]

35. बकुल वृक्ष (MIMUSOPS ELENGI)

नाम[4]– **हि0**–मौलसिरी **लै0**– मिमुसाप्स इलेंगी

अं0– सुरीनामेडलर (SURINAM MEDLAR)

पर्याय[5]:– **बकुलः सीधुगन्धश्च मद्यगन्धोविशारदः।**

मधुगन्धो गूढपुष्पः शीर्षकेशरकस्तथा।।

सीधुगन्ध, मद्यगन्ध, विशारद मधुगन्ध गूढपुष्प एवं शीर्षकेशर वकुल के पर्याय है।

गुण व औषधीय प्रयोगः– बकुलपुष्प रस में मधुर, कषाय, गुण में स्निग्ध तथा संग्राही होते हैं। इसका फल दाँतों को स्थैर्य प्रदान करने वाला एवं विशद होता है।[6]

प्रसङ्गोल्लेखः–कवि ने रघुवंशम् व ऋतुसंहारम् में इसका नामोल्लेख किया है–

1. अरी मधुर भाषिणी! अपने श्वास के समान सुगन्ध वाले मौलासिरी के फूलों की जो सुन्दर माला तुम मेरे साथ बैठी गूँथ रही थी उसे अधगुँथी ही छोड़कर क्यों पड़ी सो रही हो।[7]
2. वकुल के जो वृक्ष सुन्दरी स्त्रियों के मुख की मदिरा के छीटे से फूल उठे थे, उन पर भौंरे गुंजार कर रहे थे।[8] जैसे वकुल वृक्ष स्त्रियों के मुख का आसव पाने को तरसा करता है उसी प्रकार अग्निवर्ण भी उनके मुह का आसव पीता था।[9] जैसे कोई प्रेमी अपनी प्यारी के लिए आभूषण बनाये, उसी प्रकार वर्षा ऋतु मानो प्रमिका हेतु मौलासिरी के माला बना रहा था।[10]

---

1. ऋतु0–3/5
2. ऋतु0–3/26
3. ऋतु0–3/27
4. शा0नि0पृ0–373
5. ध0नि0–5/142
6. मधुरं च कषायं...। ध0नि0–5/45,पृ0–243
7. रघु0–8/64
8. रघु0–9/30
9. रघु0–19/12
10. ऋतु0–2/25

36. बिम्बाफल (MOMORIDICA MONODELPHA)

पर्याय/नाम[1]– पालङ्, कय्याकुन्दरूः, कुन्दुः, सौराष्ट्री, शिखरी, रक्तफल।

हि0–कुंदरू, **ले0**–मोमोर्डिका मोनोडेल्फा

गुण– आयुर्वेदोनुसार यह मधुर, कड़वा, तीक्ष्ण, त्वाचा को हितकारी चरपरा तथा ज्वर, पसीना, ग्रहबाधा, मुखरोग दूर करता है। शोढलनिघंटु में कहा गया है–

'शर्करासहितं मेहं वृषणस्यव्यथाहरेत्'।

कुन्दरू शर्करा युक्त प्रमेह रोग और अण्डकोष की पीड़ा दूर करती है।

प्रसङ्गोल्लेखः–इसका उल्लेखकवि ने स्त्रियों के अधरोष्ठ की उपमारूप में किया है।[2]

37. भूर्जत्वचः (BETULA UTILISD DON)

कुल–भूर्ज, बेटुलेसी (Betulaceae)

पर्याय/नामः[3]– भूर्जपत्र, भूर्ज, चम्मी, वहुलवल्कल, बहुपुट, लेख्यपत्रक पर्याय हैं–

''भूर्जतत्रस्मृतोभूर्जचर्म्मीबहुल वल्कलः।

हि0– भोजपत्र, **म0**–भूर्जपत्र **अं0**–जेक्वेमोंटी या बर्च (BIRCH)

गुण/प्रयोग[4]:– **भूर्जः कटु कषायोष्णों भूतरक्षा करः परः** – भोज पत्र चरपरा, कषैला, गरम, भूतबाधा को दूर करने वाला, पथ्य तथा दुष्ट, कुटिलता और रक्त पित्त को हरने वाला है। भाव प्रकाश के अनुसार त्रिदोष जन्य विकारों में, व्रणों का प्रक्षालन क्वाथ से करने से कीटाणु नष्ट हो जाते हैं। भूत–बाधा, गृह–दोष में इसका धूप देते हैं। उन्माद, अपस्माद, आक्षेपक, अपतन्त्रक आदि विकारों में यह प्रयुक्त होता है। **'भूर्जो बल्यः कफस्त्रध्नः**– यह बल कारक, कफनाशक व रूधिर के दोषों को दूर करने वाला है।

प्रसङ्गोल्लेखः– कवि कृतियों में भूर्जत्वचः का उल्लेख निम्नवत् है :–

1. हिमालय पर्वत पर उत्पन्न होने वाले जिन भोज पत्रों पर लिखे हुए अक्षर हाँथी की

---

1. शा0नि0पृ0–29 2. उ0मे0–7,22,ऋतु0–2/12 3. शा0नि0पृ0–514, का0का वा0वै0पृ0–255

4. शा0नि0पृ0–514–15,दृ0गु0वि0अ0–9

सूँड़ पर बनी हुई लाल बुँदकियों जैसे दिखाई पड़ते हैं उन्हें विद्याधरियाँ आने प्रेम–पत्र लिखने के काम में लाया करती हैं।[1]

2. उनके पास ही सिर पर नमेरू के कोमल फूलों की माला बाँधे, शरीर पर भोज पत्र लपेटे और मैनसिल के रंग से अपना शरीर रंगे हुए उनके प्रमथ आदि गण शिलाजीत से पुती हुई चट्टानों पर बैठे पहरा देते रहते थे।[2]

38. मल्लिका (JASMINUM SAMBAC AIT.)

कुल–पारिजात (OLEACAE)

मल्लिका के पर्याय[3]– शीतभीरू, मदयन्ती, प्रमोदनी, मदनीया, गवाक्षी, भूपदी, **अष्टपदी–**

''मल्लिका शीतभीरूश्च मदयन्ती प्रमोदनी।
मदनीया गवाक्षी च भूपद्यष्ठपदी तथा।।

प्रचलित नाम[4] :–

हिं0– बेला, मोगरा, **म0**– मोगरा, रायबेल,
गु0–डोलर, **अं0**–डबल जस्मीन (DOUBLE JASMINE)

प्रसङ्गोल्लेखः– कवि ने 'मल्लिका' का उल्लेख रघुवंशम् में किया है :–

बसन्त स्त्रियों के केशों में जा बसा, क्योंकि स्त्रियाँ शाम को फूलने वाली मल्लिका का पुष्प अपने बालों मे धारण करती थी।[5] इस प्रकार कवि ने कहीं–कहीं उपमा रूप मे भी वर्णन किया है।[6]

गुणधर्म/मुख्य प्रयोग [7]:– मल्लिका वीर्य में ऊष्ण, रस में कटु, मधुर, मुख रोगों, नेत्र रोगों तथा पित्त वायु शामक है। इसका मुख्य प्रयोग रक्तज प्रवाहिका, स्तनशोथ, व्रणादि में होता है। घाव में इसके पत्ते पीसकर लगाते हैं।

---

1. कु0सं0–1/7
2. कु0सं0–1/55
3. ध0नि0–5/123,पृ0–134
4. का0 का वा0वै0पृ0–266
5. रघु0–16/50
6. कु0सं0–17/28
7. ध0नि0–5/124–*मल्लिकोष्णा कटुः स्वादुर्दारयत्यास्यजान् गदन्। सन्त्रासयति नेत्रोत्थरूजः पित्तःसमीरजित्।।*

39. मालती (JASMINUM OFFICINALE LINN)

कुल–पारिजात (OLEACAE)

पर्याय[1]:– मालती के 14 नाम हैं :–

जाती सुरभि गन्धा स्यात् सुमना तु सुरप्रिया।

चेतकी सुकुमारा तु सन्ध्यापुष्पी मनोहरा।।

राजपुत्री मनोज्ञा च मालती तैलभाविनी।

जनेश्टा ह्रद्यगन्धा च नामान्यस्याश्चतुर्दष।।

प्रचलित नाम[2] :–

हि0– चमेली, चम्बेली, **फा0**– वासमन,

अं0– जसमिन, स्पेनिश जस्मिन (SPANISH OR COMMON JASMINE)

ले0– जसमीन ग्राण्डी फ्लोरम, (JASMINE GRANDIFLORUM LINN)

प्रसङ्गोल्लेख:– मालती का उल्लेख निम्न सन्दर्भों में हुआ है :–

वर्षा काल मानो जूही की नई–नई कलियों तथा मालती और मौलासिरी के फूलों की मालाा गूँथ रहा हो।[3]

शरद ऋतु में चमूली के फूल वाटिकाओं को श्वेत बना रहे हैं।[4] इस ऋतु में नई मालती के सुन्दर फूलों ने दाँतों की चमक से खिल उठने वाली स्त्रियों की मुसकराहट की चमक को लजा दिया है।[5] यक्ष ने अपनी प्रियतमा की तुलना चमेली के पुष्पों की कोमलता से की है।[6]

इस प्रकार कवि ने मालती का उल्लेचा कोमलता, सुगन्धता, शुभ्रता आदि रूप में उपमान के रूप में किया है।[7]

गुणधर्म/प्रयोग– आयुर्वेदिक निघण्टुओं के अनुसार चमेली के गुण है :–

'मालती शीत तिक्ता स्यात् कफहनी मुखपाकनुत्।

कुड्मलं नेत्ररोगघ्नं व्रण विस्फोटकुष्ठनुत।।

---

1. रा0नि0करविरादिवर्ग–74–75,पृ0–311–12 2. का0वा0वै0पृ0–270 3.ऋतु0–2/25

4. ऋतु0–3/2 5. ऋतु0–3/18 6. उ0मे0–40 7. अभि0शा0अंक–1,माल0अंक–3 गद्य

चमेली तिक्तु शीतल, कफनाशक, मुखपाक निवारक, नेत्ररोग, फोड़िया, एवं कुष्ठ रोग निवारक है।[1] नपुंसकता, रजोरोध, तथा दन्तशूल में इसकी पत्तियाँ चबाते हैं।[2]

40. मधूक (MADHUCA INDICA J.F.GMEL)

पर्याय[3]– **मधूको मधुवृक्षच्च मधुष्ठी लोमधुस्रवः।**

गुड़पुष्पो रोघ्रपुष्पो वानप्रस्थोथ माधवः।

मधूक, मधुवृक्ष, मधुष्ठील, मधुस्राव, गुड़पुष्प, रोध्र पुष्प, वानप्रस्थ, माधव आदि पर्याय हैं।

प्रचलित नाम[4] :– **हि0**– महुआ, जलमहुआ, **अं0**–इलूपाट्री (ELLOOPATREE)

ले0– बेसिया लाटिफोलिया (BASSIA LATIFOLIA)

प्रसङ्गोल्लेखः– कवि ने महुए का उल्लेख माङ्गलिक प्रसंगों में किया है इन्दुमती स्वयंबर में दूब से गुँथी महुए की माला,[5] तथा लगन मंडप पर बैठी हुई पार्वती के जूड़े में दूब में पिराई पीले महुए के फूलों की माला लपेट दी।[6]

गुणधर्म/प्रयोगः– **मधूकं रक्तपित्तंघ्नव्रणषोधनरोपणम्।** महुवे की छाल रक्तपित्त नाशक, व्रणशोधक और व्रणरोपण है। तेल–मधुर, पिच्छल, कषेला तथा कफ, पित्त ज्वर दाह और पित्तनाशक होता है।[7]

41. 'मुञ्ज' (SACCHARUM MUNJA ROXB)

कुल– यव, ग्रामिनी (GRAMINEAE)

पर्यायः[8]– **भद्रमुञ्ज, शर, वाण, तेजन, चक्षुवेष्टन।**

प्रचलित नाम[9] :– **हि0**–मूँज, मुञ्ज, भद्रमुञ्ज, **बं0**–मुँज,

गु0–तीरकोस, **ले0**– सैकरममुञ्ज,

गुणधर्म/प्रयोग– मूँज मधुर, शीतल, कफपित्तजदोषनाशक, ग्रह रक्षा और दीक्षा में पवित्र तथा भूतनाशक है। यह रेते या जलाशय के समीप बहुत होते हैं।[10]

1. रा0नि0करविरादिवर्ग–73,प0–312 2. दृ0गु0वि0अ0–2,पृ0–178 3. शा0नि0पृ0–453 4. शा0नि0पृ0–454
5. रघु0–6/25 6. कु0सं0–7/14 7. शा0नि0पृ0–454 8,9,10–शा0नि0पृ0–276

प्रसङ्.गोल्लेख :– पार्वती ने तपस्या के लिए अपनी कमर मे जो मूँज की तिहरी कर के बाँध ली थी, वह उनके कोमल शरीर पर इतनी चुभती थी कि वह काँप उठती थी उनकी कमर लाल पड़ गयी थी।[1]

42. 'यव' (HORDEUM HEYASTICUM)

पर्याय/नाम[2]:– यव, मेध्य, सितशूक, दिव्य, अक्षत, कंचूकि, धान्यराज, तुरगप्रिय।

हि0– जौ, **अं0**– बिटरवार्ली(BITTERBARLEY)

ले0– HORDEUM HEYASTICUM

गुण/प्रयोगः– यह तीन प्रकार के होते हैं – शूक, निःशूक और हरित वर्ण,

'यवः कषायोमधुरः शीतलोलेखनोमृदुः– जौ कसैले, मधुर, शीतल, लेखन, मृदु वृण रोग में तिल के समान हितकारी रुखे, मेधा अग्निवर्धक होते हैं।[3]

प्रसङ्.गोल्लेखः– कवि ने इस धान्य का उल्लेख यवाङ्.कुर, यवप्ररोहः, तथा अक्षत नाम से किया है जो निम्नवत् है–

1. दूब, जौ के अंकुर प्लक्ष छाल, महुवे के फूल दोनों में रखकर कुल के वृद्धों ने राजा अतिथि की आरती की।[4]
2. पार्वती जी के कानों पर लटकते हुए जौ के अंकुर और लोघ्र तथा गोरोचन लगे हुए गोरे गाल सबको आकर्षित करते थे।[5] चन्द्रमा की निखरती हुई नई किरणें नये और कोमल जौ अंकुरों के समान कोमल प्रतीत होती है।[6]
3. इसी प्रकार कुमारसंभवम् में ही कवि ने पुष्प, दूब, अक्षत आदि पूजा सामग्री[7] तथा बालक के सिर पर दूब, अक्षत, छिड़ककर उसे गोद में उठाने का[8] वर्णन है।

43. 'यूथिका'(JASMINE ORICULATUM)

पर्याय/नाम[9] :– वालपुष्पा, बहुगन्धा, शिखण्डी, गणिका, गुणोज्ज्वला ये यूथिका के पर्याय हैं। **हि0**– जूही, **ले0**– जस्मिनम आरिकुलेटम।

1.कु0सं0–5 / 10 2,3–शा0नि0पृ0–610,धान्यवर्गः 4 रघु0–17 / 12 5. कु0सं0–7 / 17
6. कु0सं0–8 / 62 7. कु0सं0–10 / 45 8. कु0सं0–11 / 35 9. ध0नि0–5 / 136–137

गुण/मुख्य प्रयोग[1]:–'यह रस में मधुर, शर्करा को दूर करने वाली तथा सुगन्धित होती है। इसका प्रयोग रक्तपित्त, मुख दन्त, नेत्र एवं शिरोरोग में है।

प्रसङ्.गोल्लेखः– कवि ने वर्षा ऋतु प्रसंग में जूही की नई–नई कलियों, मालती व वकुल पुष्पों द्वारा माला गूंथने का उल्लेख किया है।[2]

44. लवङ्गम् (SYZYGIUM AROMATICUM LINN)

पर्याय/नामः[3]– देवकुसुम, भृङ्गार, शिखर, लव, दिव्य, चन्दन पुष्प, श्री पुष्प और वारिसम्भव ये लवङ्ग के पर्याय हैं।

हि0 – लौंग, लवंग, **अं0**– क्लोवस (CLOVES) **म0,गु0**–लवङ्ग

ते0–कारावल्लु **ता0**–किराम्बू

प्रसङ्गोल्लेखः– कलिंग नरेश हेमाङ्गद को दिखाते हुए सुनन्दा इन्दुमती से कहती है :– तुम चाहो तो इनके साथ विवाह करके समुद्र को उन तटों पर जा विहार करो जहाँ, दिन रात ताड़ के जंगलों की फड़फड़ाहट सुनाई देती रहती है। वहाँ जब तुम्हें पसीना हुआ करेगा तब लौंग के फूलों की सुगन्ध में बसा हुआ, दूसरे द्वीपों से आता हुआ शीतल पवन ही तुम्हारा पसीना पोंछता रहा करेगा।'[4]

गुण एवं औषधीय प्रयोग[5] :– लवङ्ग का फूल हृदय के लिए हितकर, वीर्य में पित्त का नाश करने वाला, नेत्रों के लिए हितकर, विष को दूर करने वाला, वाजीकरण, शिरो रोग हरने वाला और मङ्गल कारक होता है।[6] लौंग पीसकर पानी में घोलकर लगाने से सिर दर्द ठीक हो जाता है।[7]

मुख्य आमयिक प्रयोग :– अरुचि श्वास, कास, मुखरोग, दन्त शूल, वृण रोपण और दुर्गन्ध नाशन हेतु होता है।

---

1. **यूथिका युग्लं स्वादु शकर्राघ्नम् सुगन्धि च।** ध0नि0पृ0–238 2. ऋतु0–2/25

3. ध0नि–3/39, शा0नि0पृ0–132,वैज0को0–3/8 – *लवंग देवकुसुमं श्री संज्ञं च वरालकम्*

4. रघु0–6/57 5, ध0नि0–3/40–**लवङ्गंकुसमंह्रद्यं शीतलं पित्त नाशनम्। चक्षुष्यं विषह्रत् वृष्यं माङ्गल्यं मूर्धरोगह्रत।।**

6. शा0नि0पृ0–33–34 7. नि0सु0सौ0विशे0–पृ0–88

45. लवली (LOVELY)

अभिधान कोश पृ0–168. के अनुसार लवली एक फल विशेष है जिसे हरफा–रेवड़ी कहते हैं। लवली संज्ञा वैदिक साहित्य में दृष्टिगोचर नहीं है और परवर्ती कौटिलीय अर्थशास्त्र में भी यही स्थिति है। तथापि आचार्य पाणिनि इस पद से परिचित प्रतीत होते हैं। अष्टाध्यायी में 'लवल' पद 'गौरादि–गणपाठ' (पाणिनि 4/1/41) में परिगणित है सूत्र के आदेशानुसार 'लवल' पद में 'ङीस' प्रत्यय लगार 'लवली' पद की संसिद्धि का संकेत किया गया है।

आयुर्वेदीय संहिताओं में चरक (सूत्र0अ0 27) तथा सुश्रुत संहिता (सूत्र0अ0 46) में लवली का फल वर्ग में उल्लेख किया गया है। चरक संहिता में इसे कषाय रस वाला, विशद गुणयुक्त, सुगन्धियुक्त, रूचिकारक कहा गया है। इसका विनिश्य हरफारेवडी नामक अम्लफल से किया जाता है। जो छोटे आंवले के आकार प्रकार का तथा स्वाद मे अत्यन्त खट्टा होता है। सुश्रुत संहिता के मध्य युगीन विद्वान टीकाकर आचार्य डल्हण ने लवली फल को सुगन्धिफल बताया है।[1] किन्तु आज के ज्ञान विज्ञान के परिप्रेक्ष्य में निश्चित रूपेण यह कहना सम्भावित नहीं है।

'कषायं कफ पित्तं च किंचितिक्तं रूचिप्रदम्।

हृद्यं सुगन्धि विशदं लवली फल मुच्यते।। 89।।[2]

कालिदास ने उर्वशी के मुख को लवली पत्र के समान पीला बताया है।[3]

46. लोघ्रः (SYMPLOCOS RACEMOSA ROXB)

पर्याय/नाम[4]– लोघ्र के मुख्य आठ पर्याय हैं – लोघ्र, शाबरक, तिल्वक, तिलक, तिरीटक, काण्डहीन, भिल्ली और शबरपादप।

हि0–लोध, **ले0**–सिम्प्लोकस रेसिमोसा **(SYMPLOCOS RACEMOSA)**

प्रसङगोल्लेखः– कवि ने लोघ्र का उल्लेख सौन्दर्य–प्रसाधन उपमाओं के रूप में निम्नवत् किया है :–

---

1. **घनस्निग्धा हरितांशुः प्रपुन्नाटसदृकच्छदा। सुगन्धिमूला लवली पाण्डुकोमलवल्कला।।** अमर0 (रामाश्रयी टीका)

2.सु0सं0पृ0–228–29 3.वि0उ0–5/8 4. ध0नि0 3/155

नन्दिनी परं सिंह को राजा दिलीप ने गेरू के पर्वत पर लोघ्रवृक्ष के समान देखा।[1]
गर्भिणी होने से रानी सुदाक्षिणा का मुख लोघ्र पुष्प समान पीला पड़ गया।[2]
अलकापुरी की स्त्रियों के कपोलों में शुभ्रता लोघ्र पुष्पों के कारण आती थी।[3]
हेमन्त ऋतु आ गई है क्योंकि गूहँ में अंकुरण हो गया, लोघ्र वृक्ष पुष्पित हो गये हैं। धान पक चला है और कमल दिखाई नहीं देते हैं।[4]

गुण और औषधीय प्रयोग :— लोघ्र वीर्य में शीत तथा रस में कषाय होता है यह तृष्णा आरोचक तथा विषशामक है। मुख्य प्रयोग शोथ, कर्णस्राव, अतिसार, प्रदर में लाभदायक है।[5]

47. विद्रुम (प्रवालम्) (CARALLIUM RUMTUM)

पर्याय/नाम[6]— विद्रुम, रक्त, भूषणार्ह, सुवल्लिज, समुद्रज, महारक्त, वल्ली पाषाण सम्भव ये हैं। **हि0**— मूँगा, **अं0**— CORAL

ले0— केरेलियमरूब्रम (CARALLIUM RUMTUM)

गुणधर्म/प्रयोग[7]— अच्छे मूगे में सात गुण एवं दोष होता हैं। आयुर्वेदोनुसार यह सारक वीर्य में शीत कफ पित्तशामक नेत्र रोग एवं विष प्रभाव दूर करने वाला होता है।

प्रसङ्गोल्लेखः:— इसका वर्णन कवि ने इस प्रकार किया है—

1. पार्वती जी के लाल—लाल ओटों पर फैली हुई मुस्कराहट का उजलापन ऐसा सुन्दर लग रहा था, जैसे स्वच्छ मूँगे के बीच में मोती लाकर जड़ दिया हो।[8] बसन्त ऋतु मूंगे जैसी लाल—लाल कोमल पत्तों की ललाई दिखाकर, कामिनियों की कोपल जैसी कोमल और लाल हथेलियों को लजा रहा है।[9] कहीं—कहीं इसका उल्लेख केवल कोंपल, किसलय अर्थ में हुआ। कुमारसंभवम् 7/7 में प्रवाल का अर्थ सरसों के दाने के रूप में भी किसी—किसी अनुवादक ने किया है, जो आप्टे कोशानुसार त्रुटिपूर्ण है।[10]

---

1. रघु0—2/29
2. रघु0 3/2
3. उ0मे0—2
4. ऋतु0—4/1
5. ध0नि0पृ0—160
6. ध0नि0—6/56,पृ0—256
7. ध0नि0—6/59,पृ0—256
8. कु0सं0—1/44,
9. ऋतु0—6/31
10. सं0हि0को0पृ0—667,कु0सं0—5/34, 3/8, रघु0—6/12, 13/49

48. वटः (FICUS BENGALENSIS)

प्रचलित नाम[1] :— **हि0**— बरगद **म0,गु0**—वड़ **अं0**— वैनियम (Banyam)

ले0—फाइकस बेंगालेंसिस (FICUS BENGALENSIS) **बं0**— वट

पर्याय[2]— **वटोरक्तफलः शृङ्गी न्यग्रोधः स्कन्धजो ध्रुवः।**

क्षीरी वैष्णवणावासो वहुपादो वनस्पतिः।।

प्रसङ्गोल्लेखः— रावण को मारकर सीता को लेकर लौटते हुए राम अत्रि आश्रम में लगे वट वृक्ष को दिखाते हुए सीता से कह रहे हैं—

त्वया पुरस्तादुपयाचितो यः सोऽयं वटः श्याम इति प्रतीतः।

राशिर्मणी नामिव गारुडानां सपद्मरागः फलितो विभाति।।

यह काला—काला वही बरगद का वृक्ष है जिसकी तुमने मनौती मानी थी। इसमें जो लाल—लाल बड़ पीपलियाँ फली हैं उनसे यह पेड़ ऐसा लग रहा है जैसे नीलम के ढेर में बहुत से लाल लाकर भर दिए हों।[3]

वट के गुणधर्म[4] :— वट वीर्य में शीत, रस में कषाय, स्तम्भन, रूक्षण तथ तृष्णा, वमन मूर्च्छा और रक्तपित्त का नाश करने वाला होता है।

मुख्य प्रयोग[5]:— प्रमेह, अतिसार, प्रवाहिका, रक्त पित्त, रक्त श्वेत प्रदर, गर्भ स्थापन, सन्धिशोध, कर्णस्राव, दन्तशूल तथा स्तन शैथिल्य में उपयोगी है। औषधीय प्रयोज्य अङ्ग पत्र, फल, जटा, त्वक, क्षीर, शुङ्ग।

वट के त्वक् का क्वाथ और दुग्ध प्रमेह में, केवल दुग्ध सन्धि शोथ, आम वात, कर्णस्राव, दन्त शूल, नेत्र रोगों में, वट जटा का लेप स्तन शैथिल्य व चर्म रोगों में वट शुङ्ग का विशेष प्रयोग स्त्रियों में गर्भ स्थापनार्थ करते हैं।[6] यथा

'गर्भदं वट शुङ्गं तु पिबेद् बन्ध्या रजस्वला।

वारिणा शुक्लपक्षे हि पुष्येण च समाहृदम्।। शो0नि0।।

1,2. ध0नि0—5/69,आम्रादिवर्ग 3. रघु0—13/53

4. ध0नि0—5/70—वटःशीतः कषायस्च स्तम्भनोरूक्षणात्मकः। तथा तृष्णाछर्दिमूर्च्छारक्तपित्त विनाशनः।।

5,6 ध0नि0पृ0—218 में उद्धृत

49. श्यामाक (ECHINOCHLOA FUMENTACEA LINK)

कुल– यव (GRAMINEAE)

प्रचलित नाम[1]**– हि0**– सांवा, **म0**– सामक,

अं0– लिटिल मिलेट (LITTLE MILLET) **फा0**– शामाख

पर्याय[2]– इसके पर्याय निम्न हैं– तृण वीज, मुनिभक्ष्य, गवाम्प्रिय, सुकुमार, राजधान्य और तृण बीजोंत्तम।

प्रसङ्गोल्लेखः– अभिज्ञान शाकुन्तलम् के चतुर्थ अङ्क में शकुन्तला विदा के समय कण्व द्वारा इस धान्य का उल्लेख हुआ है। "**श्यामाक मुष्टि परिवर्धितको जहाति......** मुट्ठी भर श्यामाक के दानों से पला हुआ पुत्र के समान यह प्यारा हिरण तुम्हारे मार्ग को रोके हुए खड़ा है।[3] रघुवंशम् में यम के इसी नाम वाले शस्त्र का उल्लेख है।[4]

गुण एवं प्रयोग[5]**:**– आयुर्वेदों में श्यामाक के गुणों पर कहा गया है :–

श्यामाको मधुरः स्निग्धः कषायो लघु शीतलः।

वातकृत्कफपित्तघ्नः सङ्ग्राही विषदोषनुत।।

यह मधुर स्निग्ध, कषाय, लघु, वीर्य में शीत, कफ, पित्त का शामक संग्राही एवं विषदोष का नाश करने वाला है। इसका मुख्य प्रयोग विबन्ध एवं पित्त जन्य विकारों में होता है।

50. शिरीष (ALBIZZIA LEBBECK BENTH)

कुल (FAMILY) – शिम्बी कुल (LEGUMINOSAE)

प्रचलित नाम[6]– **हि0**– सिरसे, सिरिस, **बं0**– शिरीष,

अं0– दि शिरीष ट्री (THE SIRISH TREE)

ले0– एल्बिजिया लिबेक
(ALBIZZIA LEBBECK BENTH) & OTHER ALBIGGEA SPP.

---

1. का0वा0वै0पृ0–334 में दृष्टव्य
2. ध0नि0–6/77,पृ0–261
3. अभि0शा0–4/14
4. रघु0–12/95
5. ध0नि0–6/78
6. का0का वा0वै0पृ0–326, वनौ0विशे0–4,दृष्टव्य

पर्याय[1] :– **'शिरीषों, मृदुपुष्पश्च भाण्डिकः शङ्खिनी फलः।**

कपीतनः शुकतरुः श्यामवर्णः शुकप्रियः ।।102।।

प्रसङ्गोल्लेखः– शिरीष संस्कृत काव्यों का भी बहु मान्य एवं चर्चित श्रृङ्गारी वृक्ष है। कालिदास ने विभिन्न सन्दर्भों में शिरीष का बहुशः उल्लेख किया है। इनसे शिरीष पुष्प के स्वरूप स्वभाव, रंग एवं कर्णाभरण रूपिक[2] मान्यता आदि की विशिष्ट सूचनाएं मिलती हैं। कवि ने बहुशः प्रयोग अङ्गों की कोमलता के सन्दर्भ में भी कियाहै।[3]

गुणधर्म एवं प्रयोगः– यह पुष्प, तिक्त, वीर्य मे उष्ण, विषघ्न, वर्णकर, त्रिदोष शामक व लघु होता है। यह कन्डू, त्वचागत दोष, श्वास और कास का नाश करने वाला होता है। त्वचागत दोष, रतौंधी में इसका मुख्य प्रयोग होता है।[4]

51. हरिचन्दन (PTEROCARPUS SANTALINUS LINN.)

कुल– शिम्बी कुल (लेग्युमिनोसी / LEGŪMINOSAE)

प्रचलित नाम[5]–**हि0**– लाल चन्दन **गु0**–रजांजलि, **ता0**–शिवप्पुचन्दनम्

मल0–तिलपर्णी **कन्न0**–होन्ने **अं0**– Red Sanders

ले0– टेरोकार्पस सेण्टोलिनस (PTEROCARPUS SANTALINUS LINN.)

पर्याय[6]– **" रक्तचन्दनमप्यन्यल्लोहितं हरिचन्दनम्।**

रक्तसारं ताम्रसारं निर्दिष्टं क्षुद्रचन्दनम्।।

संस्कृत काव्यों में हरिचन्दन बहुमान्य एवं बहुचर्चित प्रायशः कवियों ने इसका उल्लेख विभिन्न सन्दर्भों में किया है। संस्कृत कोशों[7] में हरिचन्दन की पूर्व गामी नानार्थक मान्यताओं का संकलन भी मिलता है।

---

1. ध0नि0–5/102,पृ0–227 एवं का0का वा0वै0पृ0–326, वनौ0विशे0–4,दृष्टव्य
2. रघु0–16/48,उ0मे0–2,अभि0 शा0–1/4, 1/28,
3. कु0सं0–1/41, 5/4
4. ध0नि0आम्रादिवर्ग, पृ0–227–228,शा0नि0पृ0–497–498
5,6. ध0नि0–3/4,चन्दानादिवर्ग,पृ0–122
7. क– अमरकोश– **पंचैते देवतरवो मन्दारः पारिजातकः। संतानः कल्पवृक्षष्च पुंसि वा हरिचन्दनः।।** प्रथम काण्ड स्वर्ग वर्ग

   ख– विश्वकोश– **हरिचन्दनमाख्यातं गोशीर्षं सुरपादपे।** ग– मेदिनीकोश– दृष्टव्य अमर0–1/1/50 रामश्रयी टीका।

प्रसङ्गोल्लेखः—कालिदास ने हरिचन्दन का चित्रण शृङ्गारी एवं प्रसाधनिक द्रव्य के रूप में किया है—

मातलि से राजा दुष्यन्त कहते हैं कि :—

देवराज इन्द्र ने उनका अत्यन्त स्वागत किया है। गले में धारित हरिचन्दन लगी मन्दार माला उन्हें पहनाई जिसे पाने को जयन्त भी उत्सुक रहता था।[1] सुनन्दा इन्दुमती से कहती हैः—

"ये पांड्य देश के राजा हैं जिनके कन्धे पर बड़ा सा हार लटका हुआ है और जिनके शरीर पर हरिचन्दन का लेप किया हुआ है। इस वेश में ये उस हिमालय के शिखर के समान सुन्दर लग रहे हैं जो प्रातः कालीन धूप से लाल हो गया हो और जिस पर से अनेक पानी के झरने झर—झर गिरते जा रहे हों।[2]

आयुर्वेदीय गुणोपयोग :— यह रस में तिक्त, वीर्य में शीत तथा रक्षोघ्न है। यह रक्तगत विकार व पित्त प्रकोप का नाश करता है।

''रक्तचन्दनमप्याहु रक्षोघ्नं तिक्त शीतलम्।

रक्तोद्रेकहरं हन्ति पित्त कोपं सुदारूणम्।[3]

मुख्य प्रयोग रक्त विकार, तृष्णा दाह विष एवं नेत्र के लिए होता है।

1. अभि०शा०—7/2— आमृष्ट वक्षो हरिचन्दनाङ्का, मन्दारमाला हरिणा पिनद्धा। 2. रघु०—6/60

3. ध०नि०चन्दनादिवर्ग—3/5,पृ०—123

अध्याय

४

आलोच्य कवि की कृतियों में प्राप्त जलीय वनस्पतियाँ

अध्याय–4

आलोच्य कवि की कृतियों में प्राप्त जलीय वनस्पतियाँ

महाकवि कालिदास जी ने अपनी रचनाओं में मुख्यतः 10 प्रकार की वनस्पतियों का उल्लेख किया है, जो मुख्यतः आलङ्कारिक, उपमा व सौन्दर्यता प्रदर्शन हेतु प्रयुक्त हैं। वैसे तो पारिस्थितिकीय वर्गीकरण के अनुसार पौधों को निम्नवत् वर्गों में बाँटा गया है:–

1. **जलोद्भिद (HYDROPHYTES)**
2. **शुष्कोद्भिद (XEROPHYTES)**
3. **मध्योद्भिद् (MESOPHYTES)**
4. **लवणोद्भिद् (HALOPHYTES)**

इस अध्याय में जलोद्भिद् श्रेणी की वनस्पतियों का वर्णन हैं। जो निम्न हैं :–

1. उशीरम् (खस)
2. कमल– रक्त, नील, श्वेत, भेद युक्त
3. इंदीवर
4. पुण्डरीक
5. कमलिनी
6. कुमुद (रात्रि में विकसित होने वाला कमल भेद)
7. कलम
8. नागरमोथा
9. नीवार
10. पाटल पुष्प
11. माधवी लता
12. शालि / लाजा
13. शैवाल

इनका क्रमशः विस्तृत वर्णन पर्याय, प्रचलित नाम, प्रसङ्गोल्लेख, गुणधर्म, औषधीय प्रयोग, विभिन्न आयुर्वेदिक ग्रन्थों के अनुशीलन पश्चात मैंने लिखा है। वैसे तो कमल

का उल्लेख कवि ने बहुत अधिक किया है विस्तार भय से यहाँ मुख्यतः उल्लेख ही किया गया है।

1. उशीरम् (VETIVERIA ZIZANOIDES LINN)

कुल– यव (ग्रेमिनी / **GRAMINAE**)

वीरणस्य तु मूलंस्यादुशीरंनलदंचतत्।

वीरण (गाँडर) घास की जड़ को उशीर अर्थात् खस कहते हैं।[1] इसके अन्य पर्याय भी हैं जो आयुर्वेद के विभिन्न निघण्टुओं में हैं:–

"उशीरं चामृणालं स्यादभयं समगन्धिकम्।

रणप्रियं वीरतरू वीरं वीरणमूलकम् ।।13।।

अमृणाल, अभय, समगन्धिक, रणप्रिय, वीरतरू, वीर और वीरणमूलक ये उशीरम् के पर्याय हैं।[2] राज निघुण्टु में खस के कुल 19 नाम बताये गये हैं। उक्त के अतिरिक्त शेष नाम हैं– जलवास, हरिप्रिय, मृणाल, वारितर, शिशिर, शितिमूलक, वेणीगमूलक, जलामोद, शुभ्र, सुगन्धि मूलक तथा बालक।[3]

प्रचलित नाम[4]:–

हि0– खस, वीरन, गाँडर, व्याणारमूल, वेणारमूल, वीरणमूलः, पन्ही, पन्नि।

म0– काळावाळा। **ता0**–बेट्टिबेर **गु0**– कालोबालो, **बं0**– खसखस

कर्ना0– वालदेवस जिनांगीणमूल **अं0**– कुस कुस (CUS CUS)

लै0– (ANDROPAGON, MURICATUM) आन्द्रोपागन मूरिकेटम

वानस्पतिक नाम– वेटिवेरिया जिजेनाइडिस् (VETIVERIA ZIZANOIDES)[5]

यह कर्पूरादि वर्ग एवं नैसर्गिक क्रमानुसार यवकुल के एक वीरण (गाँडर) नामक बहुवर्षायु त्रण विशेष की जड़ है। धन्वन्तरि व राज निघण्टुओं में इसे चन्दनादि वर्ग में रखा गया है। कृष्ण (काला) श्वेत आदि भेद से इसकी जातियाँ हैं। इसका तृण कुश के समान होता है। जड़ें जमीन से 2 फीट से भी अधिक गहरी घुसी हुई होती हैं इसमें एक प्रकार की मनमोहक सुगन्ध आती है। इसका कांड 2–5 फुट ऊँचा एवं

1,2. सं0हि0को0आप्टे,पृ0–219,शा0नि0कर्पूरादिवर्ग, पृ0–50 एवं ध0नि0चन्दनादिवर्ग–3 / 13, पृ0–125.
3.रा0नि0चन्दनादिवर्ग–152,153,पृ0–427 4. शा0नि0कर्पूरादिवर्ग, पृ0–51
5. मा0वन0वि0–डॉ0एम0पी0कौशिक,पृ0–758 वनौ0विशे0–2,पृ0–297

समूहबद्ध होता है।[1] इसके पत्ते 1–2 फुट सीधे, लम्बे, पतले, सरकंडे जैसे तथा पुष्पदंड 4–12 इंच लम्बा रक्ताभ पीतवर्ण का होता है। वर्षा काल में यह फूलता–फलता है।

प्रसङ्गोल्लेख

1. खस का उल्लेख कवि ने अभिज्ञान शाकुन्तलम् के तृतीय अङ्क 'विष्कम्भकः' में किया है कण्व शिष्य प्रियंवदा को देखकर सोचता है–

''प्रियंवदे! कस्येद मुशीरानुलेपनं मृणालवन्ति च नलिनी पत्राणि नीयन्ते'।[2] अरी प्रियंवदा ये डंठल वाले कमल के पत्ते, और खस मिला हुआ लेप किसके लिए ले जा रही हो? (सुनने का नाट्य करते हुए) क्या कहा कि शकुन्तला लू लगने से बड़ी बेचैन है, उसके शरीर को ठंडक पहुँचाने के लिए ही यह सब ले जा रही हूँ।

2. काम से पीड़ित राजा दुष्यन्त शकुन्तला को ढूँढते हुए मालिनी तट पर बने लता–मण्डपों में पहुँचता है वहाँ शकुन्तला को देखकर सन्देह करता है कि शकुन्तला मेरी तरह काम ज्वर से पीड़ित है :–

स्तनन्यस्तोशीरं शिथिलितमृणालैकवलयं।

प्रियायाः साबाधं किमपि कमनीयं वपुरिदम्।।

इसके स्तनों पर तो खस का लेप लगाया हुआ है और एक हाँथ में कमल नाल का ढीला कंगन ला बाँधा गया है। पर इतना बेचैन होने पर भी इसका शरीर कुछ कम सुन्दर नहीं लग रहा है। यद्यपि लू लगने और प्रेम में पड़ने पर बेचैनी एक सी होती है किन्तु लू से युवतियों में इतनी सुन्दरता नहीं रहती है।[3]

आयुर्वेदिक महत्व

यह जलोद्भिद(HYDROPHYTES)वनस्पति है। आयुर्वेद में इसके गुण निम्न हैं:–

उशीरं शीतलं तिक्तं दाहक्लान्ति हरं च तत्।

वातघ्नं जवरतृण्मेहनुद्रक्तं हन्ति योगतः।।14।।

उशीरं स्वेद दौर्गन्ध्यं पित्तघ्नं स्निग्धतिक्तकम्।

खस् वीर्य में शीत, रस में तिक्त तथा दाह थकावट वात, ज्वर, तृष्णा, प्रमेह, और रक्त पित्त को दूर करने वाला है। यह पसीना की दुर्गन्ध ओर पित्त शामक एव

1. वनौ0विशे0–2,पृ0–297   2. अभि0शा0–3,विषकम्भकः गद्य   3. अभि0शा0–3/7

गुण मे स्निग्ध है।[1] जल में सुगन्धिकारक[2] विष को दूर करने वाला[3] है। भाव प्रकाश के अनुसार खस–पाचक, शीतल, स्तम्भन, हलकी, कड़वी, मीठी तथा ज्वर, वमन, मद, कफ, पित्त, तृषा, रूधिर दोष, विष, विसर्प, दाह, मूत्र कृच्छ्र और वृणरोग का नाश करने वाला है।[4]

उत्पत्ति स्थान– विशेषकर नदियों और जलीय स्थानों में, दक्षिण भारत, बंगाल, नागपुर मैसूर स्थानों में प्रचुरता से पाया जाता है।

चरक के वर्ण्य, स्तन्यजनन, छर्दिनिग्रहण, दाहप्रशमन एवं तिक्त स्कन्ध के तथा सुश्रुत के सारिवादि ओर पित्त संशमन के गणों में इसकी गणना की गयी है।[5]

रासायनिक संघटन[6]– इसमें एक उड़नशील तैल, राल, रंग दृव्य, एक स्वतन्त्र अम्ल (A FREE ACID) चूने का एक लवण, लोह का आक्साइड तथा काष्ठमय भाग होता है। **प्रयोज्य अंग–** मूल,

प्रयोग– कवि कुल गुरू कालिदास ने 'खस' का औषधीय प्रयोग शकुन्तला की बेचैनी **'दाहप्रशामक'** के रूप में किया है। चरक संहिता में भी 'काम–ज्वर' माना गया है।[7] ज्वर के आठ कारणों में एक 'आगन्तु' कारण भी है। काम ज्वर में ध्यान बहुत अर्थात् जिस वस्तु पर चित्त गया उसी तरफ जम जाता है और प्राणी की श्वास अधिक चलती है–

ध्याननिःश्वासबहुलंलिङ्गंकामज्वरेस्मृतम्।[8]

कामज ज्वर वातज है, इसकी दिलासा देकर, इच्छित वस्तु देकर हर्ष द्वारा शान्ति करना चाहिए। यथा–

आश्वासेनेष्टलाभेन वायोः प्रशमनेन च। हर्षणैश्चशमं यान्ति काम शोक भयज्वराः।[9]

इसी कारण से कवि ने प्रियंवदा व अनुसूया के द्वारा बार–बार दिलासा आश्वासन दिलाया है। चरकाचार्य जी ने लिखा है–

पाठामुशीरं सोदीच्यंपिबेद्वाज्वरशान्तये।[10] पाढ़ और खस आदि को ज्वर शान्ति हेतु पान

---

1. ध0नि0चन्दनादिवर्ग–3/14,पृ0–125
2. रा0नि0चन्दनादिवर्ग–154
3. शा0नि0पृ0–51,कर्पूरादिवर्ग
4. उशीरम् पाचनं शीतम्, स्तंभनम् लघुतिक्तकं...। शा0नि0पृ0–51 में उद्धृत
5,6. वनौ0विशे0–2,पृ0–298
7. च0सं0चि0अ0–3,में दृष्टव्य
8. च0सं0चि0अ0–3/74 (ज्वर चिकित्सित)
9. च0सं0चि0अ0–3/221
10. च0सं0चि0अ0–3/131

करना चाहिए। खस पाण्डुरोग,[1] कास,[2] तृष्णा,[3] दाह, त्वचा के रोग, मसूरिका तथा अति प्रस्वेद रोकने के लिए इसे महीन पीसकर बार–बार लेप किया जाता है। इसका शीत निर्यास उत्तेजक, अग्निदीपक, पित्तज्वर को शान्तकर पौष्टिक तथा ऋतुस्राव नियामक है। कुछ अन्य प्रयोग भी हैं–

हैजा की वमन पर– इसके इत्र की 2 बूँदें बताशे में भरकर खिलाते हैं।

मूत्रावरोध पर– इसके चूर्ण में मिश्रीचूर्ण मिला पानी के साथ बार–बार देते हैं।

दाह पर– इसके साथ 'गुलाब पुष्प की कली तथा कचोरा समभाग पीस कर मिश्री मिला चावल के धोवन के साथ श्वेत चन्दन को पीसकर लेप करते हैं। बच्चों के रक्तातिसार या अन्य अतिसार कास श्वास और वमन पर इसके चूर्ण के साथ मिश्री और शहद मिला बार–बार चटाते हैं।

हृदय शूल पर– इसके चूर्ण के साथ समभाग पीपला मूल का चूर्ण मिला 2 माशे दिन में 3 बार गौघृत के साथ चटाते हैं।

सिर दर्द पर– तीव्र पीड़ा होने पर इसमें लोभान मिश्रित कर चिलम में भरकर या सिगरेट बनाकर धूम्रपान कराते हैं।

त्वचा पर कंण्डुयुक्त बारीक फुंसियाँ उठने पर– इसके साथ नागरमोथा और धनिया को जल में पीस कर लेप करते हैं।[4]

खस के विशिष्ट प्रयोग[5]– उशीराशव, उशीराद्य तैल, उशीरादि चूर्ण।

जो खस दीर्घ मूल वाली, दृढ़ पतली अपनी विशिष्ट गंध से युक्त साधारण देश में उत्पन्न होती है वह उत्तम मानी जाती है–

''दीर्घ मूलं दृढं सूक्ष्ममुत्तमं गन्ध संयुतम्।

देशे साधारणे जातं लामज्जं भद्रकं भवेत।।[6]

इसका इत्र अत्यन्त सूक्ष्म, सुगन्धित तथा उष्ण प्रकृति वालों के लिए विशेष हितकारी होता है।

---

1 च0सं0चि0अ0–20/52
2 च0सं0चि0अ0–22/50
3. च0सं0चि0अ0–24/40
4. वनौ0विशे0–2,पृ0–298
5. ध0नि0चन्दनादिवर्ग,पृ0–125
6. भै0र0–वातव्याधिखंड–386, द्र0गु0वि0अ0–2,पृ0–115–116

2. कमल

(NELUMB NUCIFERA GARTN. & NELUMBIUM ELUMBO)

FAMILY- MYMPHAEACAE

रक्तपद्म (रक्तोत्पलम्)

पर्याय[1]– 'रक्तपद्मं तु नलिनं पुष्करं कमलं नलम्।

राजीवं स्यात् कोकनदं शतपत्रं सरोरूहम्।।

नलिन, पुष्कर, कमल, नल, रजीव, कोकनद, शतपत्र, सरोरूह तथा रविप्रिय[2], अरविन्द शोणपद्म आदि रक्तोत्पल के पर्याय हैं। राजनिघण्टु मे कमल के चौतींस पर्याय बताए गए हैं।[3] तथा इसमें रक्त कमल के आठ नाम बताए गये हैं।

प्रचलित नाम[4]– **सं0**– कमल, पुण्डरीक, रक्तपद्म, नील पद्म, नीलोत्पल

हि0– कमल, सफेद कमल, लाल कमल **गौ0**– पद्म

बं0– पद्म श्वेतपद्म, रक्तपद्म, नीलपद्म, नीलशुन्दि **म0**– कमल

कर्ना0– विलीयतावरे, केदावरे, करियतावरे, नेइदिल **ता0**– अम्वल

अ0– करंबुलमा, बर्दनीलीफर **क0**– विलियता वरे

फा0– नीलुफर, गुलनीलोफर **अं0**–लोटस (LOTUS)

गु0–कमल, धोलाकमल, रातना, उधेडेतेराताकमल कांटाहोय, नीलकमल, सुगन्धीनेताना, **तै0**– कालावा तामर

ले0– नीलम्बियम स्पेसिओजन, नीलंपीयं केरूलिययम् (NELUMBINM-CARRULEUM), नीलवीयं प्युवेसिन्स (NPUBESEINS)

गुणधर्मः– रक्त कमल वीर्य मे शीत, रस में मधुर–तिक्त तथा पित्त के सन्ताप का भेदन करने वाला और रक्त विकार को ध्वंस करने वाला होता है।[5]

कमल के गुण– **कमलं शीतलं स्वादु रक्तपित्तश्रमार्त्तिनुत्।**

सुगन्धि भ्रान्तिसन्ताप शान्तिदं तर्पणं परम्।।75।।

---

1. ध0नि0–4 / 134
2. शा0नि0पू0–4
3. रा0नि0पू0–333
4. ध0नि0–4 / 134, .शा0नि0पू0–4, रा0नि0पू0–333
5. वीर्येरक्तोत्पलं शीतं तिक्तं च मधरं रसे। ध0नि0–4 / 135

कमल शीतल तथा रस में मधुर, रक्तपित्त तथा श्रमपीड़ा को दूर करने वाला है यह सुगन्धित श्रम तथा संताप को शमन करने वाला तथा तृप्ति दायक है।[1]

प्रसङ्गोल्लेख

कमल तथा रक्त कमल का उल्लेख कवि ने बहुशः किया है कुछ प्रमुख प्रसङ्ग निम्नवत् है :-

सिवाल से निरन्तर आच्छादित भी कमल रमणीक होता है। मलिन भी कलङ्क चन्द्रमा की शोभा को बढ़ाता है वल्कल वस्त्र से भी यह तन्वङ्गी! अधिक सुन्दर (दिखाई दे रही) है, सुन्दर आकृति वालों के लिए कौन सी वस्तु आभूषण नहीं होती है (अर्थात् प्रत्येक वस्तु आभूषण होती है।)[2]

इस मेरे गृह में मरकतमणि की शिलाओं से बने हुए सीढ़ियों के मार्ग वाली तथा चिकने वैदूर्यमणि के नाल दण्डों वाले, स्वर्णमय विकसित कमलों से आच्छादित बावड़ी (है) जिसके जल मे निवास करने वाले निश्चिन्त हुए हंस तुम्हें (मेघ को) देखकर भी, समीपवर्ती मानसरोवर का भी उत्सुकतापूर्वक स्मरण नहीं करेंगे।[3]

हे निपुण मेघ! कभी विस्मृत न होने वाले इन (मेरे द्वारा पहले बताये गये) चिन्हों से और द्वार के पास (बगलों में) चित्रित आकृति वाले शङ्ख और पद्म नामक निधियों को देख करके, इस समय मेरे वियोग से निश्चय ही क्षीण कान्ति वाले मेरे घर को पहचान लेना। सूर्य के अस्त होने पर कमल अपनी शोभा को निश्चय ही नहीं बनाये रख सकता।[4] केशों के द्वारा रोके गये नेत्र प्रान्तों की गति वाला, अंजान की चिकनाहट से रहित और मदिरा के त्याग देने से भ्रूसंचालन को भूल जाने वाला, तुम्हारे समीपवर्ती होने पर ऊपर के भाग में फड़कने वाला मृगनयनी का नेत्र मछलियों की हलचल से चंचल कमल की शोभा की समानता को प्राप्त होगा, मैं ऐसी सम्भवना करता हूँ।[5]

वायु से रहित प्रदेश में स्थित कमल की भाँति निश्चल नेत्रों से सुन्दर पुत्र के मुख को तृष्णा पूर्वक देखते हुए राजा दिलीप का पुत्र दर्शन से उत्पन्न महान आनन्द चन्द्र के देखने से महान समुद्र के जल की वृद्धि के समान शरीर के भीतर ठहरने में

1. रा0नि0करविरादिवर्ग–175,पृ0–332 2. अभि0शा0–1/20 3. उ0मे0–16
4. उ0मे0–20,-सूर्यापायेनखलुकमलंपुष्यतिश्वामभिख्याम्। 5. उ0मे0–35

समर्थ न हो सका किन्तु बाहर निकल पड़ा।[1] जैसे सुन्दरता की देवी मुरझाए हुए कमल को छोड़कर नये कमल पर आ जाती है, वैसे ही राजलक्ष्मी भी बूढ़े दिलीप को छोंड़कर धीरे–धीरे रघु पर आ पहुँची।[2]

जब रघु ने अपने राज्य में शान्ति स्थापित कर ली और उनका चित्त ठिकाने हुआ, तभी दूसरी राज्य लक्ष्मी के समान वह शरद् ऋतु आ गई जिसमें चारो ओर सुन्दर कमल खिल उठे थे।[3]

हिमालय की ऊँची चोटियों पर के तालाबों में मिलने वाले कमलों को जब स्वयं सप्तर्षिगण पूजा के लिए अपने सप्तर्षिमण्डल से आ आकर तोड़ ले जाया करते हैं तब उनके चुनने से बचे हुए कमलों को नीचे उदय होने वाला सूर्य अपनी किरणे ऊँची करके विकसित कर दिया करता है।[4]

उन कमल के समान आँखों वाली पार्वती के साँवली घुंडियों वाले गोरे–गोरे दोनों स्तन बढ़कर आपस में इतने सट गये थे कि उनके बीच में इतना भी स्थान नहीं रह गया कि कमल की नाल का एक सूत भी उनमें समा सके।[5]

देवर्षि लोग जिस समय यह कह रहे थे उस समय पार्वती अपने पिता के पास नीचा मुख किए खिलौने के कमल के पत्ते बैठी गिन रही थी।[6] ऋतुसंहारतम में द्वितीय सर्ग से लेकर षष्ठ सर्ग पर्यन्त कमल का भूरिशः वर्णन किया गया है :–

1. फूले हुए कांस की साड़ी पहने मस्त हंसो की बोली के समान झनझनाती हुई पायल पहने, पके हुए धान की तरह मनोहर शरीर वाली और खिले हुए कमल के सदृश मुख वाली शरद् ऋतु नई ब्याही हुई रूपवती बहू के समान आ गई है।[7] कमलों ने तालों को उजला बना डाला है।[8] चाँदी शंख और कमल के समान उजले जो सहस्त्रों बादल पानी बरसने से हल्के होकर पवन के सहारे इधर–उधर घूम रहे हैं।[9] प्रातःकाल पत्तों पर पड़ी हुई ओस की बूँदें छितराता हुआ और कोकाबेल, कमल तथा कुमुद से छूकर ठंडक लेता हुआ धीमें–धीमें बहने वाला पवन किसे नहीं मस्त कर देता है?[10] शरद ऋतु में कमलों को छूता हुआ शीतल पवन बह रहा है।[11] प्रातः जब सूर्य अपने करों (किरणों) से कमल को जगाता है तब वह कमल सुन्दरी युवती

1. रघु0–3/17
2. रघु0–3/36
3. रघु0–4/14
4. कु0सं0–1/16
5. कु0सं0–1/40
6. कु0सं0–6/84
7. ऋतु0–3/1
8. ऋतु0–3/2
9. ऋतु0–3/4
10. ऋतु0–3/15
11. ऋतु0–3/22.

के मुख के समान खिल उठता है और जैसे प्रिय के परदेश चले जाने पर स्त्रियों की मुस्कराहट चली जाती है वैसे ही चन्द्रमा के छिप जाने पर कोई भी सकुचा जाती है।[1] भगवान करे यह कामिनी के समान खिले हुए उजले कमल के मुख वाली फूले हुए नील कमल की आँखों वाली, कोई (कुमुद) के समान सुन्दर शरीर वाली और फूले हुए कांस की साड़ी पहनने वाली मस्त शरद् ऋतु आप लोगों के मन में नई–नई उमंगे भरती चलें।[2]

2. कोई राजा दोनों हाथ से पकड़े गये नालदण्ड वाले हिलते हुए पत्तों से भ्रमरों को दूर करने वाले और भीतर में परागों के मण्डल बाँधते हुए लीला कमल को घुमा रहे थे।[3] सूर्य के नहीं देखने से बन्द कोश वाले (मुकुलित) कमल में चन्द्रमा के समान विदर्भ नरेश की बहन इन्दुमती के हृदय में उसके (सुनन्दा के) उपदेश ने स्थान नहीं पाया।[4]

(कमल के विभिन्न अङ्गों का उल्लेख)

कमल रज (पराग)– कामदेव! पहले कभी एक बार जब भूल से तुमने अपनी किसी दूसरी प्यारी का नाम मेरे सामने ले डाला था, और उस पर मैंने अपने कान में पहले कमल से तुम्हें पीटा था उस समय उसका पराग पड़ जाने से जो तुम्हारी आँखें दुखने लगी थी क्या उसी का स्मरण करके तो तुम मुझसे नहीं रूठ गये हो?[5]

वहाँ देखोगे कि जल–विहार करने वाली युवतियों के स्नान करने से महकता हुआ और कमल पराग गंध से युक्त पवन महाकाल मन्दिर के उपवन को बार–बार हिलाए–झुलाए डाल रहा होगा।[6]

कमल कोष– कुछ दिन व्यतीत होने पर अत्यन्त मोटे और चारो तरफ से नील वर्ण मुख वाले उस सुदक्षिणा के दोनो कुचों ने भौरें से व्याप्त सुन्दर कमल की दो कलियों की शोभा को अपनी शोभा से नीचा कर दिया है।[7]

विसतन्तु–तुम्हारे इस साथी कामदेव के ही कारण तो ये सब देवता और राक्षस तुम्हारे कमल के तन्तु से बनाई हुई डोरी वाले फूलों के बाण वाले धनुष् का लोहा मानते थे।[8]

---

1. ऋतु0–3/25 2. ऋतु0–3/28 3. रघु0–6/13 4. रघु0–6/66 5. कु0सं0–4/8,
6. पू0मे0–37 7. रघु0–3/8 8.कु0सं0–4/29

कमल पत्र– कमल पत्र का वर्णन औषधि रूप में तो कहीं उपमा के लिए कवि नें किया है, यथा– 'गुरू (पिता–मातादि बड़ों) की सेवा से आत्मा को सत्पात्र बनाये हुए और गरुणध्वज की स्पष्ट आकृति (विष्णु तुल्य देह) वाले तथा कमल पत्र सदृश नेत्र वाले पुत्र नामक पुत्र ने उस वशिष्ठ को सत्पुत्र वालों की प्रथम गणना मे रख दिया।[1]

कमल नाल– कामदेव के प्रभाव से बसन्त आने पर हथिनी बड़े प्रेम से कमल के पराग मे बसा हुआ सुगन्धित जल अपनी सूँड में लेकर अपने हाँथी को पिलाने लगी और चकवा भी आधी कुतरी हुई कमल की नाल लेकर चकवी को ले जाकर भेंट करने लगा।[2]

कवि ने कमल का उल्लेख हाँथ पैर, मुख एवं शारीरिक अवयवों के उपमान के रूप में बहुत किया है।

विवरण:– यह पुष्प वर्ग तथा चरक और सुश्रुत के मूत्र विरजनीय एवं उत्पलादि गण का जल में होने वाला सर्व प्रसिद्ध अपनें स्वकुल का एक प्रमुख क्षुप है।

इसमें बसन्त ऋतु (चैत्र, बैशाख) से वर्षाकाल (सावन, भादों) तक फूलों की बहार रहती है। श्वेत लाल और नीले वर्ण के पुष्प होते हैं। प्रातः सूर्योदय पर विकसित होकर सायं सूर्यास्त पर संकुचित होने वाले कमल सूर्य–विकाशी कहलाते हैं। इसके विपरीत चन्द्र विकाशी छोटे कमलया कुमुदनी होती है, जो सायं या रात्रि में चन्द्रोदय पर खिलती और प्रातः बन्द हो जाती है।

रासायनिक संगठन– इसके बीज और मूल में राल, ग्लूकोज, मेटार्बिन, कषाय द्रव (टेनिन) वसा, नेलम्बिन आदि क्षार तत्व पाये जाते हैं।

गुणधर्म– कमल के विभिन्न अङ्गों के गुणधर्म निम्नवत् हैं–

1. पद्मनाल (कमलनाल) के पर्याय/गुणधर्म–

बिस, बिसिनी, मृणाली, मृणालिका, मृणालक, पद्मनाल, तण्डुल और नलिनीरूह ये मृणाल के पर्याय हैं[3]–

बिंस मृणालं बिसिनी मृणाली स्यान्मृणालिका।

मृणालकं पद्मनालं तण्डुलं नलिनीरूहम्।।

---

1. रघु0–18/30 2. कु0सं0–3/37 3. शा0नि0पु0–405–06

मृणालं शिशिरतिक्तं कषायं पित्त दाहजित्।

मूत्रकृच्छ्रविकारघ्नंरक्तवान्तिहरं परम्।।[1]

कमल की नाल शीतल कड़वी, कषेली तथा पित्त, दाह मूत्रकृच्छ्र रूधिर विकार और वमन को हरने वाली है।

कमल की नाल वीर्यवर्धक, पित्त निवारक, रक्त रोग नाशक, स्वादिष्ट, स्तनों में दूध उत्पन्न करने वाली, वात वर्धक, कफ कारक, मलरोधक, मधुर और रूखी है। इसी प्रकार के गुण भसीड़े (पद्मकन्द) के भी होते हैं।

धन्वन्तरि निघण्टु में भी इसके गुण निम्नवत् बताए गये हैं–

'अविदाहि बिसं प्रोक्तं रक्तपित्त प्रसादनम् ।

विष्टम्भि मधुरं रूक्षं दुर्जरं वातकोपनम्।।43।।

मृणाल, दाहक, रक्त पित्त शामक, विष्टम्भकारक रस में मधुर गुण में रूक्ष, पचने में कठिन तथा वात को कुपित करने वाला होता है।[2]

2. कमलकन्द (शालूक) गुण–कमल कन्द (भसीड़े) को खाया जाता है। आयुर्वेदानुसार यह कटु, रूक्ष, रूचिकारक, कफनाशक खाँसी, पित्त तृषा एवं दाह निवारक हैं[3]–

'शालूकं कटु विष्टम्भिरूक्षंरूच्यं कफापहम् ।

कषायकास पित्तघ्नं तृष्णा दाह निवारणम् ।।

3. कमल के कोमल पत्तों (संवर्तिका) के गुण–

कमल के कोमल पत्ते शीतल, कड़वे, कषेले तथा दाह, तृषा, मूत्रकृच्छ्र गुदरोग और रक्त पित्त को दूर करने वाले हैं–

'संवर्तिका हिमातिक्ता कषाया दाह तृट् प्रणुत्।

मूत्र कृच्छ्रं गुदव्याधिरक्तपित्तविनाशिनी।।

इसी कारण अभिज्ञान शाकुन्तलम् के तृतीय अङ्क में शुकुन्तला के दाहात्मक सन्ताप को शान्त करने के लिए खस का लेप और कमल नाल युक्त कमलिनी के पत्ते ले जाये जा रहे थे।[4]

4.बीज कोश के गुण– यह कड़वा् कषेला, मधुर, शीतल, हल्का तथा मुख की

1. ध0नि0करवीरादिवर्ग–4/142 2. ध0नि0–4/143,पृ0–198 3. ध0नि0–4/145

4. अभि0शा0–3,गद्य,पृ0–158

विरसता तृषा, रक्तविकार, कफ और पित्त का नाश करता है[1]–

'पद्मस्यकाणिघ्कातिक्ताकषायामधुराहिमा ।

मुखवैशद्यकृल्लध्वी तृष्णास्त्रक्पित्तनुत् ।।

इसी प्रकार धनवन्तरि निघण्टु में भी बीज कोष के गुण बताए गए हैं :–

स्वादुतिक्तं पदम्बीजं गर्भस्थापनमुत्तमम्।

रक्तपित्त प्रशमनं किञ्चिन्मारूतकृद्भवेत्।।41।।

पद्मबीज रस में मधुर–तिक्त, उत्तम गर्भस्थापन, रक्तपित्त का शमन करने वाला तथा किंचित वात की वृद्धि करने वाला होता है।

5. कमल–केसरः– कमल केसर शीतल वीर्यवर्द्धक, कषेली, मलरोधक तथा कफ पित्त तृषा, दाह, रक्तार्श (रूधिर का बवासीर), विष और सूजन को दूर करता है–

'तृषाघ्नं शीतलंरूक्षं पित्तरक्तक्षयापहम् ।

पदम्केशरमेवोक्तं पित्तघ्नं च कषायकम् ।।47।।

6. मकरन्द गुण–

'अरविन्द ह्रतः शीतोमकरन्दोति बृंहणः।

त्रिदोषशमनः सर्वनेत्रामयनिषूदनः।।

कमल का मधु शीतल अत्यन्त पुष्टिकारक, त्रिदोषनाशक ओर सर्व प्रकार के नेत्र रोगों को दूर करने वाला है।[2]

3. इन्दीवरं (BLUE LOTUS)

नाम/पर्याय[3]– हि0– नीलकमल, नीलोत्पल।

नीलकमल, उत्पल, नीलपद्म, भद्र कुवलय, कुज, इन्दीवर, तामरस, कुवलं कुड्मल सौगन्धिक ये सभी पर्याय हैं।

गुणधर्म[4]:–आयुर्वेदानुसार नील कमल के गुण धर्म निम्नवत् होते हैं:–

'नीलाब्जं शीतलं स्वादु सुगन्धि पित्त नाशनम् ।

रूच्यं रसायने श्रेष्ठं देहदार्ढ्यदकेशदम् ।।

1. ध0नि0–4/147
2. ध0नि0–4/147
3. रा0नि0–करवीरादिवर्ग,पृ0–132 व 180
4. ध0नि0–4/133

नीलकमल वीर्य में शीत, रस में मधुर सुगन्धित तथा पित्त का नाशक होता है। यह, श्रेष्ठ रसायन, शरीर को दृढ़ करने वाला तथा रूचि, केशवर्धक होता है।

प्रसङ्गोल्लेख–नील कमल का उल्लेख कवि ने बहुशः किया है मुख्यतः प्रसङ्ग निम्नवत् है– और फिर ये हैं नीलकमल के समान साँवले और तुम हो गोरोचन जैसी गोरी इसलिए यदि तुम दोनों का विवाह हो जायेगा तो तुम वैसे ही सुन्दर लगोगी जैसे बादल के साथ बिजली।[1]

उन बड़ी–बड़ी आँखों वाली पार्वती की चितवन, आँधी से हिलते हुए नीले कमलों के समान इतनी चंचल थी कि उसे देखकर यही पता नहीं चल पाता था कि यह कला उन्होंने हरिणयों से सीखी थी या हरिणियों ने उनसे।[2]

वर्षा ऋतु में कहीं तो अत्यन्त नीले कमल की पंखुड़ी जैसे नीले कहीं गर्भिणी के स्तनों के समान पीले ओर कहीं घुटे हुए आँजन की पिंडी के समान काले–काले बादल आकाश में इधर–उधर आ छाए हैं।[3]

इन दिनों हंसों ने सुन्दरियों की मनभावनी चाल को कमलिनियों ने उनके चन्द्र मुख की चमक को, नीले कमलों ने उनकी मदभरी आँखों को और छोटी लहरियों ने उनकी भौहों की बाँकी मटक को हरा दिया है।[4]

जो ऋषि इसके सहज सुन्दर शरीर को तपस्या के लिए साधना चाह रहे हैं वे सचमुच नीले कमल की पंखड़ी की धार से शमी का पेड़ काटने पर उतारू बैठे हैं।[5]

कामिनी के समान खिले हुए उजले कमल के समान मुख वाली, फूले हुए नील कमल की आँखों वाली, कोई के समान सुन्दर शरीर वाल और फूले हुए कोस की साड़ी पहनने वाली मस्तशरत् ऋतु आप लोगों के मन में नई–नई उमंगे भरती चले।[6]

4. पुण्डरीकम् (PUNDAREEKA)

प्रचलित नाम–

हि0– श्वेत कमल, पुरइन। **म0**– पाण्डरेकमल, **क0**– विलियतावरे

तै0– तेल्लतामर।

---

1. रघु0–6/65 2. कु0सं0–1/46 3. ऋतु0–2/2 4. ऋतु0–3/17
5. अभि0शा0–1/18 6. ऋतु0–3/28

पर्याय[1]– **पुण्डरीकं श्वेतपत्रं सिताब्जं श्वेतवारिजम्।**

हरिनेत्रं शरत्पद्मं शारदं शम्भुवल्लभम्।।

पुण्डरीक, श्वेतपत्र, सिताब्ज, श्वेतवारिज, हरिनेत्र, शरत्पद्म, शारद तथा शम्भु वल्लभ ये सब श्वेत कमल के नाम हैं।

गुणधर्म[2]– आयुर्वेदानुसार पुण्डरीक वीर्य में शीत, रस में तिक्त मधुर होता है। यह पित्त शामक, दाह, रक्तदोष, शोष, पिपासा और भ्रम का नाश करने वाला होता है–

'पुण्डरीकं हिमं तिक्तं मधुरं पित्त नाशम् ।

दाहघ्नमस्त्रशोषघ्नं पिपासाभ्रमनाशनम् ।।

श्वेतकमल शीतल, मधुर तथा कफ और पित्त नाशक है।

धवलं कमलं शीतं मधुरं कफपित्तजित्।

यह कड़वा कषेला, नेत्रों का हितकारी तथा रूधिर विकार व्रणों ज्वर और सर्व प्रकार के विस्फोटकों को हरने वाला होता है।[3]

प्रसङ्गोल्लेख–पुण्डरीक प्रसङ्ग निम्नवत् हैं :–

शरद–ऋतु भी रघु के छत्र और चँवर को देखकर श्वेत कमल के छत्र और फूले हुए कांस के चँवर लेकर रघु से होड़ तो करने चली, पर सब इतना कुछ करने पर भी वह उनकी शोभा नहीं पा सकीं।[4] जैसे खिले हुए श्वेत कमलों से और कन्या राशि के सूर्य से शरद् ऋतु के प्रारंभिक दिन बड़े सुहावने लगते हैं, वेसे ही खिले हुए श्वेत कमल जैसी आँखों वाले प्रातः काल की धूप के समान सुनहले वस्त्र पहने और ध्यान मग्न योगियों को सरलता से दर्शन देने वाले विष्णु भी बड़े सुन्दर लग रहे थे।[5]

5. कमलिनी (KAMALINI)

पर्याय[6]– मूलनालपत्र और बीजादि संयुक्त, खिले हुए कमल को पद्मिनी या कमलिनी कहते हैं। धन्वन्तरि निघण्टु में इसके पुटकिनी, नलिनी, कुमुद्वती, पलाशिनी, पद्मवती, वनखण्डा और सरोरूहा पर्याय बताए गये हैं।

---

1. रा0नि0–176,पृ0–333
2. ध0नि0,करवीरादिवर्ग–4/131
3. शा0नि0,पृ0–401
4. रघु0–4/17
5. रघु0–10/9
6. ध0नि0–4/139

'पद्मिनी स्यात् पुटकिनी नलिनी च कुमुद्वती।

पलाशिनी पद्मवती वनखण्डा सरोरूहा।।139।।

प्रसङ्गोल्लेख– कमलिनी का उल्लेख मुख्यतः निम्नलिखित प्रसङ्गों में हुआ हैः–

जहाँ अलकापुरी मे वृक्ष सदा पुष्पित अतएव मदमस्त भ्रमरों से गुंजायमान (रहते हैं) कमलिनियाँ सदा कमल पुष्पों से युक्त (अतएव) हंसों की पंक्तियों से बनी हुई रशना (धारण) करने वाली रहती हैं।[1]

मैं विरह वश लम्बे एवं दुःखद इन दिनों के बीतने पर प्रबल विरह वेदना वाली (उस) युवती को पाले से मारी गई कमलिनी के समान विपरीत आकार वाली हुई मानता हूँ।[2]

झरोखों के मार्ग से प्रविष्ट हुई अमृततुल्य शीतल चन्द्र की किरणों को प्रथम प्रीति के सामने गये हुए (और फिर) उसी प्रकार से लौटे हुए नेत्रों को खिन्नता के कारण आँसुओं से भारी पलकों से ढकती हुई, मेंघाच्छन्न दुर्दिन में न (पूर्णतया) विकसित और न पूर्णतया अविकसित अर्थात् अर्द्धविकसित स्थलोत्पन्न कमलिनी के समान उस पतिव्रता मेरी पत्नी को देखना।[3]

कमलिनी के समान अपने कोमल अङ्गों को इस प्रकार की तपस्या से रात–दिन सुखाकर पार्वती ने कठोर शरीर वाले सभी तपस्वियों को लज्जित कर दिया।[4] सुन्दरी! धीरज धरो। अब राक्षसों का कोई डर नहीं रहा। क्योंकि इन्द्र का बल तो तीनों लोकों की रक्षा कर सकता है इसलिए तुम अपनी बड़ी–बड़ी आँखे उसी प्रकार खोल दो जैसे प्रातः काल होने पर कमलिनी अपना फूल खोल देती है।[5]

दोपाहर के समय 'जल कुक्कुट' ताल का गरम पानी छोंड़कर तट पर खिली हुई कमलिनी की छाया में जा बैठा है।[6]

इस (शकुन्तला) का मार्ग कमलिनियों से श्याम वर्ण वाले जलाशयों से मनोहर है मध्य प्रदेश जिनका ऐसा छाया प्रधान वृक्षों से रोक लिया गया है सूर्य की किरणों का ताप जिससे ऐसा, कमलों के पराग के समान कोमल हैं धूलिकण जिनमें ऐसा मन्द और अनुकूल (अर्थात पीछे से बहने वाला) वायु वाला और कल्याणकारी होवें।[7]

गुणधर्म[8]– पद्मिनी शिशिरा रूक्षा कफपित्तहरास्मृता।

---

1. उ0मे0–3
2. उ0मे0–23
3. उ0मे0–30
4. कु0सं0–5/29,वि0उ0
5. वि0उ0–1/6
6. वि0उ0–2/22
7. अभि0शा0–4/11
8. ध0नि0,करवीरादि चतुर्थ वर्ग एवं शा0नि0पुष्पवर्ग,पृ0 402

कमलिनी वीर्य में शीत, गुण में रूक्ष तथा कफ पित्त का शमन करने वाली होती है।–

पद्मिनी मधुरातिक्ताकषायाशिशिरापरा।

पित्त क्रिमि शोषवान्तिभ्रांति सन्तापशान्तिकृत्।

कमलिनी मधुर, कड़वी, कषेली, शीतल तथा पित्त, कृमि, शोष, वान्ति, भ्रांति और सन्ताप की शान्ति करने वाली है। और भी यह भारी रक्त विकार विष, वमन कृमि व संताप हारक है।

कमल के औषधीय प्रयोग– भैषज्य रत्नावली, निघण्टु ग्रन्थों एवं वनौषधि विशेषाङ्कों के अनुसार कमल के विभिन्न अङ्कों के विशेष प्रयोग निम्नवत् हैं :–

1. पुष्प– यह शीतल, दाहशामक, हृदय वलवर्धक और रक्त संग्राही है। यह डिजिटेलिस के समान ही प्रायः हृदय और छोटी रक्तवाहिनियों पर कार्य करता है। इसके सेवन से हृदय की गति शान्त होती है। यथा काम ज्वर शान्ति हेतु अभिज्ञान शाकुन्तलम् के तृतीय अङ्क में कवि ने प्रयोग किया है।

(I) **रक्त पित्त रक्त स्राव आदि विकारों पर–** लाल कमल के पुष्पों का फांट

(II) **हृदय की अत्यधिक धड़कन–** पुष्पों का फांट

(III) **ज्वरातिसार और ज्वर में–** नीलोफर पुष्प केशर अनार छाल, चावल धोवन के साथ प्रयोग।

(IV) **योनि शैथिल्य–** नाल सहित एक कमल पुष्प कूटकर फिटकरी साथ खरल कर बत्ती बना योनि पर धारण करें। (रात्रि में)

(V) **सिरदर्द विसर्प तथा त्वग्गत अन्यान्य प्रदाह युक्त विकारों पर–** कमल पुष्प साथ कोमल पत्र श्वेत चन्दन और आमला पीसकर प्रलेप

विशेष योग– फूलों का शर्बत, पद्म मधु

2.पुष्प–केशर– शीतल, रूक्ष, गर्भ स्थापक होता है। अतः इसका प्रयोग ऊष्मा या दाह पर, रक्तार्श पर, अत्यधिक रक्तस्राव पर होता है।

3.कमल–पत्र– कमल पत्तों की तथा कमल नाल को तोड़ने से जो दूध जैसा चिपचिपा रस निकलता है वह अतिसार मूत्रकच्छु आदि नाशक है। गर्मी दूर करने के लिए पत्तों को पानी में डालकर पिलाते हैं।

(I) **दाह युक्त तीव्र ज्वर तथा शिर–शूल पर–** इसको कोमल बड़े–बड़े पत्तों को बिछाकर उस पर रोगी को सुलाने और ऊपर से चादर की तरह उढ़ाने से तथा श्वेत कमल पुष्प साथ पिसा हुआ कोमल पत्तों का भस्म सिर हृदयादि स्थानों पर प्रलिप्त करने से तीव्र ज्वर की ऊष्मा दाह और जलन दूर होती है। सिर दर्द भी मितता है।

(II) **विषम ज्वर पर–** कमल पत्र का स्वरस सिर में 1 पाव छोटी हर्र भिगों देवें जब वे फूल जाय तब सुखाकर चूर्ण कर लें। 1 से 6 माशे ताजे जल से दिन में 3 बार लेने से जीर्ण विषम ज्वर दूर होता है।

4. कमल के बीज (कमल गट्टा)– (I) **वमन पर–** बीजों को आग पर सेंक कर ऊपर का छिलका दूर कर तथा भीतर की हरी पत्ती को अलग कर उस सफेद मिगी का महीन चूर्ण करें इसे 1–2 माशे के साथ चटाने से लाभ होता है।

(II) **स्त्रियों की निर्बलता तथा गर्भस्राव व गर्भपात पर–** इसके बीजों के चूर्ण को मिश्री मिले हुए दूध के साथ 3–6 माशे तक सेवन कराते रहने से स्त्रियों का शरीर सबल होता है।

(III) **स्तन–शैथिल्य पर–** उपरोक्त प्रयोग लगभग 3 मास तक सेवन करने से कुच कठोर हो जाते हैं।

(IV) **हैजा पर–** बीजों के भीतर हरी पत्ती को गुलाब जल में घोट पीसकर मात्रा उसे 5 मासे तक पिलाने से लाभ होता है।

(V) **मृगी (अपस्मार) पर–** श्वेत कमल की जड़ और श्वेत अर्क (मदार) कर जड़ दोनों को कूट पीसकर कल्क बना अदरख के रस में घृत मिलाकर पकावें। इस घृत की नस्य से मृगी रोग का नाश होता है।

विशिष्ट प्रयोग–कमल गट्टों का लावा या मखाना– इसे दूध के साथ खाते रहने से कामेच्छा कम हो जाती है।

मस्तिष्क शान्तिकर तेल– इसकी जड़ को तेल निर्माण विधि से तिल तेल में पकाकर छानकर उसमें थोड़ा खस का इतर मिला रखें। इसे सिर में लगाने से सिर व नेत्रों में तरावट आती है। और पित्त दाह जन्य सिरदर्द दूर होता है।

6.कुमुदम्/पुण्डरीक विशेषः (NYMPHAEA ALBA LINN)

कुल– कमल कुल (निम्फिएसी / NYMPHACEAE)

प्रचलित नाम[1]– **हि0**– सफेद कुमुद, कमोदनी, कोई, बघोला, बबूला, नीलोफर, ताला की अनार **ले0**– निम्फिआ अल्वा (NYMPHAEA ALBA LINN)

क0– विलियेते इटिलु0 **गु0**– पायणू **म0**–कमोद, पाढरें उत्पल

अं0– वाइट वाटर लिली (WHITE WATER LILY) **बं0**– हेलाफुल

कुमुद के पर्याय[2]– श्वेत जलज, अब्ज, अम्भोज, अम्बुज, पंकज, अरविन्द, कल्हार और कुशेशय (कैरव, चन्द्रकान्त, गर्दभ, कुमुद)[3]

प्रसङ्गोल्लेख

कालिदास ग्रन्थावली में कुमुद पुष्प का भूरिशः उल्लेख हुआ है :–

1. मार्ग में जो तालाब पड़ते थे उनकी लहरों के झकोरों से उड़ती हुई कुमुदों की ठंडी सुगन्ध जिस पवन से वे लेते हुए चले जा रहे थे वह सुवासित पवन उनकी साँस के समान ही सुगन्धित था।[4]
2. जब रघु ने अपने राज्य में शान्ति स्थापित कर ली और उनका चित्त ठिकाने हुआ तथा दूसरी राज्य लक्ष्मी के समान वह शरद ऋतु आ गई जिसमें चारों ओर सुन्दर कुमुद खिल उठे थे।[5]
3. उजले हंसों की उड़ती हुई पाँतों, रात को छिटके हुए टिमटिमाते तारों और तालों के खिले हुए कुमुदों को देखकर जान पड़ता था कि रघु की कीर्ति ही इतने रूप बनाकर आ फेली है।[6]
4. अत्यन्त सुकुमारी वह इन्दुमती बन्धुरूप कमलो को विकसित करने वाले क्षत्रिय संबन्धी प्रताप से शत्रु रूप पङ्कों को सुखाने वाले उस अवन्तिनरेश ने (बन्धुओं के समान कमलों को विकसित करने वाले तथा धूप से शत्रुओं के समान पङ्क को सुखाने वाले सूर्य के अत्यन्त कोमल) कुमुदिनी के समान भाव नहीं किया अर्थात, उसकी चाहना थी।[7]

1,2. ध0नि0–4 / 130,वनौ0विशे0–2,पृ0–232 3.शा0नि0पृ0–406 4.रघु0–1 / 43

5. रघु0–4 / 14 6–रघु0–4 / 19 7. रघु0–6 / 36

हे कृशाङ्गि! कामदेव तुमको दिन रात (निरन्तर) सन्तप्त कर रहा है, किन्तु मुझको (तो) जला ही रहा है। क्योंकि दिन जिस प्रकार चन्द्रमा का क्षीण कान्ति करता है उस प्रकार से कुमुदिनी को (क्षीण क्रान्ति) नहीं करता है।[1]

चन्द्रमा (अथवा चन्द्रवंशोत्पन्न दुष्यन्त) के अस्त हो जाने पर (राजधानी चले जाने पर वह ही (जो पहले विकसित पुष्पों वाली, सभी मनुष्यों को आनन्द देने वाली) कुमुदिनी (अथवा शकुन्तला) स्मरण के योग्य है कान्ति जिसकी ऐसी(अर्थात विनष्ट क्रान्ति वाली) होती हुई मेरे नेत्रों को आनन्दित नहीं करती है। निश्चय से स्त्रीजन के लिए प्रिय के प्रवासजन्य विरह से उत्पन्न दुःख अत्यधिक दुसह हुआ करते हैं।[2]

चन्द्रमा कुमुदों को ही विकसित करता है (कमलों को नहीं) (और) सूर्य कमलों को ही (विकसित करता है, कुमुदों की नहीं) निश्चय से जितेन्द्रिय व्यक्तियों की चित्त वृत्ति दूसरों की स्त्रियों का स्पर्श करने से विमुख हुआ करती है।[3]

यह जो भौरों की गूँज से भरा हुआ कुमुद खिल पड़ रहा है, वह ऐसा लगता है मानों इसने जो साँस ले लेकर भरपेट चाँदनी पी ली थी उसे पचा न सकने के कारण इसका पेट फट गया हो और यह कराह रहा हो।[4]

देखो मेघ! तुम्हारे सहज सलोने शरीर की परछाही गंभीरा नदी के उस जल में अवश्य पड़ी दिखाई देगी, जो चित्त जैसा निर्मल है। उसमें किलोलें करती हुई कुमुद के समान उजली मछलियों को देखकर तुम यही समझना कि वह नदी ही तुम्हारी ओर अपनी प्रेम भरी चंचल चितवनें चला रहा है। उस समय अपनी रूखाई से कहीं तुम उसके प्रेम का निरादर न कर बैठना।[5] शरद ऋतु में तालाब 'कुमुदों' से युक्त सुशोभित हो रहे हैं।[6] खिले हुए चन्द्रमा और छिटके हुए तारों से भरा हुआ आज कल का खुला आकाश उन तालों के समान दिखाई पड़ रहा है जिसमें पन्ने के समान चमकता हुआ जल भरा हुआ हो जिसके एक–एक राजहंस बैठा हो और वहाँ बहुत से कुमुद खिले हुए हों।[7]

इसमें पहचानने की क्या बात है। दूसरी कोई ऐसी स्त्री है ही नहीं जो मेरे काम पीड़ित शरीर को अपने हाथ से छूकर सुखी कर दे। चन्द्रमा की किरणों से खिल उठने वाला कुमुद सूर्य की किरणों से नहीं खिला करता।[8]

---

2. अभि0शा0–3/14　3.अभि0शा0–4/3　4. अभि0शा0–5/28　5. कु0सं0–8/70
6. पू0मे0–44　7. ऋतु0–3/2　8. ऋतु0–3/23

खिले हुए चन्द्रमा और छिटके हुए तारों से भरा हुआ आजकल का खुला आकाश उन तालों के समान दिखाई पड़ रहा है जिनमें पन्ने के समान चमकता हुआ जल भरा हुआ हो, जिलमें एक–एक राजहंस बैठा हुआ हो और जिनमें यहाँ–वहाँ बहुत से कुमुद खिले हुए हों।[1]

आजकल कुमुदों को छूता हुआ शीतल पवन बह रहा है, बादलों के उड़ जाने से चारों ओर सब सुहावना ही दिखाई दे रहा है, पानी का गँदलापन दूर हो गया है, धरती पर का सारा कीचड़ सूख गया है और आकाश में स्वच्छ किरणों वाला चन्द्रमा और तारे निकल आए हैं।[2]

कुमुद गुणधर्म

गुणधर्म[3]– कुमुद वीर्य में शीत, रस में तिक्त, विपाक में मधुर तथा कफ पित्त का शामक, रक्तदोष, दाह, श्रम का नाशक होता है। यथा–

'कुमुदं शीतलं स्वादु पाके तिक्तं कफापहम्।

रक्तदोषहरं दाह श्रम पित्त प्रशान्ति कृत् ।। 37।।

कुमुद भी कमल की तरह लाल नीले और सफेद तीन प्रकार के होते हैं।

आयुर्वेदानुसार कुमुद पिच्छिल, स्निग्ध, मधुर, शीतल और आनन्दजनक है।[4] यथा–

''कुमुदं पिच्छिलंस्निग्धंमधुरंल्हादिशीतलम्।

कुमुदबीज के गुण[5] – भवेत्कुमुद्वती बीजं स्वादुरूक्षंहिमंगुरू।

कुमुद के बीज अर्थात धंधोल के दाने स्वादिष्ठ, रूखे, शीतल और भारी होते हैं।

औषधीय प्रयोग[6]

इसका औषधीय प्रयोग कमल की तरह ही है। यह चन्द्र विकासी पुष्प है ये जाति में तीन प्रकार के होते हैं :–

नीलोफर– उत्पल की ही एक छोटी जाति होती है।

कुमुद– यह श्वेत व लाल दो प्रकार की होती है।

सौगन्धिक– यह अति नीली तथा अति सुगन्ध युक्त होती है।

---

1. वि0उ0–3/16 2. ऋतु0–3/21 3. ऋतु0–3222

4. ध0नि0–4/137 5,6. शा0नि0,पुष्पवर्गः,पृ0–406

पुष्प– इसके ताजे फूलों को सूँघने से पित्त प्रकृति वाले के दिली व दिमाक को शांति मिलती है। नींद आती है।

(I) **त्वचा विकारों पर–** पुष्पों का स्वरस लगाते हैं।

(II) **गंजेपन पर–** पुष्पों से साथ बहेड़े की गुठली की गिरी तिल अजमोद फूल प्रिपंगु और सुपारी के छिलके सम भाग पानी के साथ पीसकर बार–बार लेप करने से लाभ होता है।

(III) **रतौंधी पर–** पुष्पों की केशर को गाय के गोबर के रस में घोटकर गोलियाँ बना दें। इसे आँखों मं आँजने से लाभ होता है।

(IV) **पैत्तिक चर्म रोग पर–** इसके बीजों को पीसकर शहद के साथ सेवन करते हैं।

7. कलम (A KIND OF PADDY)

प्रचलित नाम[1]– कलम/धान

यह एक प्रकार का शालि धान्य ही है। संस्कृत हिन्दी कोश व विभिन्न अन्य कोशों में कलम को धान की बेड़ भी बताया गया है।[2]

पर्याय[3]– राजनिघण्टु में इसके पाँच नाम बताए गये हैं:–

शालिस्तु कलमाद्यस्तु कलमो नाकलायकः।

कदम्बपुष्पगन्धश्च कलजातः कलोद्‌भवः।।32।।

कलम, नाकलायक, कदम्बपुष्पगन्ध, कलजात तथा कलोद्‌भव ये सब कलम शालि के नाम हैं।

प्रसङ्गोल्लेख

धान कलम् का वर्णन महाकवि ने इस प्रकार किया है:– यथा एक खेत से उखाड़–उखाड़कर दूसरे खेत में ले जाकर रोपे हुए धान के पौधे किसान का घर अन्न से भर देते हैं वैसे ही रघु ने उन राजाओं को फिर राज पर बैठा दिया जो उनके पैरों पर आ गिरे थे और जिन्होंने बहुत सा धन धान्य भेंट में

1. वनौ0विशे0–2,पृ0–232–233 2.सं0हि0को0–आप्टे,पृ0–256 3. रा0नि0–32,पृ0–536

देकर रघु का राजकोष बढ़ा दिया था।[1] यह सचमुच बड़े आश्चर्य की वात है कि जिस युवक को आप चाहती हो वह ऐसा हठीला है कि बहुत दिनों से कर्णफूल से सूने आपके गालों पर लटकी हुई इन धान के बालों के समान पीली जटाओं को देखकर भी न पिघल उठा हो।[2] शरद् ऋतु में घुटे हुए आँजन की पिंडी जैसे नीला सुन्दर आकाश दुपहरिया के फूलों से लाल बनी हुई धरती और पके हुए धान से लदे हुए सुन्दर खेत, इस संसार में किस युवक का मन डाँवाडोल नहीं कर देते हैं।[3]

इस प्रकार (धान) वर्णन कवि ने उपमा उदाहरण तथा स्वाभाविक सौन्दर्य (आकर्षण) रूप में किया है।

विवरण

यद्यपि कलम का उल्लेख वैदिक–साहित्य में नहीं है, और अष्टाध्यायी में भी इसका स्पष्टोल्लेख नहीं है, तथापि उणादि–सूत्रों में इसका परिगणन होने से लक्षित होता है कि इसका लोकज्ञान एवं व्यवहार एस क्षेत्र में इसका उल्लेख नहीं हैं किन्तु प्राचीन बौद्ध एवं जैन ग्रन्थों में यह धनिकों के सम्मानित खाद्य में समाविष्ट था। मगध में इसकी खेती भी की जाती थी ऐसी भी सूचना मिलती है गुप्त साम्राज्य काल में बंगाल में कलम शालि का उत्पादन रोपहन धान की भाँति भी किया जाता था। आयुर्वेदीय संहिता, परवर्ती साहित्य एवं निघण्टु आदि तथा संस्कृत काव्य एवं अन्य साहित्य कोशादि सर्वत्र दृष्टि गोचर हैं।[4] यह एक प्रकार का चावल है जो मई, जून में बोया जाता है और दिसम्बर–जनवरी में पक जाता है।[5] कलमधान का परिगणन शालिधान के तीन प्रमुख प्राचीन भेदों में किया जाता है।[6] यद्यपि अब कलम धान को पूर्वकालिक मान्यता प्राप्त नहीं है, किन्तु लोकज्ञान एवं व्यवहार में आज भी संजीवित है। कलम पद की संरचना एवं उणादि सूत्रों में इसके समावेश तथा प्राचीन उततर पश्चिमी भारतीय सीमा में इसके प्राचीन लोक ज्ञान एवं व्यवहार से लक्षित होता है कि मूलतः कलम धान का प्रसार मध्य एशियाई क्षेत्र से उततर पश्चिमी सीमा क्षेत्र में होकर अन्तः भारतीय भूखंड में हुआ होगा।[7]

---

1. रघु0–4/37 2.कु0सं0–5/47 3.ऋतु0–3/5
4. शब्दकल्पद्रुम–2,पृ0–56,अमर0/काण्ड–2/वैश्यवर्ग/9/24,वै0को0–3/8/34, 7/1/18
5. कलमः (कल्+अम्)–सं0हि0को0–आप्टे,पृ0–256 6. ध0नि0सुवर्णादिवर्गः–6,पृ0–256–57
7. HISTORY OF THE INDIAN CULTIVATED PLANTS- PROF. R.S. Singh

गुणधर्म/प्रयोगः– धन्वन्तरि निघण्टु में कलम धान्य कफ–पित्त को दूर करने वाला बताया गया है– **कलमः श्लेष्मपित्तहा**[1]

राजनिघण्टुकार ने इसे पित्त व कफकारक वीर्यवर्द्धक तथा स्वाद में मधुर बताया है :–

'पित्त श्लेष्मकरो वृष्यः कलमो मधुरस्तथा।[2]

यह धान प्रायः कृषि द्वारा उत्पन्न किया जाता है। इसकी विभिन्न जातियाँ हैं जिन्हें भारत के विभिन्न भागों में ऋतु एवं स्थान भेद से उत्पन्न करते हैं।

मुख्य आमयिक प्रयोग– ज्वर अतिसार, ग्रहणी तथा मन्दाग्नि में अधिक जल में चावल को पतला पकाकर देते हैं। चावल का धोवन श्वेद–प्रदर, ज्वर एवं दाहशमन में देते हैं।[3]

8. नागरमोथा (CYPERUS SCARIOUS R. BR.)

कुल–मुस्तक कुल (साइपरेसी / CYPERACEAE)

पर्याय[4]:– नागरमुस्ता, नागरोत्था, नागर के वाचक धनशब्द, चक्राङ्का, नादेयी, चूड़ाला, पिण्डमुस्ता, शिशिरा, वृषध्वाङ्क्षी, कच्छरुहा, चारुकेसरा, उच्चटा, पूर्णकोष्ठा तथा कपालिनी ये सब नागरमोथा के चौदह संस्कृत नाम हैं।

प्रचलित नाम[5]– **हि0**– मोथा, नागरमोथा, भद्रमोथा। **बं0**– नागरमुता, **म0**–भद्रमोथे **मु0**– मोथ्य, **कर्ना0**– मुस्ता, **फा0**–शादकफी, **अ0**–मुष्कजमीन **अं0**– नटग्रास (NUT GRASS)

ले0–साइपरस् रोटंडस साइपरस्पर टेन्यूइटिस्।

(CYPRUSROTONDOUS, CYPRUXPERTANUITIS)

विवरण

मोथे की अनेक जाति हैं, कोई पानी में होता है, कोई मोटी डण्डी वाला और कोई छोटी डंडी वाला होता है। किन्तु सर्व प्रकार के मोथों में नागरमोथा उत्तम होता है–

---

1. ध0नि0सुवर्णादि:वर्गः–6/65
2. रा0नि0शाल्मलादिवर्ग–33,पृ0–536
3. ध0नि0सुवर्णादिवर्गः, पृ0–257
4. रा0नि0पिप्पल्यादिवर्ग–141, 142,पृ0–163
5. शा0नि0,पृ0–56

"अनूपदेशेयज्जातं मुस्तकं तत्प्रशस्यते।"

अनूप देश (सजल स्थान) में उत्पन्न होने वाला मोथा श्रेष्ठ होता है।

सभी निघण्टुकारों नें मुस्ता (मोथा) के निम्नलिखित चार भेद किये हैं[1]–

1- **पिण्डमुस्ता** (CYPERUS ROTUNDUS LINN)

2. **नागरमुस्ता** (CYPERUS SCARIOUS LINN)

3. **क्षुद्रमुस्ता या जलमुस्ता**

4- **केवर्तिमुस्ता** (CYPERUS - TENUIFLORUS)

यह समस्त भारत में आर्द्र अथवा जलीय प्रदेश में प्राप्त होता है। इसके अन्य नाम "वाराह" जिमूत, जलद, नादेय हैं।

प्रसङ्गोल्लेख

महाकवि कालिदास ने रघुवंशम् और ऋतुसंहारम् में मोथे का वर्णन किया है–

रावण की बहन कुम्भीनसी का बेटा लवणासुर के हाँथ में भाला को न देखकर शत्रुघ्न ने घेर लिया यह देखकर लवणासुर ने शत्रुघ्न को मारने के लिए एक भारी पेड़ को उसी प्रकार उखाड़ लिया जैसे मोथा उखाड़ लिया जाता है।[2]

ग्रीष्म वर्णन प्रसंड्.ग में कवि ने लिखा है कि धूप से एकदम झुलसा हुआ यह जंगली सुअरों का झुंड अपने लम्बे–लम्बे थुथनों से नागरमोथे से भरे हुए बिना कीचड़ वाले गड्डे को खोदता हुआ ऐसा लग रहा है मानव वह धरती में ही घुसा चला जा रहा हो[3]

इस प्रकार कवि ने पिण्डमुस्ता और नागरमुस्ता दोनों का उपमा एवं स्वाभाविक रूप में वर्णन किया है।

गुणधर्म[4]:–यह एक प्रकार की घास है नदियों के किनारे होती है, इसे सामान्य बोल–चाल की भाषा में गोद कहते है। इसकी पत्तियाँ कुस की पत्तियों की तरह लम्बी–लम्बी और गहरे हरे रंग की होती है। इसकी जड़ बहुत मोटी होती है जिसे सुअर खोदकर खाते हैं। यह यत्र–तत्र तालाबों में भी होता है।[5]

---

1. ध0नि0गुडूच्यादिवर्ग,पृ0–26
2. रघु0–5/19
3. ऋतु0–1/27
4. ध0नि0गुडूच्यादिवर्गः–1/42
5. अभि0धान कोश–सीताराम चतुर्वेदी,पृ0–165 एवं वनौ0विशे0–4

धन्वन्तरि निघण्टु में इसे गुडूच्यदि वर्ग में रखा गया है, इसके अन्तर्गत अधिकांश तिक्त एवं कटु रस वाले विरेचक, वानस्पतिक द्रव्यों की विवेचना की गयी है। राजनिघण्टुकार श्री नरहरि पण्डित जी ने इसे पिप्पल्यादि वर्ग में रखा है। इस वर्ग में उन्होंने बाजार में मिलने वाली औषधियों का वर्णन किया है। शालिग्राम निघण्टु भूषण में इसे कर्पूरादिवर्ग वर्ग का द्रव्य माना गया है। धन्वन्तरि निघण्टु में मोंथा के निम्न गुण बताए गये हैं:–

''मुस्तातिक्तकषायाऽतिशिशिरा श्लेष्मरक्तजित।

पित्तज्वरातिसारघ्नी तृष्णाकृमिविनाशिनी।।42।।

मुस्ता रस में तिक्त कषाय एवं वीर्य में अत्यन्त शीत होता है। यह श्लेष्म रक्त विकार को जीतने वाला, पित्तज्वरातिसार को हरने वाला तथा तृष्णा एवं कृमियों को नाश करने वाला है।[1]

यह लघु, रूक्ष, कटु, तिक्त, कषाय, कटुविपाक, शीतवीर्य, कफ पित्त नाशक, दीपन, पाचन, वातानुलोमक, ग्राही, तृष्णानिग्रहण, हृद्य, मेध्य, रक्तप्रसादक, नाड़ियों के लिए वल्य, मूत्रल, व्रणरोपक गर्भाशय संकोचक, केशवर्धक, स्तन्यजनन, स्तन्यशोधन, आर्त्तवजनन, स्वेदल, त्वग्दोषनिवारक, कृमिघ्न, कफघ्न, विषघ्न और जवरघ्न है। तथा अरूचि, वमन, अग्निमांद्य, अजीर्ण, अतिसार, संग्रहणी, तृष्णा, कृमिरोग, रक्तविकार, कास, श्वास मूत्रकृच्छ, रजोरोध, सूतिका रोग, कण्डू पामादि, चर्मरोग, दौर्वल्य आदि में तथा अनेक विषों में इसका प्रयोग होता है।[2]

रासायनिक संगठन[3] :– इसके कन्द या मूल में एक उड़नशील सुगन्धित तैल तथा वसा, शर्करा, गोंद, कार्बोहाइड्रेट अल्ब्युमिन सदृश पदार्थ एवं कुछ क्षार पाया जाता है। इसका सुगन्धित तैल केशों के लिए वल्य है तथा कई औषधीय तेलों में यह मिलाया जाता है। इसका औषधीय प्रयोज्य अङ्ग है– मूल (कन्द)

औषधीय प्रयोग

भैषज्य रत्नावली, वनौषधि विशेषाङ्क एवं चरक संहिता आदि ग्रन्थों में इसके निम्नलिखित औषधीय प्रयोग है[4]–

---

1. ध0नि0–1/42 2.वनौ0विशे0–4,पृ0–49–50,शा0नि0,पृ0–57 3.वनौ0विशे0–4,पृ0–49
4. च0सं0चि0अ0–19/79, 21/68, 9/116, 3/131, 3/132, भै0र0वातव्याधिखण्ड तथा वनौ0विशे0–4,पृ0–50–54

दुग्ध वृद्धि के लिए इसे जल के साथ पीसकर स्तनों पर लेप करते हैं।

नेत्रवृणं में इसे घृत में भूनकर व पीस कर लगाते हैं। नेत्र की फूली व रतौंधी में इसे बकरे के मूत्र में पीसकर वर्ती बना आँखों में आँजते हैं।

वृणों पर इसके ताजी जड़ को घिस कर गोघृत मिला कर लगाते हैं खाज, खुजली में इसके लेप करते है।

गले में जोंक चिपक गई हो तो इसे मुख में रख चबाने से निकल जाती है। इसमें इतने गुण होते हुए भी इसका उपयोग स्वतन्त्र रूप से बहुत कम किया जाता है। यद्यपि इसके शोधन की विशेष आवश्यकता नहीं है तथापि शुद्ध किया हुआ मोथा वात व्याधियों में अधिक उपकारक होता है। और कंठ के कोई विकार नहीं होने पाते, इसे केवल शर्करा (या गुड़) के घोल में भिगों कर सुखा लेने से भी इसकी शुद्धि हो जाती है।

1. अतिसार में:– मोथा में दीपन, पाचन गुण होने से अतिसार, आमातिसार, रक्तातिसार में इसका उपयोग बिल्वादि चूर्ण, वृद्ध गंगाधर चूर्ण, कर्पूर रस आदि विभिन्न प्रयोगों पर किया जाता है, सभी अतिसारों में प्रयोग निम्न हैं:–

(i) आमातिसार में:– ताजे मोथा को अदरख के साथ पीस कर शहद के साथ सेवन करते हैं अथवा मोंथा 20 तक लेकर 3 गुने दूध और जल में पका दूध मात्र शेष रहने पर छानकर पिलाते हैं। सर्व प्रकार के अतिसार में इसका क्वांथ कर ठंडा हो जाने पर मधु मिलाकर पिलाने से लाभ होता है।

(ii)पित्तातिसार :– मोंथा, इन्द्रजौ, चिरायता व रसौता का क्वाथ सेवन करावें अथवा मोथा के चूर्ण को चावल का जल और मधु मिलाकर सेवन करावें।

(iii)रक्तातिसार में :– शाङ्गर्धर के अनुसार– मोंथा और इन्द्रजौ समभाग 4 तोला का कल्क बना अष्टगुण (32 तोला) जल के साथ पकावें 18 तोला शेष रहने पर ठंडा हो जाने पर उसमें मधु 1 तोला मिला सेवन से लाभ होता है। इस योग को मुस्तकारि प्रमथ्या कहते हैं।

2. बाल रोग पर (बाल चातुर्भद्र)– मोंथा, छोटी पीपल, अतीस और काकड़ा सिंगी समभाग महीन चूर्ण कर लें, मात्र 2 से 8 रत्ती तक शहद के साथ दिन में 3–4 बार

यथा आवश्यक देने से बालकों का ज्वर, अतिसार, कास एवं वमन में विशेष लाभ होता हैं। उक्त योग में धमासा (अथवा अडूसा) मिलाकर मधु से चटाने से बालकों की सभी 5 प्रकार की खांसी दूर होती है।

बालकों की दाह वमन और ज्वर पर मोंथा, पित्तपापड़ा, खस सुगन्ध वाला व पद्माक समभाग मिश्रित 2 तोला जौकुट कर रात को 12 तोले जल में मिट्टी के पात्र में भिगों प्रातः छान कर 2–3 बार पिलावें।

3. गृहणी विकारः– विशेषतः मंदाग्नि एवं आम दोष युक्त गृहणी में मोंथा सोंठ, अतीस व गिलोय का क्वाथ सेवन कराते हैं यदि केवल आप दोष पाचन की ही आवश्यकता हो तो उक्त योग में गिलोय न मिलावें।

4. वात पित्त ज्वर मेंः– वात ज्वर में मोंथा, गिलोय व चिरायता का क्वाथ देते हैं। मोंथा, पित्तपापडा, नीलोफर, चिरायता, खस व लालचन्दन मिश्रित चूर्ण 2 तोला का क्वाथ सिद्ध कर खांड मिलाकर सेवन करने से निश्चय ही यह ज्वर नष्ट हो जाता है।

5. दन्त विकार पर– मोंथा, हरड, त्रिकुट तथा वायविडंग का चूर्ण 1–1 भाग और नीम पत्र 2 भाग सब को गोमूत्रमें पीस कर गोलियों बना छाया शुष्क कर लें। एक–एक गोली मुख में रखकर रात्रि में शयन करें। इससे हिलते दांत दृढ हो जाते हैं।

6. गर्भाशय संकोचनार्थ– सद्यः प्रसूता स्त्री को मोंथा का चूर्ण या फांट देने से गर्भाशय संकुचित होकर दूषित रक्त बाहर निकल जाता है। गर्भाशय शुद्ध होता है।

मुख्य आमयिक प्रयोगः– अरूचि, अग्निमाद्य, अजीर्ण, संग्रहणी, तृष्णा एवं कृमि रोग में इसका प्रयोग सफलतापूर्वक होता है। मात्रा– चूर्ण– 1–3माशा, क्वाथ– 5–10तोला।

विशेष योगः– मुस्तकादिक्वाथ, मुस्तकारिष्ट, मुस्तादि चूर्ण, मुस्तादिलेह, षडङ्गपानीय।

9. नीवार (PANICUM ITALICUM)

कुल[1]– यवकुल (ग्रेमिनी / **GRAMINEAE**)

नाम[2]–**हि0**– तिली, तिन्नी के दाने, पसही के चावल। **तै0**– निवरिवटु

बं0– उड़ीधान्य, **म0**–देवभात, **गु0**–वंटी **क0**–ज्यरहमेधे

लै0–पेनिकं इटालिकं (PANICUM ITALICUM)

हाइग्रोराइजा एरिस्टाटा[3] (HYGRORYZA, ARISTATANESS)

पर्याय[4]– तापस, मुनिभक्त, प्रसादक, अरण्यधान्य और रसिक ये नीवार के पर्यायवाची हैं।

प्रसङ्गोल्लेखः– कवि की रचनाओं में नीवार के निम्न उल्लेख मिलते हैं :–

1. बहुत से मृग वहाँ (वशिष्ठ) आश्रम में इधर–उधर पर्णकुटियों के द्वार रोके खड़े हुए थे, क्योंकि उन्हें भी ऋषि–पत्नियों के समान तिन्नी के दाने (नीवार) खाने का अभ्यास पड़ गया था।[5]
2. धूप में सुखाने के लिए जो तिन्नी का अन्न फैलाया हुआ था, वह दिन छिपते ही समेटकर कुटिया के आंगन में ढेर बनाकर रख दिया गया था।[6]
3. अतिथि सत्कार के बाद राजा रघु ऋषि कुमार कौत्स से कुशल क्षेम पूछते हैं:– तिन्नी के जिस अन्न और फलों से आप आतिथ्य करते हैं और जिन्हें खाकर ही आप लोग भी रह जाया करते हैं उन्हें आस–पास के गाँवों के पशु तो नहीं आकर चर जाते?[7]
4. हे राजन! अपने अपना सब धन अच्छे लोगों को दे डाला है और केवल यह शरीर भर आपके पास बचा रह गया है। इससे आप तिन्नी के पौधे की उस ठूँठ जैसे रह गए हैं जिसके दाने तपस्वियों ने झाड़ लिए हों।[8]
5. राजा दुष्यन्त कण्वाश्रम के पास ही देख रहे हैं– कहीं तो वृक्षों के नीचे सुग्गों के घोसलों से गिरे हुए तिन्नी के दाने बिखरे पड़े हैं, कहीं इधर–उधर पड़े हुए चिकने पत्थर बता रहे हैं कि इन पर हिंगोट के फल कूटे गये हैं, कहीं निडर खड़े मृग

---

1. ध0नि0–6/76,पृ0–260 2. शा0नि0पृ0–638 3,4 ध0नि0–6/76,पृ0–260
5. रघु0–1/50 6. रघु0–1/52 7. रघु0–5/9 8.उ रघु0–5/15

इस विश्वास से रथ का शब्द सुन रहे हैं कि आश्रम में कोई हमें छेड़ेगा या नहीं और कहीं नदी तालाबों पर आने–जाने के पथ में मुनियों के वल्कल वस्त्रों के छोरों से टपकते हुए जल की रेखाएं बनी हुई हैं।[1] कण्व विदा करते हुए शकुन्तला से कहते हैं:– वत्से! तुमने बलि के लिए जो तिन्नी के धान छीटे थे, उनके अङ्कुर जब तक कुटी के द्वार पर दिखाई देते रहेंगे तब तक मेरा शोक कैसे कम होगा।[2]

परिचय

नीवार संस्कृत कवियों का बहुचर्चित धान्य है जिसकी गणना मुनि धान्यों में भी की गई है। इससे इसका स्वयं जात एवं वन्य स्वभाव का होना लक्षित होता है। तपोवन वासियों का यह एक आधारभूत एवं प्रमुख खाद्यान्न है। प्रायः सभी संस्कृत कवियों ने अपनी रचनाओं में प्रसंगागत ऋषि मुनियों के आश्रमों एवं तपोवन वर्णन प्रसङ्ग में नीवर का अवश्य उल्लेख किया है।

गुणधर्मः– नीवर धान्य मधुर स्निग्ध पवित्र पथ्य तथा हल्के हैं।[3] यह शीतल मलरोधक, पित्तनाशन तथा वात, कफ और वातकारक हैं–

नीवारः श्लेष्मलोरूक्षः कषायोवातलोहिमः।

लेखनोबद्धविण्मूत्रः स्वादुः पित्तहरोलघुः।।

नीवार धान्य कफकारी,रूखे, कषेले, वादी, शीतल लेखन मलमूत्र बाँधने वाले स्वादिष्ट पित्तनाशक और हल्के हैं।[4]

यह भारत के जलीय स्थानों और तालाब के किनारे उत्पन्न होता है।

मुख्य आमयिक प्रयोग– इसका प्रयोग अग्निमान्द्य, ग्रहणी, पित्त जन्य विकार में तथा पथ्य रूप में करते हैं।[5]

10.पाटल (पाटला) STEREO SPERMUM SUAVEOLENS

कुल– श्योनाक कुल (बिगनोनिएसी/BIGNONIACEAE)

प्रचलितामिधान[6] – **हि0** – पाढल, पाटल, पांडुर, पाडर

---

1. अभि0शा0–1/14 2. अभि0शा0–4/21 3,4. शा0नि0पृ0–638

5. ध0नि0सुवर्णादिः षष्टवर्गः, पृ0–206 6. ध0नि0 एवं0 शा0नि0,पृ0–198

बं0 – पारूल **म0** – रक्तपाडर **गु0** – काकच

अं0 – वन्डुकनट (BANDUK NUT)

लै0 – कोकसलपीनिया बन्डूकेला (COCSALPINIA BANDUCALLA)

एवम्

विगनोनिया सुवियोलेन्स (VIGNONIA SUAVIOLENS)

और

स्टिरिओस्पर्मम् स्वैविओलेंस

(STEREOSPERMUM SUAVEDLENS)

पर्याय – धन्वन्तरि निघण्टु[1] में इसके सात पर्याय हैं–

पाटिलोक्तासुकुम्भीका ताम्रपुष्पाऽम्बुवासिनी।

स्थाली बसन्तदूती स्याद मोघा कालवृन्तिका।।

कुम्भीका ताम्र पुष्पः, अम्बुवासिनी, स्थाली, बसन्त दूती, अमोघा और कालवृन्तिका ये पाटला के पर्याय हैं।

पाटल के दो भेद हैं (1) पाढल (2) काष्ठपाटला

कालिदास जी ने पाढल (प्रथम भेद) का ही उल्लेख किया है। अतः द्वितीय भेद के पर्याय देना यहाँ पर उचित नहीं दिखाई देता है। फिर भी इसके पर्याय, गुणधर्म हेतु ध्न्वन्तरि निघण्टु गुडूच्यादि वर्ग पृ0 45–46 दृष्टव्य है।

राजनिघण्टुकार ने इसके ग्यारह पर्याय लिखे हैं :–

पाटली, ताम्रपुष्पी, कुम्भिका, रक्तपुष्पिका, बसन्तदूती, अमोघा, स्थाली, विटवल्ल्भा, स्थिरगन्धा, अम्बुवाली तथा कालवृन्ती आदि। यथा–

षाटली ताम्रपुष्पी च कुम्भिका रक्तपुष्पिका।

बसन्तदूती चामोघा स्थाली च विटवल्लभा।

स्थिरगन्धाऽम्बुवासी च कालवृन्तीन्दुभूह्वया।।19।।

गुणधर्मः–पाटली रस में तिक्त तथा कटु उष्णवीर्य, कफवात शामक है। श्वेत पाटल के गुण श्वेत पाठल तिक्त रस वाला, गुरू, उष्णवीर्य तथा वात विकार को जीतने वाला

1. ध0नि0गुडच्यादिवर्ग–1/120

वामक, हिचकी तथा कफनाशक, श्रम व शोष को दूर करने वाला है–

सित पाटालिका तिक्ता गुरूष्णा वातदोषजित्।

वमिहिक्का कफघ्नौ च श्रमशोषापहारिका।।52।।

श्वेत पाटल तिक्त, गुरू, उष्ण, वात, दोषजित, हिक्का व कफघ्न और श्रम शोष शामक है।

प्रसङ्गोल्लेख

कवि ने निम्नवत् उल्लेख किया है:–

मनोहर गन्ध वाली आम की बौर, पुरानी मदिरा और नये पाटल के फूल लाकर ग्रीष्म ऋतु ने कामी पुरूषों की सारी कमी पूरी कर दी।[1]

वह राजा अग्नि वर्ण उस समय आम की बौर, और पाटल का लाल फूल पात्र में लगाकर आसव पीने लगता था। जिससे बसंत बीतने से मंद पड़ा हुआ उसका काम फिर जाग उठता था।[2]

शाकुन्तलम् में[3] सूत्रधार ग्रीष्म ऋतु का वर्णन करता है :–

'सुभग सलिलावगाहाः पाटल संसर्गि सुरभिवनवाताः।

प्रच्छाय सुलभ निद्रा दिवसाः परिणाम रमणीयाः।।

औषधीय प्रयोगः– पाटल तिक्त रसान्वित, कटु रस युक्त, उष्ण, कफवात नाशक तथा सूजन अफारा, वमन, श्वास और सन्निपात निवारक है:–

'पाटलातु रसेतिक्ता कटूष्णाकफवातजित्।

शोफाध्मानवमि श्वासशमनी सन्निपात नुत्।।

यह अरूचि सूजन रूधिर विकार, श्वास, तृषा और वमन निवारक है। किंचित् उष्ण, कषाय, स्वादिष्ट, इसका फूल, कफ, वात, पित्तातिसार और दाह नाशक है। इसका फल हिचकी और रक्त पित्त दूर करता है। शोथ आध्मान, वमन तथा श्वास को शान्त करने वाली सन्निपात को दूर करती है।[4] श्वेत पाठल भी वात, वमन, हिचकी, कफ, श्रम और स्वेद निवारक है।

भूपाटल चरपरी, गरम, बलजनक और वीर्यवर्द्धक है–

1. रघु0–16/52 2. यत्सलग्न सहकारमासवं रक्तपाटल समागमं पपौ।... रघु0–19/46

3. अभि0शा0–1/3 4. रा0नि0:50, पृ0–360

भूपाटला कटूष्णा चबल्यावीर्य्य विवर्द्धिनी।''

पाटल के पत्तों का रस निकाल कर उसमें छः मासे सोंठ और दो तोले खांड मिलाकर देनें से अम्लपित्त दूर होता है।[1] इसकी उत्पत्ति भारत के जलीय प्रदेशों तथा बिहार, बंगाल आदि में विशेष है। प्रयोज्य अङ्ग–पुष्प, क्षार, मूल, त्वक

मुख्य आमयिक प्रयोगः– हिक्का, शोफ, अरूचि, वातरक्त विकार में लाभप्रद है।

विशिष्ट योग–पञ्चमूलादि क्वाथ, पाटली तैल।

11. माधवीलता/बासन्तीलता (HIPTAGE MADABLOATA)

पर्याय[2].:– **माधवी चन्द्रवल्ली च सुगन्धा भ्रमरोत्सवा।**

भृङ्गप्रिया भद्रलता भूमिमण्डपभूषणी।।

माधवी, चन्द्रवल्ली, सुगन्धा, भ्रमरोत्सवा, भृङ्गप्रिया, भद्रलता, भूमिमण्डपभूषणी, ये सब बसन्ती (माधवीलता) के पर्याय हैं।

प्रचलित अभिधान[3] :– हिं0– माधवी, बसंती **बं0**– माधवीलता

म0–माधवी पीतबेल, **क0**– इन्द्रगीच्चे, **तै0**– माधवतोगे

तो0– गुरूविन्द **अं0**– क्लस्टर्ड डिप्टेज (CLUSTERD HIPTAGE)

ले0–हिप्टेज, मैडब्लोटार (HIPTAGE MADABLOATA)

प्रसङ्गोल्लेख

कालिदास ने अतिमुक्त (माधवीलता) का उल्लेख निम्नवत् किया है–

1. यहां कि क्रीड़ा शैल पर कुरूवक की बाढ़ से घिरे हुए माधवी कुञ्ज के समीप ही रक्ताशोक और केशर वृक्ष खड़े हैं, रक्ताशोक तो अपने दोहद की पूर्ति के लिए मेरे साथ मेरी पत्नी के वाम पाद प्रहार की इच्छा करता है, और केशर वृक्ष अपने दोहद हेतु मेरी प्रिया के मुख गण्डूष मध्य का अभिलाषी है।[4]

इस आयु का दक्षिण कहलाना ठीक ही है क्योंकि माधवीलता को सीचता हुआ और कुन्दलता को नचाता हुआ, यह पवन मुझे ऐसा जान पड़ रहा है, मानो यह कोई

1. शा0नि0,पृ0–199–201 2,3. रा0नि0करवीरादिवर्ग,पृ0–319 4. उ0मे0–18

कामी हो, जो सबसे प्रेम करता है। और संबको एक साथ प्रसन्न किये रखता है।[1]

2. (इस शकुन्तला का) मुख अत्यन्त कृश कपोलों वाला होता है, वक्षः–स्थल स्वाभाविक कठोरता से रहित है, दोनों स्तन जिसमें ऐसा है कटि प्रदेश कृशतर है। दोनों कन्धे अत्यन्त झुक गये हैं और कान्ति पीत वर्ण वाली हो गयी है। पत्तों को सुखाने वाली वायु से स्पर्श की हुई (मुरझायी हुई) माधवीलता के समान काम से पीड़ित यह (शकुन्तला) शोंचनीय और सुन्दर दर्शन वाली दिखायी देती है।[2]

3. प्रियंवदा–हे सखी! सौभाग्य से तुम्हारी आशक्ति तुम्हारे योग्य है, अथवा समुद्र को छोंड़कर महानदी कहां गिरती है? कौन सम्प्रति आम्र वृक्ष के बिना पल्लवित होती हुई माधवीलता को सहन कर सकता है।[3]

गुण/प्रयोगः– माधवी कटुका तिक्ता, कषाया मदगन्धिका।

पित्त कास व्रणान् हन्ति दाह शोष विनाशिनी।।

माधवी कटु, तिक्त तथा कषाय रस युक्त एवं मदकारक सुगन्ध वाली है। यह पित्त कास तथा व्रण को नष्ट करती है और दाह तथा शोथ रोगनाशक है।[4]

अविमुक्तं सुगन्धि स्याद् हृद्यमुक्तं सुमण्डनम्।

अतिमुक्त (माधवीलता) सुगन्धित, हृदय के लिए लाभप्रद तथा शोभादायक होती है।

मुख्य आमयिक प्रयोग– त्वक, आमवात्, श्वांस, पत्र, त्वचागत रोग एवं कुष्ठ रोग में लाभप्रद हैं। कटि प्रदेश को पतला करने के लिए मट्ठे के साथ पीसकर पिलाते हैं।[5]

विवरण

मधुमालती की दीर्घारोही काष्ठीय लतायें होती हैं। वनस्पतियां स्वयं जात होने के अतिरिक्त प्रायः शृङ्गारार्थ गृह–उद्यानों के द्वार पर तोरणाकार लता मंडप बनाने हेतु तथा उद्यानों मे छायागृह हेतु इसकी लतायें सर्वत्र आरोपित भी की जाती हैं। प्रायः उद्यानों में आम के पेंड़ के पास आरोपित होते हैं। बसन्त तथा ग्रीष्म ऋतु में पुष्पागम होने पर इनका आकर्षक दृश्य एवं मनमोहक उद्बोधक सुगन्धि ऋतुराज की समृद्धियों

---

1. वि0उ0–2/4 2. अभि0शा0–3/7

3. अभि0शा0–3/10 के पूर्व गद्यभाग–'क इदानी सहकारमन्तरेणाति मुक्तलतां पल्लवितां सहते। 4.रा0नि0 पृ0319

5. ध0नि0आम्रादिवर्ग, पृ0–239

में मूर्धन्य स्थान प्राप्त कर लेती है।[1]

बासन्तीलता–विभिन्न प्रकार के निघण्टुओं तथा वनौषधि विशेषांकों के आधार पर मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचा हूँ कि बासन्तीलता माधवीलता का ही पर्याय है। अतः इसके गुणधर्म और प्रयोग उपरोक्त के अनुसार ही हैं। इसी संदर्भ मे बासन्ती लता का भी उल्लेख कवि ने किया है।[2]

12. शालि/लाजा (ORYZA SATIVA LINN)

कुल (FAMILY) यवकुल (GRAMINAE)

प्रचलिताभिधान[3]:– **हि0**– धान, तन्डुल, चावल **ले0**– ओराइजा सेटिवा

बं0–शालिधान्य, चाउल, **म0**–भात, साळी, **गु0**– चोखा, शाल्य, **क0**–नेलु,

ते0– धान्यमु **अं0**– राइस (RICE) **फा0**– विरंज, **अ0**–उरज

पर्याय[4]– शालि के पाँच भेद व पर्याय रूप धन्वन्तरि निघण्टु में प्रदर्शित हैं यथा–

'रक्तशालिर्महाशालिः सुगन्धप्रसवस्तथा।

वृन्दारको मुष्टिकश्च शालीनां प्रवराः स्मृताः।।60।।

रक्तशालि, महाशालि, सुगन्ध–प्रसव, वृन्दारक और मुष्टिक– ये शालि धान्यों में श्रेष्ठ है।

कण्डनेनाविनाशुक्लाहैमन्ताःशालयःस्मृताः, अर्थात् जो बिना छरे फटके सफेद हो उनको शालिधान्य कहते हैं और शालिधान हेमन्त ऋतु में होते है। इस कारण इनका हेमन्तिक नाम भी है।[5] रक्तशालि, कलमं, पाण्डुक, शकुनाहृत सुगन्धक, कद्र्दमक, महाशालि, दूषक, पुण्डरीक, लोघ्रपुष्पक इत्यादि अनेक प्रकार के शालिधान्य अनेक देशों में उत्पन्न होते हैं।

विवरण

ऋग्वेद में शालि तथा PADDY के अर्थ में धान्य/धान संज्ञा का उल्लेख नहीं

1. संस्कृत काव्य में विशिष्ट वनस्पतियाँ–प्रो0 आर0एस0सिंह, पृ0–8–9
2. वि0उ0,अंक–4 श्लोक–72 के बाद गद्य भाग में दृष्टव्य
3. शा0नि0धन्यवर्ग, पृ0–604
4. ध0नि0सुवर्णादिवर्ग–6/60
5. शा0नि0धान्यवर्ग,पृ0–605

मिलता। बाद में सम्भवतः धान या RICE के अर्थ में शालि संज्ञा व्यवहृत होने लगी थी। 'राथ' ने अथर्ववेद में शारिशाका शब्द में 'शारि' पद को 'शालि' के समकक्ष होने का अनुमान किया है। सम्भवतः भारतीय आर्य मूलतः धान (PADDY) से परिचित नहीं थे। बाद में भातरीय सीमा की ओर अग्रसर होने पर उन्हें इसका ज्ञान पूर्वतः बसी जन–जातियों में इसके पूर्वतः प्रचलित ज्ञान से हुआ। सम्भवतः धान का ज्ञान, भारतीय आदिम जनजातियों को था जो इसके जनक भी माने जा सकते हैं। इसका अनुमोदन भाषा विज्ञानीय साक्ष्य से भी होता है। जहाँ इसके पश्तो, अरबी, फारसी, सुरयानी, मिस्री, ग्रीक एवं लातीनी नाम मूलतः धान की तमल संज्ञा अरसी (ARASI) से अनुबंधित प्रतीत होते हैं। तथापि संस्कृत साहित्य में 'शालि' संज्ञा भी प्राचीनतर काल से विज्ञात है। इसके बहुविध उल्लेख अष्टाध्यायी में मिलते हैं। कौटिलीय–अर्थशास्त्र में भी शालिका उल्लेख पूर्ववाप्यधान्यों में हुआ है। परवर्ती साहित्य में भी शालि सर्वत्र विज्ञात है।

तथापि शालि की जितनी विस्तृत चर्चा संस्कृत काव्यों में मिलती है अन्यत्र दृष्टिगोचर नहीं होती, इससे इसके स्वरूप स्वभाव, बोने का समय एवं शस्यकाल आदि पर महत्वपूर्ण प्रकाश पड़ता है। देश की समृद्धि एवं ऋतुविशेष की सुषमा के परिप्रेक्ष्य में कविगण इससे व्यापक रूप से प्रभावित हुए हैं। प्राक् काल में पशु पक्षियों से क्षेत्र गोपिकाएं किस प्रकार रक्षा करती थीं इसके भी आलंकारिक वर्णन काव्यों में मिलते हैं।[1] महाकाव्यों की षड्ऋतुवर्णना की आवश्यकता के परिप्रेक्ष्य में काव्यों में शालि की चर्चा वैसे मुख्यतः शरद ऋतु वर्णन में ही है। किन्तु हेमन्त में भी इसके परिपाक का उल्लेख है। कालिदास जी ने ऋतुसंहारम् में शालिधान का शरद् हेमन्त व शिशिर ऋतु में उल्लेख किया है जो आगे दृष्टव्य हैं। लोक व्यवहार में इन्हें 'अगहनी या रोपन धान भी कहते हैं। संस्कृत कोशों में, अमरकोश तथा धन्वन्तरि, राज, शालिग्राम, निघण्टुओं में शालि, कलम एवं षष्टिक इन तीन प्रकारों का मुख्यतः उल्लेख है।

प्रसङ्गोल्लेख

कवि कुलगुरू कालिदास जी ने शालि धान्य का उल्लेख रघुवंश और ऋतु संहारम् में

---

1. रघु0–4 / 20

निम्नवत् किया है:–

1. राजा रघु प्रजा को इतने प्यारे थे कि 'धान' के खेतों की रखवाली करने वाली किसानों की स्त्रियाँ भी ईख की छाया में बैठकर प्रजापालक राजा रघु की बचपन से तब तक की गुणकथाओं के गीत बना–बनाकर गाती रहती थीं।[1]
2. जैसे धान (शालि) का दाना भीतर ही पक जाता है वैसे ही राजा अतिथि का काम भी गुप्त रूप से ही प्रारम्भ होकर पूरा हो जाता था।[2]

ऋतुसंहारम् में शरद, हेमन्त, शिशिर ऋतुओं के वर्णन में सुहावने पायल पहने पके हुए धान्य का उल्लेख निम्नवत् रूप से हुआ है :–

1. फूले हुए कांस की साड़ी पहने मस्त हंसों की बोली के समान झनझनाते हुएसुहावने पायल पहने, पके हुए धान के मनोहर शरीर वाली और खिले हुए कमल के सुन्दर मुख वाली शरद ऋतु नई ब्याही हुई रूपवती बहू के समान अब आ पहुंची है।[3]

जहाँ खेतों में भरपूर धान के पौधे लहलहा-रहे हों, जहाँ घास के मैदान में बहुत सी गौएँ चर रही हों, जहाँ बहुत से सारसों और हंसों के जोड़े अपनी मीठी बोली बोल रहे हों, बस ऐसे ही स्थान लोगों को शरद ऋतु में बड़े अच्छे लगते हैं।[4]

देखो! पाला बिछाती हुई यह हेमन्त ऋतु आ पहुची हैं, जिसमें गेहूँ, जौ आदि के नये–नये अंकुरों के निकल आने से चारों ओर हरा भरा दिखाई देने लगा है, लोघ्र वृक्ष फूलों से लद गए हैं, धान पक चला है और कमल दिखाई नही देते।[5]

गाँव के बाहर जिन खेतों में भरपूर धान लहलहा रहा है, हरिणियों के झुंड के झुंड चौकड़ियाँ भर रहे हैं और सारस कूक रहे हैं, उन खेतों को देखते ही मन हाथ से निकल जाता है।[6]

अरी वरोरू! सुनो जिस ऋतु में धान और ईख के खेत लहलहा उठते हैं, जिसमें कभी–कभी सारस की बोली भी गूँज जाती है और काम भी बहुत बढ़ जाता है, वह स्त्रियों की प्यारी शिशिर ऋतु अब आ पहुँची है।[7]

कवि शिशिर ऋतु की शुभकामनायें देते हुए कहते हैं कि–

1, रघु0–4/20 2. रघु0–17/53 3. ऋतु0–3/1 4. ऋतु0–3/16
5. ऋतु0–4/1 6. ऋतु0–4/8 7. ऋतु0–5/1

प्रचुर गुडविकारः स्वादुशाली क्षुरम्यः,

प्रबल सुरतकेलिर्जात कन्दर्पदर्पः।

प्रियजनरहितानां चित्तसंतापहेतुः,

शिशिरसमयएषश्रेयसे वोऽस्तुनित्यम्।।16।।

जिस शिशिर ऋतु में मिठाइयाँ बहुतायत से मिलती हैं, स्वादिष्ट चावल और ईख चारो ओर फैले सुहाते हैं, लोग खूब संभोग करते हैं, कामदेव भी पूरे वेग से बढ़ जाता है और प्रियजन रहित लोग संतृप्त रहते हैं वह शिशिर ऋतु आपका कल्याण करे।[1]

लाजा– महाकवि कालिदास ने रघुवंशम तथा कुमारसंभवम् में लाजः (लाज+अच)[2] गीला धान, लाजाः, भुना हुआ या तला धान, अर्थ में इसका उल्लेख किया है।[3] किसी–किसी अनुवादक ने इसका अर्थ खील (लाई) किया है।

गुणधर्मः– शालि एवं कलम के गुण आयुर्वेदानुसार एक ही हैं इनका समान रूप से प्रयोग भी वर्णित है–

महाशाली श्रेष्ठ तथा शुक्रल होता है– **"महाशालिः परो वृष्यः''**

मुख्य आमयिक प्रयोग– ज्वर अतिसार, ग्रहणी मन्दाग्नि में अधिक जल से गीले चावल पकाकर देने चाहिए। चावल का धोवन श्वेत प्रदर ज्वर एवं दाह शमन में देते हैं। शालिग्राम निघण्टु के अनुसार–

'शालयोमधुराः स्निग्धा बल्या बद्धाल्यवर्च्चसः।

कषायालघवोरूच्याः स्वर्य्यावृष्याष्च बृंहणाः।।

कल्पानिलकफाःशीताः तित्त्नामूत्रलास्तथा।

शालिधान मधुर स्निग्ध, बलकारक, अल्पप्रमाण मलरोधक, कषेले, हल्के रूचिकारक, स्वर को शुद्ध करने वाले, वीर्य्यवर्धक, पुष्टजनक, कुछेक वातकफ को कुपित करने वाले शीतल पित्तनाशक और मूत्रजनक है।।

औषधीय प्रयोग

अर्धावमस्तकशूल– (अर्ध शीशी पर) सूर्योदय के पूर्व ही इसकी खील लगभग 2.5 तो0 तक शहद के साथ खाकर सो जावें। ऐसा 2–3 दिन करने से लाभ होता है।

---

1. ऋतु0–5/16
2. सं0हि0को0–आप्टे,पृ0–875, दृष्टव्य
3. रघु0–2/10, 4/27, 7/25, कु0सं0–7/69, 7/80

गर्भ निरोधनार्थ– धान की जड़ को चावलों के धोवन के साथ पीसकर छानकर, मधु मिला पिलाते रहें। व्रणों पर (चेचक के व्रणों पर) चावलों का महीन आटा खूब अच्छी तरह बुरक देने से रोगी को शान्ति मिलती है।

चेहरे और शरीर की कांति वर्धनार्थ– केवल चावलों को या इसके अन्य उपयुक्त दृव्यों को मिला उबटन जैसा बनाकर चेहरे एवं शरीर पर लगाते हैं। चावलों को पानी में भिगोकर, उस पानी से चेहरे को धोते रहने से झांई दूर होती है।

किन्तु चावलों का प्रयोग अश्मरी तथा उदर रोगियों के लिए हानिकारक होता है।

13.शैवाल (Cyperus Tenui Flours) & (Ceratophyllum Demersum)

कुल – मुस्तक कुल (साइपेरी/Cyperac) &

शैवाल कुल (**Certophyllaceae**)

प्रचलित नाम[1]**–हि०**–जलमोथा, केवटी मोथा, सेवाल, सेवार, काई

अं०–algae **बं०**–शेओआला, **गु०**–शैवाल

अ० तुहलव **फा०**– पश्म वज्ग

यह संस्कृत कोशों एवं आयुर्वेदीय निघण्टुओं में भी बहु वनस्पतिवाची संज्ञा के रूप में ही दृष्ठिगोचर है।

पर्यायः– राजनिघण्टु में इसे शाल्मल्यादि वर्ग में रखा गया है। इसके विषय में कहा गया है– **'' शैवालं जलनीली स्यात शैवलं जलजञ्च तत् ''**

शैवाल जल नीली, शैवल तथा जलज ये सब शैवाल (सेवाल) के पर्याय हैं।[2] धन्वन्तरिनिघण्टु में इसे गुडूच्यादि वर्ग में स्थान दिया गया है। निघण्टुकार ने इसके निम्नवत् पर्याय बताये हैं:–

'जलमुस्तं दाशपुरं वानेयं परिपेलवम् ।

कैवर्ति मुस्तं शैवालं जलजं जाविताह्यम्।। 43।।

1,2. रा०नि०शाल्मल्यादि वर्ग, पृ०–262

जलमुस्तं, दाशपुरं, वानेयं परिपेलवं, कैवर्तिमुस्त, शैवाल, जलज, और जावितह्यं ये जलमुस्त के पर्याय हैं।[1]

संस्कृत हिन्दी कोश में इसका हिन्दी नाम पद्मकाष्ठ, सेवार, काई और मोंथा हैं।[2]

प्रसङ्गोल्लेखः– इसके उल्लेख निम्नलिखित हैंः–

वह पहाड़ के समान लम्बा चौड़ा हाथी अपनी छाती से सेवार को अपने साथ खींचता हुआ जब तट पर आ चढा तब जल में जो लहरे उठी थीं वे उससे भी पहले तट से जा टकराई।[3]

गर्मी के कारण घर की बावडियाँ भी सेवार जमी हुई सीढियों को छोंडकर पीछे हटने लगीं (अर्थात) उनका पानी सूखने लगा) उनमें कमल की डंडियां दिखाई देने लगीं और पानी घटकर कुल स्त्रियों की कमर तक ही रह गया।[4]

राजा दुष्यन्त बल्कल वस्त्र युक्ता शकुन्तला के सौन्दर्य का वर्णन कर रहे हैं– यद्यपि इसका कोमल शरीर बल्कल के योग्य नहीं है, फिर भी इसके शरीर पर वे अलंकारों के समान ही शुशोभित हो रहे हैं, क्योंकि जैसे सेवार से घिरा होने पर भी कमल सुन्दर लगता है ओर चन्द्रमा में पडा हुआ कलंक भी उसकी शोभा ही बढाता है वैसे ही यह सुन्दरी भी बल्कल पहने हुए बडी सलोनी दिखाई पड़ रही है। सच्ची बात तो यह कि सुन्दर शरीर पर भला क्या नहीं शोभा देने लगता।[5]

इस प्रकार सेवार (शैवाल) का उल्लेख कवि ने स्वाभाविक रूप में किया है। शैवाल संस्कृत कवियों की भी चर्चित जलीय वनस्पति है जिसका आलंकारिक प्रयोग श्रंगारी अभिव्यक्तियों में भी किया गया है। संस्कृत काव्यों में शेवल/शैवल/शैवाल यह सभी शब्द रूप मिलते हैं जिनका अनुसरण संस्कृत कोशों एवं साहित्यकारों ने भी किया है। ऋग्वेद (10/68/5) में शीपाल का उल्लेख है जो सम्भवतः एक जलीय पौधे का नाम है। इसी पद से व्युत्पन्न विशेषण पद 'शीपल्य' षडविंश ब्राम्हण (3/1) में मिलता है। अथर्ववेद में (1/11/4) में शैवल कहा गया है। इसमें शीपल्य (शीवल्य) नाम भी मिलता है जो तालाब के सामान्य अर्थ में प्रयुक्त है।

शैवल का परिमणन अष्टाध्यायी में तारकादि गणपाठ (पाणिनि 5/2/36 में हुआ है

---

1. ध0नि0गुडूच्यादि वर्ग–1/43,पृ0–26
2. शैवाल–शैवलः (शी+वलच्), सं0हि0को0आप्टे, पृ01030
3. रघु0–5/46
4. रघ0–16/46
5. अभि0शा0–1/19

यहां शैवल+इतच्) शैवलितम् पद की संसिद्धि का संकेत है। उणादि सूत्र में भी इसका समावेश है।[1] अर्थशास्त्र में शैवल प्रज्जवलन शीलतावर्धक दृव्य का वाचक है। उत्तर भारतीय क्षेत्र में सामान्य लोक व्यवहार में व्यापक रूप से प्रचलित 'सेवार' शब्द भी संस्कृत 'शेवाल' से ही व्युत्पन्न है। सामान्यतया इसका व्यवहार एक जलीय क्षुद्र वनस्पति के लिये होता है। जिसे वल्लिसमीरिआ स्पीरालिस (VALLISNERIA SPIRALIS) कहते हैं, यह शीतल समझी जाती है, गर्मियों में दाह शान्ति हेतु इसको शरीर में रखा जाता है। इसके अतिरिक्त सेवार का प्रयोग जल की काई तथा अन्य जलीय वनस्पतियों के लिये भी होता है।[2]

गुण धर्म

आयुर्वेदानुसार शैवाल शीतल, स्निग्ध, सन्ताप एवं व्रण का नाश करने वाला है–

'' शैवालं शीतलं स्निग्धं सन्ताप बृणनाशनम्। ''[3]

धन्वन्तरि निघण्टु में इसे तिक्त कटु कषाय, वीर्य में शीत एवं कान्ति पैदा करने वाला और मेध्य, वातहर, अन्धापन, विसर्य, कण्डू कुष्ठ एवं विष को हरने वाला बताया गया है–

'जलजं तिक्त कटुकं कषायं कान्तिदं हिमम्।

मेध्यं वातान्ध्यवीसर्पकण्डूकुष्ठ विषापहम् ।।44।।[4]

प्रयोगः– यह त्रिदोषज विकरों में विशेषतः पैतृक रोगों में प्रयुक्त होता है। दाह और रक्तार्श मे इसका लेप करते हैं, तृष्णा और रक्ताभिसार में देते हैं, यह रक्त पित्त में उपयोगी है।2

प्रयोज्य अंग– पञ्चाङ्ग, मात्रा– स्वरस 10–20 मि0ली0

---

1. (सिद्धान्त कौमुदी, 4/478, पृ0 620)
2. का0का वा0वै0–माया त्रिपाठी, पृ0–333
3. रा0नि0,पृ0–262
4. ध0नि0गुडूच्यादिवर्ग–44
5. द्र0गु0वि0अ0–9,पृ0–724

अध्याय

५

कवि की कृतियों में प्राप्त मिश्रित वनस्पतियाँ

अध्याय–5

कवि की कृतियों में प्राप्त मिश्रित वनस्पतियाँ

1. अर्जुनः (TERMINALIA, ARJUNA)

कुल– हरीतकी, कम्ब्रेटेसी (**COMBRETACEAE**)

पर्याय[1]**:–**ककुभः, पार्थ, चित्रयोधी, धनंजय, वरान्तक, किरीटी, नदीसर्ज और पाण्डव

प्रचलित नाम[2]**:–**

हि0– अर्जुन, कोह, कहू, अंजन। **अं0**– अर्जुन, मायरोबलान,
ले0– टरमिनोलिया अर्जुना। **म0**– सदरू, **गु0**– सादडो
ता0– वेल्म, **बं0**– तेल्लमद्दि, **क0**– अद्धि

प्रसङ्गोल्लेखः– पराग से भरी कुछ पीली–पीली अर्जुन की मंजरी ऐसी लगती थी मानो कामदेव का शरीर भष्म करने के पश्चात शिव के हाँथ से तोड़ी हुई कामदेव के धनुष की डोरी हो।[3] इसी प्रकार ऋतु संहार में शरद वर्णन प्रसंग में नाम आया है।[4]

गुण/प्रयोग[5]**:–** यह भी आम्रादि वर्ग का वृक्ष है रस में कसैला, वीर्य में शीत हृदय को हितकर वृणशोधक, कान्तिजनक, प्रमेह, पिटिका, अस्थि संहार, दाह, पांडु और कफ पित्त नाशक है। इसके छाल के चूर्ण को घृत, दूध, गुड़ के शर्बत के साथ सेवन करने से हृदयरोग जीर्ण ज्वर तथा रक्त पित्त में लाभ होकर दीर्घ आयुष्य प्राप्त होता है।

---

1. धा0नि0–5/104, पृ0–228
2. शा0नि0,पृ0–502
3. रघु0–16/51
4. ऋतु0–3/13
5. ध0नि0–5/105, पृ0–228,
5. वनौ0विशे0–1, पृ0–213, 214,
5. च0चि0अ0–25,
5. द्र0गु0वि0अ0–3, पृ0–196

2. कदली (MUSA SAPUNTUM LINN.)

कुल (FAMILY)- हरिद्राकुल

(सिटैमिनेसी / **SCITAMINACEAE**)

प्रचलित नाम[1]– **हि0**– केला, केरा **म0**– केलं **क0**– कवाले

त0– अरेटि, **गु0**–केला, केल्य **अ0**– तनां **बं0**– केला

फा0–मावज्, मोझ, **अं0**– प्लेंटेन (PLANTAIN) बनाना (BANANA)

ले0– मुसासेपियेन्टम् (MUSASAPIENTUM)

पर्याय[2]:–कदली, सुकुमारा, रम्भा, स्वादुफला, दीर्घपत्रा, निःसारा, मोचा और हस्तिविषाणिका संस्कृत में नाम है। सुफला, वारणबल्लभा, चर्म्मण्वती, सत्पत्री, नगरौषधि आदि अन्य पर्याय हैं। इस प्रकार राजनिघुण्टु में इसके 16 पर्याय हैं[3]–

'कदली सुफला रम्भा सुकुमारा सकृत्फला।

मोचागुच्छ फलाहस्ति विशाणी गुच्छदन्तिका।। 36।।

काष्ठीरसा च निःसारा राजेष्टा बालकप्रिया।

ऊरूस्तम्भा भानुफला वनलक्ष्मीश्च शोडश।।37।।

प्रसङ्गोल्लेखः– मुख्यतः सौन्दर्योपमाओं में ही कदली का उल्लेख है–

1. पार्वती की उन दोनों मोटी जाँघों की उपमा दो ही वस्तुओं से दी जा सकती थी– एक तो हाँथी के सूँड़ से और दूसरे केले के खंभे से। पर हाँथी की सूँड़ कड़ी होती है और केले का खम्भा बड़ा ठण्डा होता है इसलिये पार्वती की बड़ी–बड़ी जाँघों के जोड़ की कोई भी ठीक वस्तु मिल न पा सकी।[4]

उस बावड़ी के किनारे पर सुन्दर नील मणियों से बने हुए शिखरों वाला तथा सुनहरी केलियों (कदलियों) की बाढ़ से दर्शनीय क्रीड़ा पर्वत है, हे मित्र! किनारों पर चमकती हुई बिजलियों वाले तुमको देखकर यह मेरी पत्नी को प्रिय है इसलिए अधीर चित्त से उसी का स्मरण करता हूँ अर्थात तुम्हें देखकर उस क्रीड़ा पर्वत की याद आ रही है।[5]

---

1. शा0नि0,फलवर्ग,पृ0–419
2. ध0नि0–4 / 68
3. शा0नि0,पृ0–419, रा0न0आम्रादिवर्ग–36 / 37
4. कु0सं0–1 / 36
5. उ0मे0–17

2. मेरे नख क्षतों से वञ्चित चिर–परिचित मोतियों की लड़ी रूप कटि भूषण से दैव गति से छुड़ाई गयी, अर्थात वंचित की गई और सम्भोग के अन्त में मेरे हांथों से सहलाने के योग्य, सरस केले के खम्भ के समान गौर वर्ण वाली इस मेरी पत्नी की बायीं जङ्घा फड़कने लगेगी।[1]

3. हे केले के स्तम्भ के समान ऊरवाली इन्दुमति! इस युवक राजा के साथ सिप्रा नदी के तरंगों की हवा से कम्पित उद्यानों के समूह में विहार करने के लिए तुम्हारी चाहना है क्या?[2]

गुणधर्म[3]:– कदली मधुरा शीता रम्या पित्त हरा मृदुः।

कदली रस में मधुर, वीर्य में शीत, मनोरम, पित्तशामक और मृदु होता है।

औषधि हेतु प्रयोज्य अङ्ग – पुष्प, फल, काण्ड, मूल।

(i)- फल के गुण धर्म – कदली का फल रस में मधुर कषाय एवं वीर्य में कुछ शीत होता है। यह रक्त पित्त नाशक, वाजीकरण, रूचिकारक, कफवर्धक तथा गुण में गुरु होता है– **कदल्यास्तु फलं सदु कषायं नाति शीतलम्।**

रक्त पित्त हरं वृष्यं रुच्यं कफकरं गुरु।।

विशेष रूप से रक्त पित्त में इसका पका फल, अतिसार ग्रहणी में पुष्प और कच्चे फल का शाक, तृष्णा में पके फल का शर्बत विसूचिका में उत्पन्न तृष्णा में एवं उन्माद, अपस्मार में काण्ड स्वरस, मृत्रकृच्छ् में वस्ति प्रदेश पर मूल का लेप तथा अग्निदग्ध पर फलमज्जा का लेप लाभप्रद है।[4]

कोमल कदली फल रुचिकारक अम्ल और पित्तनाशक मध्यम कदली फल तृषा, रक्तपित्त, नेत्ररोग, प्रमेह, रक्तातिसार और ज्वरनाशक ग्राही कटु कषैली व रूखी है। कच्ची केले की फली मलरोधक, शीतल, कषेली, वात कफकारक, बलवर्द्धक है।

(ii)- कदली पुष्प का गुण—केले का फूल स्निग्ध, मधुर, कषेला, भारी, वातपित्तनाशक, शीतल तथा रक्त पित्त और क्षयरोग नाशक है–

कदल्याः कुसुमं स्निग्धं मधुरं तुवरंगुरू।

वातपित्तहरंशीतं रक्तपित्त क्षय प्रणुत्।।

---

1 उ0मे0–36

2. रघु0–6/35

3.शा0नि0(फलवर्गः)पृ0–420–423

4. ध0नि0करवीरादि वर्ग–4/69,पृ–179

(iii)- कदली जलगुणः–केले का जल शीतल मलरोधक तथा तृषा प्रमेह कर्ण रोगाातिसार रूधिर गिरना, दाह, रूधिर विकार , योनिरोग और शोष को दूर करता है।

(iv)- कन्द गुण– कदली कन्द बलकारक कफ पित्त नासक, भारी, वातकारक, रजोदोष, और सोमरोग को दूर करता है। यह केशो को हितकारी, दाह, कृमि और कुष्ठ नष्ट करता है।

(v)- कदली सार गुण– कदली सार मलरोधक, अप्रिय, भारी, शीतल, अतिसार विष्फोट नाशक है।

3. कन्दली (KANDALI)

कन्दली शब्द कन्दलः से बना है। जिसका अर्थ नया अंकुर या अँखुवा जैसा कि कवि ने उत्तर रामचरितम् 3/40 में उल्लेख किया है। इसके अर्थों में भिन्नता मिल रही है। संस्कृत हिन्दी कोश–आप्टे में इसका अर्थ केला कंदली वृक्ष माना गया है।

प्रसङ्गोंल्लेख– कन्दली का प्रसङ्गोंल्लेख कवि ने अपनी रचनाओं में निम्नवत् किया है:–

1. जिस मन्दराचल के शिखर पर खिली हुई कलियों वाले कन्दली पुष्पों ने धारापूर्वक वर्षा होने से भीगी हुई भूमि से निकलते हुए भाप के द्वारा अनुकूल विवाह कालिक (हवन) के धुएं से लाल नेत्रों के शोभा ने (स्मरण आने पर) मुझे पीड़ित किया।[1]
2. देखो जिस समय तुम जल बरसाते चले जा रहे होगे उस समय अधपके हरे–पीले कदम्ब के फूलों पर मड़राते हुए भौंरे दलदलों में नई फूली इुई कन्दली की पत्तियाँ चरते हुए हिरण और जंगली धरती का तीखा गन्ध सूँघते हुए हाथी, तुम्हें मार्ग बताते चलेंगे।[2]
3. छितराए हुए वैदूर्यमणि (नीलम) के समान दिखाई देने वाली, घास के कोमल अँकुओं से भरी हुई ऊपर निकले हुए कन्दली के पत्तें से लदी हुई और वीर वहूटियों से छाई यह धरती उस नायिका जैसी दिखाई दे रही है जो उजले रत्न को छोंड़कर अन्य सभी रंगों के रत्नों वाले आभूषणों से सजी हुई हो।[3]

1. रघु0–13/29 2. पू0मे0–22 3. ऋतु0–2/5

4. इस नये कन्दली के पेड़ के जल भरे लाल फूलों को देखकर मुझे उर्वशी के उन नेत्रों का स्मरण हो आया, जो क्रोध से लाल हो उठे थे और जिनमें आँसू छलक आए थे।[1]

विवरण–कन्दलिनी अथवा कन्द कन्दली का उल्लेख वैदिक साहित्य में तो नहीं है अष्टाध्यायी में 'कन्दल' पद का परिगणन 'षिदगौरादि गणपाठ' (पाणिनि 4.1.41) में अवश्य है। सूत्र द्वारा षित् तथा गौरादि प्रातिपादकों से 'स्त्रीत्वविवक्षों' में 'ङीष्' प्रत्यय द्वारा स्त्रीलिंगान्त पद की संसिद्धि का आदेश है।

अतः कन्दल पद में ङीष प्रत्यय लगने से (कन्दल+ङीष) स्त्रीलिगान्त पद 'कन्दली' की व्युत्पत्ति होगी। अर्थशास्त्र में उक्त पद दृष्टिगोचर नहीं है।

आयुर्वेदीय संहिताओं में चरक में तो इसका उल्लेख नहीं है, किन्तु सुश्रुत संहिता में एक स्थल मे इसका उल्लेख अवश्य है, जहाँ इसका परिगणन पित्त संशमन वर्ग में किया गया है।[2] तथापि संस्कृत काव्यों में कन्दल–कन्दली के बहुशः उल्लेख मिलते है। कालिदास जी ने मुख्यतः प्रयोग प्रावृट् की प्रकृति सुषमा वर्णन के प्रयोग में किया है। संस्कृत कोशों में भी कन्दल/कन्दली नानार्थवाची मिलते हैं।[3]

4. कदम्बः (ANTHOCEPHALUS CADAMBA MIQ)

(SYN- NAUXLEA CADAMOA ROXB, SACOCEPHALUS CADAMBA DURZE)[4]

FAMILY (कुल)- मञ्जिष्ठा कुल (रूबिएसी/**Rubioceae**)

प्रचलित नाम[5] :– **हिं0**– कदम, कदंब **बं0**– कदमगाछ, केलिकदम,

गु0–कदम्ब, कलम **अ0**–कदम्ब, **म0**–कलंब,

क0–कडउ, **अं0**– दि कदम ट्री **(THE KEDAM TREE)**

तै0– कदम्ब चेट्टु, **ले0**– एन्थोसिफेलस कदम्बा।

---

1. वि0उ0–4/15

2 (सु0सू0अ0 39/7)

3. अ– अमर0काण्ड–2, सिंहादिवर्ग–5/9, ब– बै0–3/3/210, स– कन्दली (कन्दल+ङीस), i-.केले का पेंड़, वि0उ0–4/5, पू0मे0–21,ऋतु0–2/5, ii-कमलगट्टा या कमलबीज–सं0हि0को0आप्टे,पृ0–244

4. सं0का0की वि0व0–प्रो0आर0एस0सिह,पृ0–46

5. शा0नि0,पृ0–378

पर्याय[1]:– वृन्तपुष्प, सुरभि, ललनाप्रिय, कादम्बर्य, सिन्धुपुष्प, मदाढ्य एवं कर्णपूरक– ये कदम्ब के पर्याय हैं। इसके दो भेद हैं–

1. **धारा कदम्ब**– इसके कादम्बर्य, हरिप्रिय पर्याय हैं।

2. **धूलि कदम्ब**– जिसके नीप, सुवास, वृन्तपुष्पक पर्याय हैं।

प्रसङ्गोल्लेख

कवि ने अपनी रचनाओं में धारा तथा धूलि कदम्ब के दोनों भेदों का उल्लेख किया है–

1. उस समय वर्षा के कारण पोखरों में से उठी हुई सोंधी गंध, अधखिली मंजरियों वाले कदम्ब के पुष्प और भौंरों के मनोहर स्वर तुम्हारे न रहने से मुझे बड़े कष्ट दाई हुए।[2]

2. वर्षा ऋतु में वह कुटज और अर्जुन की माला गले में डालकर तथा शरीर में कदम्ब के पराग का अंग राग लगाकर, मतवाले मोरों से भरे हुए क्रीड़ा पर्वतों पर विहार किया करता था।[3]

3. वर्षा ऋतु मं वह कुटज और अर्जुन और केतकी से भरे हुए जंगल को कँपाता हुआ उन वृक्षों के फूलों की सुगन्ध में बसा हुआ और चन्द्रमा की किरणों तथा बादलों से ठंडा होकर बहने वाला वायु किसे मस्त नहीं कर देता है?[4]

4. इन दिनों नई केसर, केतकी और कदम्ब के नये फूलों की मालाएँ गूँथकर स्त्रियाँ अपने जूड़ों में बाँधे ले रही है। और ककुभ (अर्जुन) के फूलों के मनचाहे ढंग से बनाए हुए कर्णफूल अपने कानों में पहने ले रही हैं।[5]

5 वन में चारों ओर खिले हुए कदम्ब के फूल ऐसे लग रहे हैं मानो वर्षा के नये जल से गर्मी दूर हो जाने पर सारा जंगल ही मगन हो उठा हो।[6]

6 देखो जब तुम जल बरसाते चले जा रहे होंगे उस समय अधपके हरे पीले कदम्ब के फूलों पर मँडराते हुए और तुम्हें मार्ग बताते चलेंगे।[7]

2. अलकापुरी की कुलबधुएँ हाथों में कमल के आभूषण पहना करती हैं अपनी चोटियों में नये खिले हुए कुन्दन के फूल गूँथा करती है। अपने मुँह को लोध्र

---

1. धा०नि०–5/94–95　2. रघु०–13/27　3. रघु०–19/37　4. ऋतु०–2/17
5. ऋतु०–2/21　6. ऋतु०–2/24　7. पू०मे०–22

के फूलों का पराग मलकर गोरा किया करती हैं, अपने जूड़े में नये कुरक्क के फूल खोंसा करती है अपने कानों पर शिरीष के पुष्प टांगे रखती है और वर्षा में फूल उठने वाले कदंब के फूलों से अपनी मांग संवारा करती हैं।[1]

कदम्ब के गुण धर्म

कदम्ब रस में कषाय, वीर्य एवं गुण में शीत होता है। यह वृणरोपण, कास, दाह, और विषहर होता है[2]

'कदम्बस्तु कषायः स्याद्रसे शीतो गुणेऽपि च।

व्रणसंरो हणश्चापि कासदाह विषापहः।।96।।,

मुख्य प्रयोगः– ग्रहणी, अतिसार, रक्ताभिसार, ज्वर दाह, स्तन्य शुक्रवृद्धि एवं व्रणों में इसका प्रयोग करते हैं।

प्रयोज्य अङ्गः– त्वक्, फल, पत्र।।

शालिग्राम निघण्टु भूषण में कदम्ब को पुष्पवर्ग में रखा गया है। इसके अनुसार कदम्ब चरपरी, कड़वी, मधुर, कषेली, खारी, शुक्रवर्धक, शीतल, भारी विष्टम्भ कारक, रूषी, स्तनों में दूध बढ़ाने वाली, मलरोधक, वर्णकारक तथा यानिरोग रक्त रोग मूत्र कृच्छ्र वात पित्त, कफ, दाह और विष को दूर करने वाली है। इसके अंकुर कषेले, शीतवीर्य, अग्निदीपक, हल्के तथा अरूचि रक्त पित्त और अतिसार को दूर करने वाले हैं। इसके फल रूचिकारक, भारी उष्णवीर्य और कफ कारक हैं। इसके पके फल कफ पित्त कारक और वात विनाशक हैं[3]

''नीपस्तुचाम्लस्तुवरोमधुरः शीतलः स्मृतः।

राजकदम्ब अम्ल, कषेली मधुर शीतल तथा विष रूधिर विकार पित्त और कफ को दूर करने वाली हैं।

5. केतकी (PANDANUS TECTORIUS)

पर्याय/नाम[4]:– सं0– केतकी, सूची पुष्प, जम्बूक, **हि0**–केवड़ा, गगन धूल

---

1. उ0मे0–2 2 ध0नि0,पृ0–226 3 शा0नि0पृ0–379 4 वनौ0विशे0–2, पृ0–258, शा0नि0पृ0–381

गु0– केवड़ो **बं0**– केया **अं0**–कारडेराबुश(CALDERA-BUSH)

ले0– पेन्डेनश टेक्टोरियस, पेफेसिकु लेरियस

प्रसङ्गोल्लेख– केतकी अथवा कैरव का उल्लेख कवि ने निम्न प्रसंगों मे किया है–

केवड़े के फूलों का पराग उड़ रहा था वह सैनिकों के कवचों पर जमकर विना यत्न के ही सुगन्धित चूर्ण का काम देने लगा था। एक युवा राजा श्रृङ्गार हेतु काम के आभूषण के रूप मे कटे हुए केतकी के स्वच्छ पत्तों पर अपने नख चिन्ह बना रहा था। हे सीते! समुद्र तट का वायु तुम्हारे मुख पर केतकी का पराग फैलाये दे रहा है। मानो वह जान गया हो कि मैं तुम्हारे अधरों को चूमने ही वाला हूँ।[1]

पूर्व दिशा का अगला भाग कुछ–कुछ उजला दिखाई पड़ रहा है मानो केतकी के फूलों का पराग उधर आ फैला हो।[2] हे मेघ जब तुम दशार्ण देश के पास पहुचोगे तब खिले हुये केतकी के कारण वहां के पुष्पित उपवन श्वेत दिखाई देंगे।[3] केतकी की सुगन्ध से युक्त वायु किसे मस्त नहीं कर देती? इसकी श्वेत कलियों को देखकर ऐसा लगता है जैसे सारा जंगल हंस रहा हो, वर्षा के नये जल से केतकी पुष्पों की सुगन्ध फैल रही है।[4]

गुणधर्म/प्रयोग[5]:– यह स्निग्ध, अतिशीत वीर्य है। अर्श, अपस्मार, चेचक, खसरा एवं पित्तजन्य शिरःशूल पर औषधि के रूप में प्रयोग किया जाता है। "अमर कोष ने केतकी का परिगणन हृद्रुमों मे किया है।[6]

यह त्वचागत वर्णविकारों एवं कुष्ठ में लाभप्रद है। रक्तवह संस्थान, हृदय की धड़कन को दूर करने के लिए इसका प्रयोग किया जाता है।[7]

6. ताल (BOROSSUS FLABELLIFER LINN)

FAMILY (कुल)- PALMAE (नारिकेल कुल)

ताल के पर्याय[8]– **तालो ध्वज द्रुमः प्रांशुर्दीर्घस्कन्धोदुरारूहः।**

तृणराजो दीर्घतरूर्लेख्य पत्रो द्रुमेश्वरः।।61।।

1. रघु0–4/55, 6/17, 13/16
2. कु0सं0–8/50, 8/58
3. पू0मे0–25
4. ऋतु0–2/17, 2/24, 2/27
5. वनौ0विशे0–2, पृ0–258, 259
6. अमर0–2/4
7. द्र0गु0वि0अ0–2, पृ0–143
8. ध0नि0–5/61

ध्वज द्रुम, प्रांशु दीर्घस्कन्ध, दुरारूह, तुणराज, दीर्घतरू, लेख्यपत्र और द्रुमेश्वर– ये ताल के पर्यायवाची हैं। राजनिघण्टु में इसके सोलह नाम हैं।[1]

प्रचलित नाम[2]:– **हिं0**– ताड़, तरकुल **बं0**– ताल, **अ0**–ताड़

गु0–ताड़ **अं0**–पालमाईपाम , **(PALMYRAPALM)** **फा0**–ताल,

ले0– बोरेसस प्रलेबेलिफोर्मिस **(BORASSUS, FLABELLFORMIS)**

अ0–तार,

प्रसङ्गोल्लेख– प्रसङ्गोल्लेख इस प्रकार है–

1. चलते समय घोड़ों के शरीर पर के कवच ऐसे ऊँचे स्वर से खनखना रहे थे कि वायु के चलने से जो बड़े–बड़े ताड़ के पेड़ों में से ध्वनि निकल रही थी, वह भी उसके आगे दब गई।[3]
2. तब अपना दाहिना हाथ ऊपर उठाए हुए शत्रुघ्न की ओर झपटता हुआ वह राक्षस ऐसा लगा मानो बवंडर से उठाया हुआ कोई ऐसा पहाड़ चला आ रहा हो जिसकी चोटी पर ताड़ का पेड़ खड़ा हो।[4]
3. वहाँ के जानकार लोग, यह कथा सुना–सुनाकर बाहर से आए हुए अपने सम्बन्धियों का मन बहला रहे होंगे कि यहाँ पर वत्स देश के राजा उदयन ने उज्जैनी के महराज प्रद्योत की प्यारी कन्या वासवदत्ता को हरा था, यहीं उनका बनाया हुआ 'ताड़' के पेड़ों का सुनहरा उपवन था और यहीं पर मद में भरा हुआ नवगिरि नाम का हाथी, खूँटा उखाड़कर इधर–उधर पागल हुआ घूमता फिरा करता था।[5]

ताड़ के गुणधर्म

धनवन्तरि निघपटु के आम्रादिः पंचम वर्ग में इसका उल्लेख मिलता है–

''फलं स्वादुः रसे पाके तालजं गुरु पित्तजित्।

तद्बीजं स्वादुपाकं तु मूलं स्याद् रक्तपित्तजित्।।62।।

ताल का फल रस और विपाक में मधुर और गुण में गुरू तथा पित्तशामक होता है। इसका बीज विपाक मे मधुर और मूल रक्तपित्त को जीतने वाला होता है।[6]

1. रा0नि0,पृ0–281 2. शा0नि0फलवर्ग,पृ0–460, रा0नि0प्रमद्रादिवर्ग, पृ0–281 3. रघु0–4/56
4. रघु0–15223 5. पू0मे0–35 6. ध0नि0–5/62

ताड़ के विभिन्न भागों के गुण[1]

ताड़ का फल पुष्टि कारक, बलवर्धक, कृमिनाशक कुष्टनाशक रक्तपित्त हारक व स्वादु रसयुक्त है।

कच्चा फल स्निग्ध स्वादिष्ट भारी मलरोधक, रुधिरगत दोष शामक है।
ताड़ का पक्का फल बहुमूत्रजनक तन्द्राकारक शुक्रदायक है। इसकी मज्जा मदकारक हल्की कफकारक, वातपित्त नाशक मधुर और सारक है।

ताल फलोद्भव जल के गुण शालिग्राम निघण्टुकार ने बताए हैः–

तालाम्बुपित्त जिच्छुक्रस्तन्य वृद्धिकरंगुरु।

ताड़ के फल का जल पित्त नाशक, शुक्रवर्धक भारी और स्तनों में दूध को उत्पन्न करने वाला है। इसकी जड़ स्वाादिष्ट पाचक रक्तपित्त नाशक है।
औषधीय प्रयोज्यांग– फल फूल बीज क्षार।

तालश्च मधुरः शीतः पित्तदाह श्रमापहः।

सरश्च कफपित्तध्नो मदकृद्दाहशोषनुत्।।85।।

ताड़ वृक्ष मधुर रस वाला तथा शीतल हैं और पित्त दाह तथा श्रम को दूर करने वाला है। यह दस्तावर कफ पित्त नाश एवं सूखा रोग को नाश करने वाला है।

7. ताडी (ली)

(CORYPHA UMBRECULI FERA LINN)

(C. TALIERA ROXB)

FAMILY : PALMAE

प्रचलित नामः– बं0–ताली कन्न0–ताली

अं0–तालीपाट पाम(**TALIPOT PALM) THE TREE TALIPOT PALM,**

प्रसङ्गोल्लेख– कवि की रचनाओं में ताली का उल्लेख निम्न सन्दर्भों में हुआ हैः–

---

1. शा0नि0फलवर्ग,पृ0–461–62

1. विजयी रघु महाराज इस प्रकार से पूर्व दिशा के सब देशों पर अपना अधिकार करते हुये 'ताली' के वनों से श्याम वर्षा जो महासमुद्र का तट प्रान्त है वहाँ पहुँचे।[1]
2. ताली वनों से 'मर्मर'' ध्वनि करने वाले, समुद्र के तटों पर अन्य द्वीपों से लवङ्ग पुष्पों को लाने वाली हवा से पसीने को सुखाने वाली तुम इस राजा के साथ विहार करो ।[2]
3. लोह चक्र के समान क्षार समुद्र की वेला दूर से छोटी मालूम पड़ती हुई और तमालों तथा 'तालीवन'' राजि से श्याम वर्षा वाली धारा से निबद्ध कलंक रेखा के समान मालुम पड़ती है।[3]

ताल, नारिकेल, खजूर आदि अन्य तज्जातीय वृक्षों के साथ 'ताली'' भी संस्कृत कवियों का सुपरिचित एवं वहुचर्चित वृक्ष है। और ताली के स्वरूप स्वभाव, उद्धभव क्षेत्र एवं लौकिक मान्यताओं आदि का जितना विस्तृत प्रकाश हमें इन प्रकारों द्वारा मिलता है अन्यत्र प्रायः दुर्लभ है ।

विवरणः— महाकवि कालिदास के अतिरिक्त अधिकांश अन्य परावर्ती कवियों एवं काव्य लेखकों ने भी अपनी कृतियों में इसका यथा स्थान उल्लेख किया है। कवि कुल शिरोमणि कालीदास जी ने इसके लिए **'राज तालि''**[4] संज्ञा का भी प्रयोग किया है।

संस्कृत काव्यों में संस्कृत कोशकारों तथा तत्क्षेत्र परक कतिपय निघपटु कारों को भी प्रमाणित किया है। जिन्होंने अपने शब्दाभिधान कोशों में तद्वाचक ताली के समावेश के साथ काव्यगत एतत्सम्बन्धी सूचनाओं का उपयोंग इसकी अभिधान माला में भी किया है। अमर कोशकार ने **'ताली'** का समावेश तालनारिकेल हिन्ताल—खर्जुर आदि के साथ 'तृणद्रुम'' वर्ग में किया है।[5] ताड़ी कफ कारक, वीर्यवर्धक वादी श्लेष्मवर्द्धक, काशनाशक और उबकाई को दूर करने वाली है।

श्लेष्मदोषकरी वृष्यावातलाश्लेष्मवर्द्धिनी, कास ह्नल्लास विध्वंस करणी ताल मण्डिका।[6]

नवीन ताड़ी अन्यन्त मदकारक और खट्टी होने पर पित्तकारक और वात हारक है। इसका औषधीय प्रयोग भी ताड़ के समान होता है।

1, रघु0—4/34 2. रघु0—6/57 3. रघु0—13/15

4. अभ्यभूयत वाहानां चरतां मात्रशिजितैः। वर्त्मभिः मवनादधत वनध्वनिः। रघु0—4/56

5. अमर0—2/4/169, बैज0—3/203, ध0नि0,पृ0—182 6. शा0नि0,पृ0—462

8. दूर्वा CYNODON DAETULON LINN . PERS.

FAMILY(कुल) : GRAMINEAE (यवकुल)

प्रचलित नाम[1]– **हि0**– दूव, (दुव्वा, दुर्वा, दूवा), हरियाली , हरी, नीली, दूब तै0 दुर्वाल,

अं0– क्रीपिंग साइनोडान (CREEPING CYNODON)

बं0–नील दूर्वा, **म0**–नीली दुर्वा, **गु0**–नीलाध्रो, **क0**– हसुगरके,

पर्याय[2]– राजनिघण्टु में इसकें 21 नाम बताये गये हैं :– नील, दूर्वा , हरिता, शाम्भवी, श्यामा शान्ता, शतपर्विका, अमृता, पूता, शतग्रन्थि, अनुष्ठा वल्लिका, शिवा, शिवेष्टा, मंगला, जया सुभगा, भूतहन्ती, शतमूला, महौषधी, विजया, गौरी , शान्ता आदि।

प्रसङ्गोल्लेख– दूर्वा का उल्लेख निम्न सन्दर्भों में हुआ है–

1. उस अतिथि ने दूब, यव के अंकुर (जई,भुजरिया) पीपल की छाल तथा नये पल्लवों (मतान्तर से महुए के फूलों या कमलों) से युक्त जाती में वृद्धजनों से की गयी आरती को प्राप्त किया अर्थात् जाति के बड़े बूढ़ों लोगों ने नंवाभिषिक्त राजा 'अतिथि'' की दूर्वादि युक्त आरती की ।[3]
2. पहले दूब के अंकुरो और सरसों के दानों से उनका श्रृङ्गार किया गया फिर उन्हें नाभि तक उँची रेशमी साड़ी पहनाकर उसमें एक बाण खोंस दिया गया। इस प्रकार तेल चढ़ाकर श्रृङ्गार की सारी सजावट पूरी कर दी गई।[4]
3. वहाँ तीर पर फूल, दूब, अक्षत आदि वे सब पूजा सामाग्रियाँ बिखरी पड़ीं थीं जो मुनियों ने भली प्रकार स्नान–पूजा करके वहाँ ला चढ़ाई थीं।[5]
4. बाह्मी आदि माताएं भी बधावे की सामाग्री लेकर बालक के पास चली आई और उसके सिर पर दूब और अक्षत छिड़ककर सब उसे अपनी–अपनी गोदी में उठाए फिरने लगीं।[6]
5. अनुसूमा प्रियंवदा से कहती है कि तुम केसर की माला ले लो तब तक मैं भी उस शकुन्तला के लिए गोरोचना, तीर्थों की मिट्टी दूब के पत्तों को इन मांगलिक सामाग्रियों को इक्टठा करती हूँ।[7]

1.रा0नि0,पृ0–253 2. ध0नि0,शाल्यमलादि वर्ग–106–07 3. रघु0–17/12

4. कु0सं0–7/7 5. कु0सं0–10/45 6. कु0सं0–11/35

7. अभि0शा0–4/4,के बाद गद्य

गुण/प्रयोगः– यह मधुरतिक्त शीत वीर्य, तथा रोचक है। यह रक्त रक्तपित्त तथा अतिसार को नाश करने वाली और कफजन्य एवं वात जन्य ज्वर को दूर करने वाली है:–

नील दूर्वा तु मधुरा तिक्ता शिशिर रोचनी,

रक्तपित्तातिसारघ्नी कफवातज्वरापहा।।8।।[1]

चार प्रकार की दूर्वा बताई गई है :–

1. नील दूर्वा – हरी दूब
2. गोलोमी श्वेत दूर्वा – सफेद दूब
3. माला दूर्वा – गोडर दूब

सभी प्रकार की दूब कषाय तथा मधुर रस वाली शीतल, पित्तजन्य प्यास, आरोचक तथा वमन का नाश करने वाली है और दाह, मूर्च्छा, ग्रह बाधा, तथा भूत बाधा को शान्त करने वाली, कफ, श्रम को ध्वंस करने वाली एवं तृप्ति देने वाली हैं–

'दूर्वाः कषाया मधुराश्च शीताः पित्तातृषाऽरोचक वान्तहन्त्रयः।

सदाहमूर्च्छाग्रहभूतशान्ति श्लेष्मश्रमध्वंसनतृप्तिदाश्च।।117।।

दूर्वा वीर्य में शीत रस में कषाय रक्त पित्त और कफ को दूर करने वाली होती हैं–

'दूर्वा शीता कषाया च रक्तपित्त कफापहा।'[2]

विशिष्ट प्रयोगः– दूब में विटामिन प्रचुर परिमाण में होता है। यह लघु स्निग्ध, मधुर, कषाय, तिक्त, शीतवीर्य, त्रिदोषहर, कफ, पित्त, शामक, तृषा, वमन, रक्तदोष श्रम, अरूचि अर्श, प्रदर, गर्भपात आदि नाशक है। खुजली और दाद पर दूब को हल्दी के साथ पीसकर लगाते हैं और भी इसके बहुत लाभ हैं।

9. शष्प (NEW GRASS)

कवि ने अपनी रचनाओं में दूर्बा के साथ–साथ शष्प का भी उल्लेख किया है, संस्कृत हिन्दी कोश आप्टे के अनुसार इसका अर्थ 'नया घास' होता है।[3] इसके औषधीय प्रयोग भी लगभग दूर्बा के समान ही होते हैं। प्रसङ्गोल्लेख निम्नवत् है–

---

1. रा0नि0,शाल्मल्यादि वर्ग,पृ0–253
2. ध0नि0, करवीरादिवर्ग,पृ0–195
3. सं0हि0को0,पृ0–1008 (शष् + पक) ष्याम्–नया घास

1. दूसरे (बाइसवें) दिन वशिष्ठ की होम सम्बन्धी धेनु (नन्दिनी) अपने सेवक राजा दिलीप का मेरे में दृढ़ भक्ति है या नहीं इस भाव को जानने की इच्छा रखती हुई, गङ्गा के वारि प्रवाह के समीप उगी हुई है छोटी–छोटी घासें जिसमें ऐसे पार्वती के पिता (हिमालय पर्वत) की गुफा में घुसी।[1]
2. हरिणियों के मुँह से चबाई हुई हरी–हरी घासों और नई कोपलों वाले वृक्षों से छाए हुए विन्ध्याचल के जंगल भला किसका मन नहीं लुभा लेते।[2]

10. नारिकेलः (COCOS NUCIFERA LINN.)

FAMILY (कुल) - नारिकेल कुल (पामी/PALMAE)

पर्याय[3]– **'नारिकेलो रसफलः सुतुङ्गः कूर्चशेखरः।**

तालवृक्षो दृढफलों लाङ्गली दक्षिणात्यकः।।67।।

रसफल, सुतुङ्ग, कूर्चशेखर, तालवृक्ष, दृढफल, लाङ्गली और दक्षिणात्यक– नारिकेल के पर्याय हैं।

प्रचलित नाम[4]–

हिं0– नारिल, नरियल, खोपरा — **फा0**–जोजहिन्दी नारीगल

अं0 – कोकोनट् पाम (COCONUT PALM) — **मा0**– श्रीफल

ले0– कोकोसून्युसिफेरा ;COECSNUSIFERA) — **गु0**–नालीयर

बं0– नारकोल, नारिकेल, — **क0**– तेंगिनकायि

प्रसङ्गोल्लेख– प्रसङ्गोल्लेख निम्नवत् है :–

1. लड़ाई हो चुकने पर रघु के वीर सैनिकों ने महेन्द्र पर्वत पर पान के पत्ते बिछा–बिछाकर मदिरालय बना लिया जहाँ नारियल की मदिरा के साथ–साथ मानो उन्होंने शत्रुओं का यश भी पी डाला हो।[5]
2. शकुन्तला बिदा के समय अनसूया प्रियंवदा से कहती है कि वह जो आम की डाली पर नारियल लटक रहा है उसमें मैंने बहुत दिनों तक सुगन्धित रह सकने

1.रघु0–2/26 2. ऋतु0–2/8 3. ध0नि0–5/67, आम्रादिवर्ग

4. शा0नि0,पृ0–425 5. रघु0–4/42

वाली वकुल की माला आज के लिए रख छोड़ी है। जाओ उसे उतार लाओ।[1] काव्यों में नारिकेर, नाकेल, नारिकेली, नालिकेर, नालिकेरी आदि नामों का उल्लेख मिलता है।[2] किन्तु कालिदास जी ने नारिकेल संज्ञा का प्रयोग किया है।

गुण– औषधीय रूप में इसके पुष्प, फल, क्षार, तैल, मूल, जल, प्रयोज्य अङ्ग हैं। इनके क्रमशः गुण इस प्रकार है :–

(i) फल–नारिकेल का फल गुण में गुरू, स्निग्ध, पित्त का शामक, रस में मधुर, वीर्य मे शीत, बलमांसकारक, शुक्रवर्धक बृंहण और बस्ति शोधक है यथा निघण्टुकारों ने लिखा है :– **नारिकेलं गुरू स्निग्धं पित्तकृत, स्वादु शीतलम्।**

बलमांस प्रदं वृष्यं बृहणं बस्ति शोधनम्।।68।।[3]

(ii) नारियल पुष्प– **नारिकेलस्य पुष्पन्तु शीतरक्तातिसार हृत्।**

रक्त पित्तं प्रमेहंञ्चसोमरोगञ्चनाशयेत्।।[4]

नारियल पुष्प शीतल तथा रक्तातिसार, रक्तपित्त, प्रमेह सोमरोग को दूर करता है। यह मलस्तम्भक भी है।

(iii) नारियल का तेल– नारियल का तेल वाजीकर[5], भारी, क्षीण धातु वाले मनुष्यों को पुष्टिकारक, वातपित्त नाशक तथा मूत्राघात, प्रमेह, श्वास खांसी, राजयक्ष्मा और मेघा के लोप में हितकारी है तथा क्षयरोग को हरने वाला है।

(iv) नारियल का दूध– नारियल का दूध बलकारक, रूचिदायक, भारी पचने में स्वादिष्ट स्निग्ध वीर्य्यवर्द्धक दाहकारक किञ्चित् गरम तथा वात, कफ, गुल्म और खाँसी को दूर करता है।

(v) नारियल के जल का गुणः–

नारियल का जल लघु, बलकारक शीतल, रस में मधुर तथा पाक में गुरू है। यह पित्त विकार, पीनस (दुर्गन्ध नासागत स्राव) रोग, प्यास, श्रम तथा दाह शामक सूखा रोग नाशक तथा सुखदायक है–

---

1. अभि0शा0–4/4 के आगे गद्यभाग
2. का0 का वा0वै0–माया त्रिपाठी,पृ0–207
3. ध0नि0,आम्रादिवर्ग–5/68,पृ0–217
4. शा0नि0,पृ0–427
5. नारिकेल फलोद्भूतं तैल वाजीकरंगुरू

नारिकेल सलिलं लघु वल्यं शीतलं च मधुरं गुरू पाके।

पित्त पीनस तृषाश्रम दाह शान्ति शोष शमनं सुखदायि।[1]

पके नारियल का जल भी थोड़ा पित्तकारक, रूचिकारक, मधुर, दीपक, बलकारक, गुरू, वृष्य तथा वीर्यवर्द्धक है।

11 वेत्र (लता) (CALAMUS ROTANG LINN.)

FAMILY- PALMAE

प्रचलित नाम[2]–

हि0– वेत, **वं0**– वेत्र, वेत, **गु0**– वेतर, **म0**–वेतसु, मोठा

अं0– केन (CANE) **ले0**–केलामसरोटंग (ALMUS ROTANG)

क0– वेण्डमु, **तै0**– पीपरूवा **फा0**– वेत, **अ0**– खलाफ

पर्याय[3]– वेतस्, निचुल, वञ्जुल, दीर्घपलक, कलन, मञ्जरी, नम्र, सुषेण तथा गन्ध पुष्पक ये सब वेतस के पर्याय हैं।

प्रसङ्गोल्लेख– वेत्र लता व वेत्रदण्ड का उल्लेख कवि ने निम्नवत् प्रसङ्गों में किया है–

1. भगवान राम सीता से कहते हैं कि मुझे वे दिन याद आ रहे हैं जब मैं यहाँ एकान्त में वेतं की झोपड़ी में तुम्हारी गोद में सिर रखकर सोया करता था और गोदावरी का ठंडा वायु मेरे आखेट की थकावट मिटाया करता था।[4]
2. विदूषक दुष्यन्त से पूँछता है अच्छा मित्र यह तो बताइए कि नदी में जो वेंत की लता कुबड़ी वनी खड़ी रहती है वह अपने मन से वैसी रहती है या नदी के वेग के कारण?[5]
3. **'अस्मिन्वेतसपरिक्षिप्ते लतामण्डपे संनिहितयाशकुन्तलाभवितव्यम्।** शकुन्तला को तो वेतों से घिरे हुए इस लता मण्डप में ही कहीं बैठी होनी चाहिए।[6]

---

1. रा0नि0आम्रादिवर्ग,पृ0–349 2.रा0नि0मूलकादिवर्ग,पृ0–196 3. रा0नि0प्रभद्रादिवर्ग:,पृ0–285
4. रघु0–13/35 5. अभि0शा0अंक–2,गद्यभाग 6. अभि0शा0–3/6पूर्वगद्य

4. कञ्चुकी कहता है– 'आह, मेरी भी क्या दशा हो चली है– जिस वेंत की छड़ी को कभी मैं रनिवास के द्वारपाल का नियम समझकर हाँथ में लिए रहा रिता था वही अब इस बुढ़ापे में यह मुझ लड़खड़ाते पैरों वाले का सहारा बना चली है।[1]

गुणधर्म/प्रयोग[2]– औषधि रूप में मूल शाखाग्र फल का उपयोग करते हैं। राज निघण्टु में मूल क्वाथ– 50 ग्राम से 100 ग्राम तक। शाखाग्र स्वरस 10ग्राम–20 ग्राम तक मात्रा बताई गई है। इसके गुण निम्नवत् है :–

वेतसः कटुकः स्वादुः शीतो भूतविनानः।

पित्तप्रकोपणो रूच्यो विज्ञेयो दीपनः परः।

रक्त पित्तोद्‌भवं रोगं कुष्ठदोषं च नाशयेत्।।107।।

वेतस् कटु तथा मधुर रस वाला शीत, व्रणशोधक होते हैं। ये रक्त पित्त को दूर करने वाले, रस में तिक्त–कषाय तथा कफशामक हैं–

'वेतसस्य द्रवं शीतं रक्षोघ्नं व्रणशोधनम् ।

रक्तपित्तहरं निक्तं सकषायं कफापहम् ।।18।।

वेत्र, वेंत, योगिदण्डु, दण्ड तथा मृदु पर्वक ये सब भी वेत के नाम हैं। ये पाँचों वेंत शीतल कषाय रस वाले तथा भूत बाधा एावं पित्त विकार नाशक होते हैं यथा–

वेत्रो वेतों योगिदण्ड, सदण्डों मृदुपर्वकः।

वेत्रः पञ्चविधः शैत्य, कषायो भूतपित्तहृत्।।41।।

12. शरः (SACCHARUM MUNFA ROXB)

कुल–यवकुल (ग्रामिनी / GRAMINEAE)

प्रचलित नाम[3]:–

हि0– सरपत, कंडा। **बं0**– शर **अं0**– इक्षुर (EKSHURA)

म0– तिरकांडे **गु0**– तीरकांस

ले0– सेकेरम मुञ्जा (SACCHARUM MUNFA ROXB)

---

1. अभि0शा0–5/3
2. द्र0गु0वि0, ध0नि0, शा0नि0 एवं रा0नि0 के अनुसार
3. द्र0गु0वि0अ0–8,पृ0–637

पर्याय[1]**:–** **शरो बाण इषु:काण्ड उत्कट, सायकः क्षुरः।**

स्थूलोऽन्यः इक्षुको प्रोक्त इक्षुरश्चापि नामतः।।30।।

वाण, इषु, काण्ड, उत्कट, सायक, क्षुर ये पर्यायवाची है। अन्य प्रकार का स्थूल शर होता है। इक्षुक और इक्षुरक इसके पर्याय हैं।

प्रसङगोल्लेखः– कवि ने इसका उल्लेख भूरिशः किया है :–

1. इसके बाद सीता अधिक सुन्दर नेत्रों वाले तथा शर (सरकण्डों/कास) के समान पाण्डु वर्ण (अतएव) बिना कहे ही गर्भावस्था को बतलाने वाले मुख से पति (राम) को आनन्द देने वाली हुई। (सीता को मुख पाण्डुता से गर्भिणी जानकर राम बहुत आनन्दित हुए)।"[2]
2. देखो सुन्दरी! तुम जो चन्द्रमा की ओर टकटकी लगाए देख रही हो तो पके हुए सरकंडे के समान गोरे–गोरे और स्वाभाविक प्रसन्नता से खिले हुए तुम्हारे गाल ऐसे लग रहे हैं मानों उन पर चांदनी चढ़ी चली आ रही हो।[3]
3. कृत्तिकाओं ने तब लज्जा और भय के कारण वे एक सरपत की झाड़ी में अपने–अपने गर्भ छोंड़कर घर लौट गईं।[4]
4. शिव ने पार्वती से कुमार जन्म की कथा कही – देखो मैने अपना जो अचूक वीर्य अग्नि में रख दिया था उसे अग्नि ने गंगा में जा छोड़ा वह फिर इन स्नान करती हुई छहो– कृत्तिकाओ के पेट मे पहुचकर गर्भ जा बना और तब उस गर्भ को कृत्तिकाओं ने सरपत की झाड़ी में ले जा डाला।[5]
5. मालविका के सौन्दर्य का वर्णन करते हुए राजा कहता है कि इने–गिने आभूषण पहने हुए और सरकंडे के समान पीले गालों वाली यह सुन्दरी वैसी ही दिखाई दे रही हैं जैसे वसंत से पके हुए पत्तों वाली किसी कुन्दलता में इने–गिने फूल बचे रह गए हों।[6]
6. इसी प्रकार पूर्व मेघ में भी कवि ने सरकंडो को वेत्रवती नदी के हाँथ बताया है।[7]

यह उत्तरी भारत, पंजाब तथा गंगातट के ऊपरी हिस्से में उत्पन्न होता है। देखने में इक्षु के समान एक बहु वर्षायु क्षुप है। यह 10 से 18 फीट ऊँचा होता है।

---

1. ध0नि0–4/120
2. रघु0–14226
3. कु0सं0–8/74
4. कु0सं0–10/60
5. कु0सं0–11/12–13
6. माल0–3/8
7. पू0मे0–45

गुणधर्म[1]– दोनों प्रकार के शर रस में मधुर तिक्त, वीर्य में कुछ उष्ण तथा कफ भ्रम और मद का नाश करने वाले, बल और शुक्र को बढ़ाने वाले होते हैं इसके नित्य के सेवन से किञ्चित वात की वृद्धि होती है :–

शरद्वयं स्यान्मधुरं सतिक्तं कोष्णं कफभ्रान्तिमदापहारि।

बलं च वीर्य च करोति नित्यं निषेवितं वातकरं च किञ्चित।।

मुख्य आमयिक प्रयोग– यह रक्तपित्त रक्तविकार, अर्श, प्रदर, दाह, तृष्णा और मूत्रकृच्छ मं उपयोगी होता है। **विशिष्ट योग**– तृणपञ्चमूलक्वाथ।

13 सप्तपर्ण (ALSTONIA SCHOLARIS R.BR)

कुल–कुटज कुल (एपोसाइनेसी / **APOCYNACEAE**)

नाम[2]– **हि०**– छितवन, सतौना। सतवन छतिवन। **बं०**– छनिमगाछ छेतेन,

मं०– सात्विण **गु०**– सात्विन् **क०**– एलेलेम, **तै०**– एलाकुल

ले०– एल्स्टोनया स्कालेरिस (ALSTONIA SCHOLARIS R.BR) **अं०**–Dita

पर्याय[3]– शुक्तिपर्ण, छत्रपर्ण, सुपर्णक, सप्तच्छद, गूढपुष्प और शाल्मलिपत्रक ये सप्तपर्ण के पर्याय हैं। रजनिघण्टुकार ने इसके 13 (तेरह) पर्याय लिखे हैं।[4]

प्रसङ्गोल्लेख– महाकवि कालिदास जी ने इसका नामोल्लेख दो प्रकार से किया है, पहला सप्तपर्ण और दूसरा सप्तच्छद क्रमशः निम्नवत् है–

1. (शरद ऋतु ने चारो ओर) छितवन के जो फूल फूले थे उनकी मद भरी गन्ध पाकर (रघु के हाथियों ने सोचा कि ये भी हाथी है और हमसे होड़ करके मद बहा रहे हैं इसलिए वे भी) ईर्ष्या से अपनी सूँड के नथुनों से दोनो कपोलों, कमर और दोनो आँखों से मद बहाने लगे हैं।[5]
2. जब अज के हाँथियों ने उसके छितवन के दूध के समान कसेले मद की गन्ध पाई, तब वे हाँथीवानों (महावतों) के बार–बार रोकने पर भी इधर–उधर भाग खड़े हुए।[6]

1.ध०नि०–4 / 121, द्र०गु०वि०अ०–8,पृ०–638
2. ध०नि०पृ०–141
3. ध०नि०पृ०–141
4. रा०नि०पृ०–4
5. रघु०–4223
6. रघु०–5248

3. जिन मोरों ने नाचना छोड़ दिया है उन्हें छोड़कर अब कामदेव उन हंसों के पास जा पहुंचा है, जो बड़ी मीठी बोली में रूनझुन–रूनझुन कर रहे हैं 'फूलों की सुन्दरता भी कदम्ब, कुटज, अर्जुन, सर्ज और अशोक के वृक्षों को छोड़कर 'छतिवन' के पेड़ पर जा बसी है।[1]

गुणधर्म[2] :– आयुर्वेदानुसार सप्तपर्ण त्रिदोष का शमन करने वाला हृदय के लिए हितकर सुगन्धयुक्त, अग्निदीपन, सारक होता है। यह शूल, गुल्म, कृमि और कुष्ठ का नाश करता है, यथा– **त्रिदोश शामनोहृद्यः सुरभिर्दीपनः सरः।**

शूलमुल्मकृमीन् कुष्ठं हन्ति शाल्मलिपत्रकः।।80।।7

और भी राजनिघण्टु में वर्णित है :–

'सप्तपर्णस्तु तिक्तोष्ण स्रिदोषघ्नश्च दीपनः।

मदगन्धो निरून्धेऽयं व्रणरक्तामयक्रिमीन्।।37।।

छतिवन तिक्तरस वाला उष्णवीर्य है और त्रिदोषनाशक एवं जठराग्नि दीपन है। यह मदसदृश गन्ध वाला, व्रण, रक्तविकार, क्रिमि रोग उत्पन्न नही होने देता।

मुख्य प्रयोगः– औषधीय रूप में इसके प्रयोज्य अङ्य–त्वक्, पुष्प है। इनका मुख्य प्रयोग अग्निमान्द्य, कृमि, विषमज्वर, हृद्रोग में होता है। इसके छाल का लेप कुष्ठ और वृण में हितकर है। **विशिष्ट योग**– सप्तच्छदादि तैल, सप्तपर्णादिक्वाथ।

उत्पत्ति स्थान– यह भारत में प्रायः आर्द्र स्थानों में सर्वत्र पाया जाता है। अधिकांशतः ये सड़कों के किनारे लगे रहते हैं।

14. सर्जः (सर्जक) (VITERIA INDICA LINN.)

कुल– शाल कुल (DIPTEROCARPEAE)

पर्याय/प्रचलित नाम[3]–

हि0– अजकर्ण **ले0**– विटेरिया इण्डिका (VITERIA INDICA LINN.)

''सर्जको बस्तकर्णष्च कषायश्चीरपत्रकः।

सस्यसंवरकः शूरः सर्जोऽन्यः शाल उच्यते।।113।।

---

1. ऋतु0–3/13 2. द्र0गु0वि0अ0–9,पृ0–703 3. ध0नि0–3/80,पृ0–141

शाल वृक्ष के चार भेद होते हैं– अजकर्ण, सर्ज्जक, शाल, मरिचपत्रक।

''सर्ज्जकोऽन्योऽजकर्णः स्याच्छालोमरिच पत्रकः।''

प्रसङ्गोल्लेखः– कवि ने ऋतु संहारं में वर्षा वर्णनं प्रसङ्ग में इस सर्ज वृक्ष का उल्लेख किया है :– ''कदम्ब, सर्ज, अर्जुन और केतकी से भरे हुए जंगल को कँपाता हुआ उन वृक्षों के फूलों की सुगन्ध में बसा हुआ और चन्द्रमा की किरणों तथा बादलों से ठंडा होकर बहने वाला वायु किसे मस्त नहीं कर देता।[1]

फूलों की सुन्दरता भी कदम्ब, कुटज, अर्जुन, सर्ज और अशोक के वृक्षों को छोड़कर छनिवन के पेड़ पर जा बसी है।[2]

गुणधर्म/प्रयोग[3]:– यह चरपरा, कड़वा, कषेला, गरम तथा कफ, पाण्डुरोग, कर्णरोग, प्रमेह, कोढ़, विष, वृण को दूर करता है।

1. ध0नि0–5/113 2,3. ऋतु0–2/17, 3/13 4. शा0नि0,वटादिवर्ग,पृ0–501

अध्याय

६

आलोच्य कवि की कृतियों में प्राप्त मरुस्थलीय वनस्पतियाँ

अध्याय –6

आलोच्य कवि की कृतियों में प्राप्त मरूस्थलीय वनस्पतियाँ

1. अर्कः/मदार (CALOTROPIS SPP.)

1- CALOTROPIS PROCERA (AIT). R.

2- C. GIGANATIA LINN.

कुल– अर्क कुल (एस्क्लिपिएडेसी / CALOTROPIS GIGNANTEA LINN.)

प्रचलित नाम[1]**:–हि0**– सफेद मदार, आक का पौधा,[2] अकवन **म0**– पावड़ी रुई,

ले0– कैलोट्रापिस जाइगैण्टिया (CALOTROPIS GIGANTEA LINN.)

फा0– खारकेखुर्ख, **अ0**– उषरत **बं0**– श्वेत अकन्द

अं0– केलोट्रापिस जाइजंटिया (CALOTOPISGIGANTEA) &

(GIGANTIC SWALOW WORT.)

पर्याय[3]– धन्वन्तरि निघण्टु में अर्क के नौ पर्याय बताए गए हैं–

'अर्कः सूर्याह्वयः पुष्पी विक्षीरोऽथ विकीरणः।

जम्भलः क्षीरपर्णी स्यादास्फोटो भास्करो रविः।।12।।

सूर्याह्वय, पुष्पी, विक्षीर, विकीरण, जम्भल, क्षीरपर्णी, आस्फोट, भास्कर और रवि ये अर्क के पर्याय हैं। राजनिघण्टु मे इसके 20 (बीस) नाम बताए गये हैं।[4] उक्त के अतिरिक्त **क्षीरदलं शुक फलं तूलार्कष्च सदासुमः**, क्षीरदल, शुकफल, तूलफल, अर्क, सदासुम अर्क के पर्याय हैं।

प्रसङ्गोल्लेखः– कवि ने अर्क का अर्थ सूर्य के अर्थ में भी किया है।[5] शेष आक के पौधे रूप में उल्लेख है :– वृन्त से शिथिल होकर आक नामक वृक्ष के ऊपर–गिरी हुई चमेली के पुष्प के समान अप्सरा मेनका से उत्पन्न हुई पहले मेनका अप्सरा द्वारा छोड़ी हुई और पश्चात् ऋषि कण्व के द्वारा प्राप्त मुनि (कण्व) की सन्तान है, ऐसा प्रसिद्ध है।[6]

1,2.रा0नि0पृ0–303, सं0हि0को0–आप्टे,पृ0–93 3. ध0नि0–4 / 12,पृ0–165

4. रा0नि0करवीरादिवर्ग–26–27 5. अभि0शा0–4 / 2 6 अभि0शा0–2 / 8

अर्क का उल्लेख यद्यपि ऋग्वेद में नहीं है तथा अर्थववेद में भी अस्पष्ट सा ही है। किन्तु शतपथ ब्राह्मण में **'शतरूद्रियहोम'** के प्रसंग में इसका स्पष्ट उल्लेख मिलता है।[1] अर्क भगवान शिव को अत्यन्त प्रिय माना जाता है। इसीलिए शिवपूजन मे अर्क पुष्प माला, फल, पत्रादि अर्पित किया जाता है।

कालिदास जी ने अपनी कृतियों में अर्क तथा मदार दोनों का उल्लेख किया है मदार का तो बहुशः वर्णन प्राप्त होता है। महाकवि कालिदास ने मन्दार का उल्लेख निम्न स्थलों पर किया है :–

1. सर्वदा यज्ञ करने से इन्द्र को बार–बार बुलाने वाले इस (मगधनरेश परन्तप) राजा ने इन्द्राणी के (पति विरह) से पाण्डुर कपोलों पर लटकते हुए बालों को मन्दार–पुष्प से रहित कर दिया है।[2]
2. हृदय में विद्यमान इच्छा वाले पास में बैठे हुए (अपने पुत्र) जयन्त को देखकर मुस्कराते हुए इन्द्र ने छूटे हुए वक्ष स्थल के हरिचन्दन का चिन्ह हैं जिसमें ऐसी मन्दार पुष्पों की माला पहना दी।[3]
3. मातलि–राजन! ये हम दोनो अदिति के द्वारा बढ़ाये गये हैं। मन्दार वृक्ष जिसमें ऐसे प्रजापति (मारीच) के आश्रम में प्रविष्ट हो गये हैं।[4]
4. जहाँ अलकापुरी में गंगा के जल से शीतल हवाओं द्वारा सेवित तथा किनारों पर उगे हुए मन्दार वृक्षों की छाया से धूप से रक्षित, देवों से अभिलषित यक्ष कन्यायें स्वर्ण चूर्ण में मुट्ठियों मे रखकर छिपाई गई (अतएव) खोजने योग्य मणियों से खेलती हैं।[5]
5. जहाँ अलकापुरी में अभिसारिकाओं का रात का मार्ग, सूर्य के उदय होने पर गमन के कारण हिलने से, केशों से गिरे हुए मन्दार के पुष्पों से, कानो से गिरने वाले पत्तों के टुकड़ों से, और स्वर्ण कमलों से तथा स्तन प्रदेश पर टूटे हुए धागों वाले मोतियों से एवं पुष्पादि हारों से सूचित होता है।[1]

   वहाँ अलकापुरी में कुबेर के गृह से उत्तर की ओर हमारा गृह इन्दधनुष के समान सुन्दर बाहरी द्वार से दूर से ही दूखने योग्य है अर्थात् देखा जा सकता है, जिसके पास ही मेरी पत्नी के द्वारा पालित पोषित पुत्र रूप से माना हुआ

---

1. बै0इ0–1,पृ0–36,श0ब्रा0–9/1, 1/4 2. रघु0–6/23 3. अभि0शा0–722
4. अभि0शा0–7/11के आगे गद्य भाग 5. उ0मे0–6 6. उ0मे0–11

हांथों से प्राप्त करने योग्य पुष्प गुच्छों द्वारा झुकाया गया मन्दार वृक्ष का पौधा है।[1]

6. जिन्हें आपदरिद्र बताते हैं वे जब अपने बैल पर चढ़कर चलने लगते हैं तब मतवाले ऐरावत पर चढ़ने वाला इन्द्र भी आकर उनके पैरों पर मस्तक नवाया करता है और मन्दार पुष्प (कल्पवृक्ष पुष्प) पराग से उनके पैरों की उंगलियाँ रंगा करता है।[2]
7. राजा– हे भद्रे! तुम्हारी सखी बहुत ही डर गई है, क्योंकि इसके बड़े–बड़े स्तनों के बीच में जो मन्दार की माला पड़ी हुई है उसके बराबर हिलने से ही यह जान पड़ रहा है कि उसका हृदय डर के मारे अभी तक बहुत धड़क रहा है।[3]
8. मन्दार के पुष्पों से सुगन्धित मेरी प्यारी की जिस चोटी में यह बंधनी चाहिए, वही जब नहीं मिल रही है, तब मैं इसे ही लेकर क्यों अपने आँशुओं से मैला करूँ?[4]

इस प्रकार मन्दार का वर्णन महाकवि में शृंङ्गारिक प्रसङ्गों मे अत्यधिक किया है।

गुणधर्मः– प्रखर ग्रीष्म में जब अन्य वनस्पतियाँ शुष्क हो जाती हैं अर्क पल्लवित एवं पुष्पित होता है। इसके विपरीत वर्षा में जब अन्य वनस्पतियां संजीवित एवं हरी–भरी होती हैं अर्क प्रायः निष्पन्न हो जाता है। अर्क की इस विशिष्ट परकता मे अनेक हिन्दी कवियों का ध्यानाकर्षण किया है जिन्होंनें वर्षा के वर्णन प्रसंग में **'अर्क जवास पात बिन भयऊ'** आदि द्वारा तथ्य का उल्लेख किया है।

पुष्प भेद से रक्त पुष्प वाले पौधे को अर्क कहते हैं। श्वेत पुष्प वाले को मन्दार कहते हैं अर्क के गुण निम्नवत् है :–

अर्कस्तु कटुरूष्णश्च वातहृद्दीपनः सरः।

शोफव्रणहरः कण्डूकुष्ठप्लीह कृमीञ्जयेत्।।[5]

अर्क रस में कटु, वीर्य में उष्ण, वातहर, अग्नि को दीप्त करने वाला तथा सारक है। यह शोफ, व्रण, कण्डू, प्लीहा के रोग एवं कृमि का नाश करता है।

---

1. उ०मे०–15
2. कु०सं०–5/80
3. वि०उ०–1/7
4. वि०उ०–4/65
5. ध०नि०/रा०नि०

(i) पुष्प के गुण–इसके पुष्प कृमि दोष, शूल और उदर रोग का नाश करते हैं–

'तत्पुष्पं कृमिदोषघ्नं हनितशूलोदराणिच।।[1]

लाल आक का फूल मधुर, तिक्त, ग्राही तथा कुष्ठ, कृमि, कफ, चूहे का विष, रक्तपित्त, गुल्म और सूजन को दूर करता है :–

(ii) दुग्धगुण– रक्तार्क पुष्पंमधुरं सतिक्तं कुष्ठ क्रिमिघ्नं कफनाशनञ्च।

आक का दूध तिक्त उष्ण, स्निग्ध, लवण रस संयुक्त, हल्का, कोढ़ गुल्म तथा उदर रोग को दूर करता है।[2]

(iii) अर्क जड़ के गुणः– आक के जड़ की छाल पसीने को उत्पन्न कर श्वास को दूर कर उपदेश नाशक है–

'अर्क मूलत्वचा स्वेद करी श्वास निबर्हणी।'

परवर्ती साहित्य, संस्कृत कोश एवं आयुर्वेदीय निघण्टुओं में वनस्पतिवाची मन्दार संज्ञा अनेक वनस्पति–प्रजातियों का वाचक हैं। लोक व्यवहार एवं आयुर्वेदीय साहित्य एवं परम्परा में मन्दार से रोगिस्तानी विषाक्त–स्वभावी प्रसिद्ध अर्क का भी बोध होता है।

औषधीय उपयोग– औषधि रूप में इसके मूल–त्वक् पुष्प पत्र, क्षीर यह शुष्क और ऊसर भूमि में भारतवर्ष में सर्वत्र पाया जाता है। इसका मुख्य प्रयोग मूल त्वक् अग्निमाद्य, ज्वर, यकृद्विकार गुल्म, विसूचिका, कृमि में अर्कक्षार उदर रोग तथा पुष्प कास श्वास वास मे ओर क्षीर वमन विरेचन में उपयोगी है।

विशिष्ट योग– अर्क पुष्पादि वटी, अर्क लवण, अर्क तैल।

विवरण– इसके रक्त और श्वेत भेद से दो भेद माने जाते हैं– 1. अर्क 2. मदार किन्तु राज निघण्टु में इसके चार भेद किये गये हैं।

यथा– **1. अर्क 2. राजार्क 3. शुक्लार्क 4. श्वेत मदार**

मदार के किसी–किसी क्षुप पर एक प्रकार का शर्करावत् निर्यास संचित हो जाता है जिसे अर्क शर्करा कहते हैं।

अब उत्तर भारतीय लोक में मदार से, जो संस्कृत मन्दार से ही उत्पन्न है, (मदार–मन्दार) सामान्यतया आक–अर्क का ही बोध होता है।

---

1. शा0नि0,गुडूच्यादिवर्ग,पृ0–223
2. क्षीर मरकस्यतिक्तोष्णं स्निग्धं सलवणलघु। कुष्ठ गुल्मोदर हरं श्रेष्ठमेतद्विरेचनम्।। शा0नि0पृ0–223

संस्कृत काव्यों में मन्दार विशिष्ट मान्यता प्राप्त शृङ्गारी एवं पूजित वनस्पति है। 'मन्दार की गणना **पञ्चदेव वृक्षों** में की जाती है। इसका अनुमोदन संस्कृत कोशकारों ने भी किया है।[1]

संस्कृत काव्यों में देववृक्ष मन्दार के पुष्पागमकाल, पुष्पों के स्वरूप, स्वभाव शृंगारी धार्मिक एवं अन्य व्यवहारोपयोगी मान्यताओं तथा वृक्ष के परिचयात्मक तथ्यों की भी सूचना मिलती है। जिससे स्पष्टतया यही प्रतीत होता है कि संस्कृंत कवियों का मन्दार वृक्ष 'अर्क' से सर्वथा भिन्न है।

गुणधर्म– **'श्वेतमन्दार कोत्युष्णस्तिक्तोमलविशोधनः।**

मूत्रकृच्छ, व्रणान्हन्ति कृमीन्त्यन्तदारूणान्।।

मदार अत्यन्त उष्ण तिक्त मलशोधक तथ मूत्रकृच्छ्र, व्रण और अत्यन्त दारूण कृमिरोंग को दूर करता है।[2]

भाव मिश्र ने सुश्रुतानुसार ही लाल और सफेद केवल दो प्रकार के ही आक का वर्णन किया है। आक के प्रयोग से प्रायः सब प्रकार की धातु एवं खनिज दृव्यों का भस्मीकरण विशेष प्रभावशाली होने से रसायन शास्त्री या रसायनिकों ने उससे बहुत लाभ उठाया है। और उन्होंने कौतुकवश इसकी वनस्पतीय पारद संज्ञा दे रखी है।[3]

रासायनिक संगठन

आक के संर्वाग में प्रायः एक प्रकार का कड़ुवा और चरपरा पीला राल जैसा पदार्थ पाया जाता है और यह इसका प्रभावशाली अंश है। जड़ की छाल में मडार एल्बन (Madar alban) और मडार फ्लुएविल नामक दो वस्तुएं पायी जाती हैं।

औषधि रूप में प्रयोग

दूध, पत्ररस, पत्रभस्म, पुष्प, पुष्प कील लौंग, मूल तथा मूलछाल का उपयोग होता है। आक के पौधों पर हरे या पीले रंग का कीड़ा या टिड्डा होता है जो सदैव पत्तों पर या कोमल शाखाओं पर चिपका बैठा रहता है। यह भी औषधि रूप के काम आता है। प्रमुख रोगों में वर्णन निम्नलिखित है–

---

1. सं0को0– (i)अमर0को0–1/1/50 (ii)बैज0को0–1/3 दृष्टव्य
2. शा0नि0,गुडूच्यादिवर्ग, पृ0–224.
3. शिलागन्धार्क दुग्धाक्ताः स्वर्णाद्याः सर्वधातवः। भ्रियंते द्वदशपुटैः सत्यंगुरूयथा। शाङ्0सं0

1. सुजाक– शुष्क फूल आधी से 1 रत्ती तक शक्कर के साथ कुष्ठ उपदेश और पूयमेह सुजाक मे देते हैं। दूध 2 रत्ती तक देवें।

2. ज्वर रोकने हेतु– ताजे पत्तों का रस 1 से 5 बूँद देते हैं।

3. विष निवारण– आक का सेवन अत्याधिक मात्रा में करने से वमन हुल्लास बेचैनी आदि जो विष लक्षण होते हैं। उनके निवारणार्थ दूध और घृत मिलाकर बार–बार अधिक मात्रा में पिलावें। अथवा ढाक (पलास) की छाल का क्वांथ बना बार–बार पिलावें। तथा हल्दी और तिल पीस बकरी के दूध में मिला पेट पर लेप करें।

सिद्ध–साधक प्रयोग[1]

अर्क लवण, अर्कादि चूर्ण, अर्कादि गुटिका, अर्कघृत, अर्क तेल, अर्कासव, आक शर्वत, अर्कक्वाथ और फांट, अर्क क्षार, भस्म, अचार।

रोग के अनुसार मुख्य प्रयोग[2]

1. **कास श्वास पर–** एक पान पर चूना कत्था आदि सभी मसाला लगाकर उसमे आक की कोंपल या फुनगी एक नग लपेट कर खायें। अर्क मूल छाल का महीन चूर्ण 2 रत्ती में समभाग सोंठ चूर्ण मिला शहद 3 माशे के साथ सेवन करें। अधिक कफ वाली खाँसी और श्वांस मे उपयोगी है।
2. **धूमपान–** आकमूल को आक दुग्ध में भिगो और सुखाकर चूर्ण करें इसे चिलम मे रख या बीड़ी बनाकर पीने से कफ झड़कर पुरातन श्वास रोग में भी लाभ होता है।
3. **गुल्म शूलयुक्त प्लीहा पर–** आक के फूल 1 सेर लेकर 2 सेर जल में औटायें। 1पाव जल रहने पर उतार कर पत्थर के खरल में डालकर उसमें पीपर, पीपरामूल, अकरकरा और लौंग 2–2 तोला मिला खूब खरल लेवें। फिर बेर की तरह गोलियाँ बना रखें। 1–1 गोली दिन में 3 बार गरम जल से सेवन करावें।
4. **यकृत शोथ पर–** आक के पीले पत्र और हल्दी समभाग खूब महीन पीस 1–1 रत्ती की गोलियाँ बनावें।
5. **उदर शूल पर–** आक की जड़ की छाल को छाया शुष्क कर उसमें समभाग

---
1. वनौ0विशे0,पृ0–246–250
2. भैषजय रत्नावली एवं वनौ0विशे0 भाग–1,पृ0–250–266तक दृष्टव्य

सौंफ मिला महीन चूर्ण कर लें। मात्रा 1 माशा दिन में 2–3 बार जल के साथ देवें। पेट में जहाँ तीव्र वेदना होती हो उस स्थान पर आक के पत्र पर पुराना घी चुपड़ और गर्म कर रखें तथा ऊपर से गर्म किये जुए फलालैन अथवा कपास की रूई की पोटली द्वारा पत्र का ऊपरी भाग कसकर दबाकर कुछ काल तक सेंकने से शीघ्र लाभ होता है।

6. **जलोदर पर–** आक के पत्रों का रस 1 सेर में हल्दी चूर्ण 2 तोले मिला मन्दी आँच पर पकावें कुलछी से चलाते रहें। गोली बनाने लायक हो जाने पर नीचे उतार कर चने जैसी गोलियाँ बना रखें। 2–2 गोली दोनो समय सौंफ, कासनी आदि अर्क के साथ दें।
7. **वात व्याधियों पर–** आक जड़ को अच्छी तरह साफकर दुगुना जल मिला काढ़ा तैयार करें आधा जल शेष रहने पर छानकर उस पानी में (जल के सम प्रमाण में) गेहूँ को धूप मे शुष्क कर आटा पिसवा लें। इसमें से नित्य 1 पाव या कम ज्यादा लेकर वाटी बना भली–भाँति कण्डों की आँच पर सेंक घृत और गुड़ मिला खायें। जीर्ण से जीर्ण बातरोग, गठिया आदि रोगों में आशातीत लाभ होकर शरीर हष्ट–पुष्ट होता है।
8. **वात–पीड़ा–** आक की जड़ की छाल 1 भाग काली मिर्च और काला नमक चौथाई–चौथाई भाग सबको मिला जल के साथ महीन पीस चने जैसी गालियाँ बनालें किसी अंग में वात जन्य पीड़ा हो तो प्रातः सायं 1–1 गोली 6 माशे घृत के साथ सेवन करे। आक की जड़ 1 सेर जौकुट कर 8 सेर पानी में पकावें। दो सेर शेष रहने पर उसमें 1 सेर रेण्डी का तेल मिलाकर पकावें। तेल मात्र शेष रहने पर छानकर शीशी में भर रखें। इसकी मालिश से भी शीघ्र लाभ होता है।

हैजा कुष्ठ, कण्डु आदि चर्म रोगों पर श्वेत कुष्ठ में, दाह और चर्मदल कुष्ठ पर, खाज पामा, छाजन आदि पर, नपुंसकता और ध्वज भंग पर, उपदेश पर, धूमपान, शीत–ज्वर, ज्वर को उतारने के लिए, प्लीहा युक्त ज्वर पर पैरों के फोड़ों पर, कच्चे वृणों पर भगन्दर, अग्निदग्ध व्रण पर लाभकारी है।

विशिष्ट योग– इसके द्वारा ताम्रभस्म, सीसा, अभ्रक, गोदन्ती, हिंगुल, शंख, शृंग भस्म बनाये जाते हैं।

2. उदुम्बर (FICUS GLOMIRATA)

कुल–वट कुल (MARACEAE)

गण–मूत्रसंग्रहणीय, कषाय स्कन्ध (च0)

पर्याय[1]:– उदुम्बर, क्षीरवृक्ष, हेम दुग्ध सदाफल, यज्ञाङ्कः, शीतवल्कल, ब्रह्मवृक्ष, पुष्पहीन, कृमिकण्टक इत्यादि हैं। यथा–

उदुम्बरः क्षीर वृक्षो हेमदुग्धः सदाफलः।

अपुष्प फल सम्बंधोयज्ञाङ्गः शीतवल्कलः।।

प्रचलित नाम[2]:– **हिं0**– गूलर **बु0**–उमरी **म0**–उम्बर

गु0– उंबरो **क0**– अत्ति **बं0**–यज्ञडुमुर **फा0**–अंजीरेआदम

अ0–जमीझ **तै0**–वाडुचेट्टु **अं0**– केजट्री (Keg tree)

ले0– फाइकस ग्लोमिरेटा (**FICUS GLOMIRATA**)

प्रसङ्गोल्लेखः–महाकवि की रचनाओं में उदुम्बर का उल्लेख स्वतंत्र अर्थ में है–

वहां से चलकर जब तुम देवगिरि पहाड़ की ओर बढ़ोगे, तब वहां धीरे–धीरे बहता हुआ वह शीतल पवन भी तुम्हारी सेव करेगा। जिसमें तुम्हारे बरसाये हुए जल से आनन्द की सांस लेती हुई धरती की गंध भरी होगी। जिसे चिग्घाड़ते हुए हांथी अपनी सूड़ों से पी रहे होंगे और जिसके चलने से वन के गूलर (उदुम्बर) भी पकने लगेंगे।[3]

गुणधर्म[4]:– यह शीतल, गर्भसंधानकारक व्रण को भरने वाला, रूखा, मधुर, कषेला, भारी, अस्थिसंधानकारक, वर्ण को उज्ज्वल करने वाला तथा कफ, पित्त, अतिसार और योनि रोग का नाशक है। इसकी छाल अत्यंत शीतल, दुग्धवर्धक, कषेली, गर्भ हेतु

1,2. शा0नि0वटादिवर्ग,पृ0–494–495 3. पू0मे0–46,शीतोवायुःपरिणमयिता काननोदुम्बराणाम्।।

4. नि0र0उद्धृत शा0नि0पृ0–495–96, उदुम्बरःशीतलःस्याद गर्भसन्धानकारकः

हितकारी और व्रण विनाशक है। इसके कोमल पत्ते स्तम्भक, तृषा, पित्त, कफ और रूधिर विकार नाशक होते हैं। इसके पके फल कषेले, मधुर, कृमिकारक, रूचिकारक, अत्यन्त शीतल, पित्त, दाह, क्षुधा, तृषा, श्रम, प्रमेह, शोष, मूर्च्छा को हरने वाले हैं।

औषधीय प्रयोग[1]

दोष प्रयोगः– कफ, पित्तज विकारों में प्रयुक्त होता है।

संस्थानिक प्रयोगः– शोथ, वेदना, व्रण पर दुग्ध लगाते हैं। वर्णविकारों में उदुम्बर के शुङ्ग का लेप करते हैं।

आभ्यांतर पाचन संस्थानः– रक्तातिसार, प्रवाहिका और ग्रहणी में छाल का क्वांथ व कच्चे फलों का शाक खिलाते हैं। बच्चों के अतिसार व दन्तोद्भव में दूध देते हैं।

रक्तवह संस्थानः– रक्त पित्त में छाल और फल का प्रयोग होता है।

प्रजनन संस्थानः– रक्त प्रदर, श्वेत प्रदर में छाल का क्वांथ देते हैं।

मूत्रवह संस्थानः– प्रमेह में छाल का क्वांथ देते हैं और पका फल खिलाते हैं।

तापक्रमः– दाह रोग में पका फल देते हैं।

प्रयोज्य अङ्गः– त्वक, फल, क्षीर,

मात्रा–चूर्ण 3–6ग्राम, क्वाथ 50–100मिली0, क्षीर 5–10बूंद

विशिष्ट योगः– उदुम्बरसार

3. करंजकः (CARISSA CAARANDUS)

कुल–कुटज कुल (APOCYNACEAE)

कवि कुलगुरु ने इसका उल्लेख नक्तमाला नाम से किया है। कालिदास ग्रन्थावली एवं विभिन्न विद्वानों के द्वारा अनूदित रघुवंशम् के अर्थों के अनुशीलन में, इसके अर्थों में भिन्नता मिलती है। इसका विल्ब तथा करंजक (करौंदा) दोनों[2] अर्थ प्राप्त होते हैं।

---

1. द्र0गु0वि0आ0–7,पृ0 666–67

2. नक्तमालाश्चिर बिल्वाख्य वृक्षभेदाः। अभि0को0कालि0ग्रं0 दृष्टव्य

पर्याय[1]– करमर्द, करंजकः, कृष्णपाकफलः, क्षीर फेना, सुषेण, नक्तमाला[2]

प्रचलिताभिधान[3]– **हि0**–करौंदा, **बं0**–करमचा, करेजा, **गु0**–करमदां,

म0–करवंद, हरदुन्डी **अं0**–बेगाल करेंट्स Bengal currants

ले0– जसमाइन करंडस केपरिस कोरंडस (Capparis Corundas)

प्रसङ्गोल्लेख– इन्दुमती स्वयंबर में उपस्थिति अज वर्णन प्रसङ्ग में इस वनस्पति का नाम आया है–

"स नर्मदा रोधसि सीकरार्द्रैर्मरुद्भिरानर्तितनक्तमाले।

निवेशयामास विलङ्घिताध्वा, क्लान्तं रजो धूसर केतु सैन्यम्।।

"मार्ग मंजिल को चल करके पूरा किए हुए उन युवराज अज ने जल के कणों से आर्द्र अर्थात् शीतल वायु से जहां पर चिरबिल्ब (करंजक) वृक्ष हिल रहे हैं ऐसे नर्मदा नदी के किनारे पर थकी हुई, धूलि से धूसरित जिनकी पताकाएं हो रही हैं ऐसी अपनी सेना को ठहराया।[4]

गुण[5]– इसका कच्चा फल रस, विपाक में अम्ल तथा वीर्य में उष्ण, वातशामक फल पित्त वर्धक दीपक मलशोधक होते हैं। इसकी जड़ ज्वरघ्न, कृमिनाशक कफ वात शामक है।

औषधीय प्रयोग[6]– रक्त प्रदर में 6 मासे से 1 तोला तक जड़ को घिस कर दूध के साथ पिलाने से भयंकर रक्तप्रदर तथा मासिक धर्म में अतिरिक्त स्राव होना दूर होते हैं। तीन दिन मे ही लाभ हो जाता है।

सर्पविष पर जंगली करौंदे की जड़ को पानी में पीस छान कर पिलाते हैं। यदि वमन न हो तो समझा जाता है कि विष चढ़ गया । फिर इसी के क्वाथ को पिलाते रहते हैं। इसे पानी से पीस कर हृदय के नीचे के भागों में कमर तक चारों ओर मालिश करते है।

जड़ को पीसकर पानी मे मिला सर्प के विल मे डालने से सर्प भाग जाते हैं। जहां जंगली करौंदे की बाड़ लगाई जाती है वहां सर्प नहीं आने पाते हैं।

1,2..वनौ0विशे0–2,पृ0–137 3. चिरविल्वोनक्तमालः करञ्जकश्च करञ्जके 'इत्यमरः। मल्लिनाथ टीका मणिप्रभा करंचकः=करौंदा, अ0को0 (कालि0ग्रं0) 4. रघु0–5/42 5,6. वनौ0विशे0–2,पृ0–138

इसके अलावा शुष्क कास, अपस्मार, जलोदर, जानवरों के कृमि युक्त व्रणों पर इसका प्रयोग होता है।

4. विल्व (AEGLE MARMELOS CORR)

कुल– जम्बीरकुल (रूटेसी–RUTACEAE)

गण– **शोथ हर, अर्शोघ्न, आस्थापनोपग, अनुवासनोपग (च0)**

वृहत् पंचमूल वरुणादि, अम्बष्ठादि (सु0)।

पर्याय[1]**–** सं0–बिल्ब (रोगान् विलति भिनत्ति–जो रोगों को नष्ट करें) शाण्डिल्य (पीड़ा को दूर करने वाला), शैलूष (सुन्दर फल या पहाड़ों पर होने वाला) श्री फल (सुन्दर फल) मालूर (शरीर की शोभा बढ़ाने वाला) गन्धगर्भ (गन्धयुक्त) कण्टकी (कंटकयुक्त) सदाफल (सदाफल लगे होने के कारण) महाकपित्थ, ग्रन्थिल।

प्रचलितनाम[2]**–** **हिं0**–बेल, **म0**–बेल **गु0**–बीली, **पं0**–बिल, **मल0**–बिल्वम्, **क0**–बिलपत्रे, **ते0**–मोरेडु, **अ0**–सुरजले, **सि0**–कठोरी **फा0**–बेहहिंन्दीशुल्ल, **ले0**–ईग्ल मार्मेलस (Aegle marmeles corr.) अं0–बेल(Bael)

उत्पत्ति स्थान– समस्त भारत में विशेषतः सूखे पहाड़ी क्षेत्रों मे तथा हिमालय में 4 हजार फीट की ऊँचाई तक पाया जाता है।

जाति– यह वन्य और ग्राम्य दो प्रकार का होता है। जंगली बेल में फल छोटा और कांटे अधिक तथा ग्राम्य में फल बड़ा और काँटे कम होते हैं। इसको इसका कहीं–कहीं 'बेल' अर्थ भी मिलता है। अतः इस पर और शोध अपेक्षित है।

रासायनिक संगठन– फलमज्जा में म्युसिलेज, पेक्टिन, शर्करा (46%), टैनिन (9%), उड़नशील तैल, तिक्त सत्त्व, निर्यास तथा भस्म 2 प्रतिशत होते हैं। इसमें 'मार्मेलोसिन (MARMELOSIN) नामक एक कार्यकारी द्रव्य होता है। ताजे पत्र से एक विशिष्ट गन्धयुक्त हरी–पीला तैल (0.6%) प्राप्त होता है। पत्र मे ईगेलिन (Aegelin) आदि

1,2. द्र0गु0वि0अ0–5,पृ0–455

अनेक क्षाराभ और कुमारिन पाये गये हैं। बीजों से भी एक हल्के पीले रंग का तिक्त तैल (11.9%) निकलता है।

गुण[1]

गुण— लघु, रुक्ष　　रस—कसाय　　विपाक—कटु　　वीर्य—उष्ण

औषधीय प्रयोग

बिल्ब कफ वात शामक, शोथहर एवं वेदनास्थापन है। यह हृद्य और रक्त स्तम्भन है। इसका मूल एवं पत्र ज्वरहन है। इन्हीं कर्मों हेतु इसका औषधीय उपयोग होता है। यथा महर्षि चरक ने कहा है:—

'बिल्वं साङ्ग्राहिकदीपनीय वातकफप्रशमनानाम्।[2]

वल वृद्धि के लिए पके फल का प्रयोग करते हैं। ताजे फल का गूदा कवाबचीनी का चूर्ण मिलाकर दूध के साथ पूयमेह में देते हैं। इससे शोथ और वेदना कम होती है। छाल का स्वरस जीरा का चूर्ण और दूध के साथ शुक्र मेह में देते हैं।

सुश्रुत के अनुसार— 'कफनिलहरं तीक्ष्णं स्निग्धं संग्राहि दीपनम्।

कटु तिक्त कषायोष्णं बालं बिल्वमुदाहृतमं।।[3]

औषधि प्रयोज्य अंग— मूल, त्वक्, पत्र, फल। चूर्ण आदि के लिए कच्चा फल, मुरब्बे के लिए अधपका फल और पानक (शर्वत) के लिए पका फल लेना चाहिए। दशमूल आदि क्वाथों में मूल की त्वचा ली जाती है।

मात्रा— चूर्ण 3—6ग्रा0, स्वरस 10—20मिली0, पानक 20—40मिली0

विशिष्ट योग— बिल्ब पंचक क्वाथ, बिल्वादि चूर्ण, विल्वादि घृत, विल्व तैल।[4]

5. किंशुक: BUTEA FRONDOSA KOEN EX ROXB

FAMILY (कुल) शिम्बीकुल, (लेग्युमिनोसी/ LEGUMINOSAE)

प्रचलितनाम[5]**— हि0**—ढाक, पलाश (बुन्देलखण्ड क्षेत्र) छूल, टेंसू,

बं0— पलाश गांछ,, **म0**—पलस　　**गु0**—खासटी　　**क0**—मुत्तलु

---

1. श्रीफलस्तु वरस्तिक्तो ग्राहीरूक्षोऽग्निपित्तकृत वातश्लेष्महरो बल्यो लघु रूष्णंश्च पाचनः। भा0प्र0　　2. च0सू0—25

3. सु0सू0—46　　4. दृ0गु0वि0अ0—5 पृष्ठ—456　　5. रा0नि0करवीरादिवर्ग,पृ0—304

तै0–मीदुग चेट्टु ता0–पटसन उत्– पराशु, व0–खाकडी

अं0 डाउनीब्राअच व्युटिया (DOWNY BRANCHBUTEN) गौ0 पलास फुल

ले0– व्युटिया पार्विफ्लोरा (BUTEA PARIAA FLORA)

पर्याय[1]– धन्वन्तरि निघण्टु में इसके।। (ग्यारह) नाम मिलते हैं यथा

किंशुको वातपोथश्च रक्तपुष्पोऽथ याज्ञिकः।

त्रिपर्णो रक्तपुष्पश्च पूतद्रुर्बह्मवृक्षकः।।48।।

क्षार श्रेष्ठः पलाशश्च बीजस्नेहः समीद्वरः।

वात पोथ, रक्त पुष्प, याज्ञिक, त्रिपर्ण, पूतद्रु ब्रहनवृक्षक, क्षारश्रेष्ठः, पलाश, बीज स्नेह और समीद्वार ये किंशुक के पर्याय है।

यह भारत में सर्वत्र उत्पन्न होता हे। निघण्टुओं में इसे आम्रादि वर्ग में रखा गया है इस वर्ग में प्रसन्नता और सुगन्ध देने वाले फल, त्वक, पुष्प, का वर्णन है।

महाकवि कालिदास जी ने किसुंक पलाश तथा पलाशदण्ड (आषाढ़)[2] शब्दों का उल्लेख किया है। जो इस प्रकार हैः–

1. (नायिका रूप) बसन्त श्री के द्वारा (नायक रूप) पलाश वृक्ष में उत्पन्न किया गया कलिका समूह मद से लज्जाहीन प्रमदा के द्वारा प्रियतम के अंगों पर किये गये नखक्षत रूप भूषण के समान शुशोभित होता था।[3]
2. बसन्त के आते ही दूज के चन्द्रमा के समान टेढ़े अत्यन्त लाल लाल अधखिले टेसू के फूल (पलाश पुष्प) वनभूमि में फैले हुए ऐसे लग रहे थे मानों बसन्त में वनस्थलियों के साथ विहार करके उन पर अपने नखों के चिन्ह बना दिए हों।[4]
3. इसी बीच एक दिन ब्रह्मचर्य के तेज से चमकता हुआ सा हिरन की छाल ओढ़े और पलाश का दंड हांथ में लिये गठीले शरीर वाला और चतुराई के साथ बोलने वाला एक जटाधारी ब्रह्मचारी उस तपोवन में आ पहुंचा जो ऐसा जान पड़ता था मानो साक्षात ब्रह्मचर्याश्रम से ही चला आया हो।[5]

ऋतुसंहारम् के बसन्त वर्णनम् में कवि ने किंशुक (पलाश) का उल्लेख बसन्त श्री रूप में किया हैः–

---

1. ध0नि075/148–49, पृ0–242
2. सं0हि0को0,पृ0–166
3. रघु0–9/31
4. कु0सं0–3/29
5. कु0सं0–5/30

1. बसन्त के दिनों में पवन के झोंके से हिलती हुई जिन पलास के वृक्षों की फली हुई शाखाएँ जलती हुई आग की लपटों के समान दिखाई देती है। उन पलास के जंगलों से ढकी हुई पृथ्वी ऐसी लग रही है मानों लाल साडी पहने हुए कोई दुलहन आई बैठी हो।[1]
2. अपनी प्यारियों के मुखड़ों पर रीझे हुये प्रेमियों के हृदय को सुग्गे के मुख के समान लाल टेसू के फूलों ने ही क्या कुछ कम टूक–टूक कर रखा था या कनैर के पुष्पों ने ही क्या कुछ कम जला रखा था कि यह नर कोयल भी अपनी मीठी कूक सुना–सुनाकर उन्हें और मार डालने को उतारू हो बैठा है।[2]
3. आम के बौर ही जिनके बाण है टेसू के पुष्प ही धनुष है। भौरों की पांत ही डोरी है मलयाचल से आया हुआ पवन ही मतवाला हांथी है कोयल ही गायक है और शरीर न रहते हुए भी जो सारे संसार को जीते बैठा है, वह कामदेव अपने साथी बसन्त के साथ आपका कल्याण करें।[3]

गुण

पलाश कषाय रस युक्त, उष्ण वीर्य तथा क्रिमिरोग नाशक है। इसका बीज पाम खुजली, दाद तथा चर्मगत विकार को नाश करता है। पलाश पुष्प, उष्णवीर्य और कपडू तथा कुष्ठरोग को नाश करने वाला है। यह रक्त पुष्प पीतपुष्प सित पुष्प तथा नील पुष्प के भेद से चार प्रकार का होता है। सभी का गुण समान होने पर भी सफेद पुष्प वाला पलाश विज्ञान प्रद है[4]–

रक्त पीतः सितो नीलः कुसुमैस्तु विभज्यते।

किंशुके गुण साम्येऽपि सितो विज्ञानदः स्मृतः।।

किंशुक कृमिनाशक, संग्राही, अग्नि दीपक होता है। यह प्लीहा, गुल्म, ग्रहणी, अर्श तथा वात कफशामक होता है। इसका पुष्प सुगन्धित तथा रस में मधुर होता है। इसका बीज रस में कटु, गुण में स्निग्ध, वीर्य मे उष्ण, कृमि और कफ को जीतने वाला होता है।[5]

ढाक कषेला, गरम, वीर्यवर्द्धक, अग्निप्रदीपक, सारक, कड़वा, स्निग्ध, मलरोधक भग्नसन्धानकारक तथा व्रण गुल्म, कृमि, प्लीहा, संग्रहणी, बबासीर, वात कफ, योनिरोग

1. ऋतु0–6/21 2. ऋतु0–6/22 3. ऋतु0–6/38
4. रा0नि0करवीरादिव–37, 38,39पृ0 304 5. ध0नि0–5/149–50

और पित्त को दूर करता है। यह लाल, पीला, श्वेत और नील इन फूलों के भेद से चार प्रकार का है।[1] इसके फूल स्वादिष्ट, कड़वे, गरम, कषैले, वातवर्द्धक, मलरोधक, शीतल चरपरे तथा तृषा, दाह पित्त कफ, रुधिर विकार कुष्ठ और मूत्रकृच्छ्र को दूर करता है। इसके फल रूखे हल्के, गरम, पचने मे चरपरे तथा कफ, वात, उदर रोग, कृमि, कुष्ठ, गुल्म, प्रमेह ववासीर और शूल को निर्मूल करता है। इसके फल के बीज–स्निग्ध गरम, चरपरे तथा कफ और कृमि का नाश करते हैं। इसके कोमल पत्ते–कृमि और वात नाशक है।

इसके बीज पामा कण्डू, दाद ओर त्वचा के दोषों को दूर करते हैं। इसके पुष्प गरम तथा कण्डू और कुष्ठ को नष्ट करते हैं। इसका गोंद मलरोधक तथा संग्रहणी मुखरोग, खानी और पसीने को दूर करता है–

'' पलाशभवनिर्य्यासोना हीं चक्षपयेध्द्रुवम्।

ग्रहणींमुख्व जान्कासाञ्जयत्स्नहाति निर्गमम्।।''[2]

इसका मुख्य आमयिक प्रयोग– अग्निमान्द्य, अर्श, ग्रहणी, गुल्म, रक्तपित्त, मूत्रकृच्छ्र प्रमेह, शोथ, व्रण, योनिस्राव, ध्वजभङग विष और रसायन कर्म में इसका प्रयोग हितकर है।

विशिष्ट योग–पलाश बीजादि चूर्ण पलाशक्षीरघृत। कृमि (ROUND WORM) की चिकित्सा में इसके बीज का चूर्ण विशेष प्रभावकारी होता है। पलाशपुष्प को गरम कर बस्ति प्रदेश पर बांधने से पूत्रावरोध मे, हवकग्रहणी, गर्श, अग्निमान्द्य मे क्वाथ परिषेक, योनि स्राव और अर्श में, निर्यास एवं पुष्प रक्त पित्त ओर दौर्बल्य में क्षार गुल्म में तथा तैल ध्वजभङग में हित कर होता है।

6. कीचक (ARUNDINARIA-FAICATER)

पर्याय/नाम[3]:– **हि0**–खोखला बांस **अं0**–(HILLVAMVOO)

ग0–देवरिंगल

1. शा0नि0ुलवग/,पृ0–516–17　　2. शा0नि0पृ0–517

3. सं0हि0को0पृ0–278, GLOSSARY OF VEGETABLE DRUGSI IN THE AYURVEDIC RASA-TEXTS –प्रो0 आर0एस0सिह

रघुवंशम् में कवि ने वायु से पूरित कीचक वृक्षों की ध्वनि की उपमा बाँसुरी के स्वरों से दी है[1] एवं कुमारसम्भवं में इनकी तुलना ऊँचे स्वर से गाने वाले किन्नरों के गीतों से की है।[2]

गुण/प्रयोगः– आयुर्वेद में कीचक व ठोस बाँस दोनों प्रकार को अम्ल, कषाय, तिक्त, शीतल कहा गया है। मूत्रकच्छ, प्रमेह अर्शरोग, पित्त विकार, दाह रक्त विकार को नष्ट करता है।[3]

7. कुटजः

(HOLARRHENA ANTIDYSENTE RICA, LINN/WALL)

कुल–कुटज कुल (एपोसाइनेसी **/APOCYNACEAE)**

नाम[4]– हिं0–कुड़ा, कौरैया, कुडैया **बं0–** कुडची, कुरची, **मं0–** कुडा,

गु0–कड़ो, **अ0**–ओवल लीवडरोजनी (OVALLEAVED ROSEBAY)

उत्–कुड़िया **अ0–** तिवाज **ब0–** कुडचि,गु0 कड़ो।

ले0– होलेरीना एण्टीडिसेण्टेरिका (HOLARRHENA ANTIDYSENTE RICA, LINN/WALL)

पर्याय[5]– कुटजः कौटजः कौटो वत्सको गिरिमल्लिका।

कलिङ्गो मल्लिका पुष्प इन्द्रवृक्षोऽथ वक्षकः।। 13।।

कौटज, कौट, कौत्सक, गिरिमल्लिका, कलिङ्ग, मल्लिका पुष्प, इन्द्रवृक्ष और वृक्षक ये कुटज के पर्याय है। कुछ अन्य पर्याय भी हैं[6]:–

वरतिक्तो यव फलः यंग्राही पाण्डुरद्रुमः।

प्रावृषेण्यो महागन्धः स्यात् पञ्चदशधाभिधः।।

वरतिक्त यव फल संग्राही पाण्डुरद्रम प्रावृषेण्य तथा महागन्ध ये सव कुटज के 15 नाम हैं।

---

1. रघु0–2/12, 4/73 2. कु0सं0–1/8 3. रा0नि0,पृ0–195 4. रा0नि0,पृ0–274
5. ध0नि0–2/13 6. ध0नि0,शाल्मलीवर्ग–2, रा0नि0पभद्रादिवर्ग753

प्रसङ्गोल्लेख

कुटज का नामोल्लेख कवि ने निम्नवत् सन्द्रर्भों में किया है:-

1. (वर्षा काल में) कन्धे से लटकती हुई कौरैया तथा अर्जुन पुष्पों की माला वाले तथा कदम्ब के पराग का अंगराग लगाये हुए उस अग्निवर्ण ने मतवाले मयूरों वाले कृत्रिम (बनावटी) पर्वतों में विहार रूप विलास किया।[1]
2. बादल को देखते ही उसे ध्यान आया कि अषाढ बीतते ही जब सावन आ जायेगा तब तो मेरी कोमल प्रिया अपने को ने संभाल पायेगी। इसलिये उसने सोंचा कि अपनी प्यारी को ढांढस बँधाने के लिए और उसके प्राण बचाने के लिये क्यों न इन बादलों के हाँथ ही अपना कुशल समाचार भेज दूँ। यह ध्यान आते ही वह आनन्द से मग्न हो उठा उसने झट वहाँ खिले हुए कुटज (इन्द्रजन) के पुष्प उतार कर पहले तो मेघ की पूजा की और फिर कुशल मंगल पूँछकर उसका स्वागत करने लगा।[2]
3. शरद ऋतु में फूलों की सुन्दरता भी कदम्ब, कुटज, अर्जुन, सर्ज और अशोक के वृक्षों को छोंडकर छतिवन के पेड़ पर जा बसी है।[3]

गुणधर्मः

कुटजः कटुकस्तिक्तः कषायो रूक्षशीतलः।
कुष्ठातीसार पित्तास्त्रगुदजानि विनाशयेत्।।[4]

कुटज रस में कटु-तिक्त-कषाय, गुण में रूक्ष तथा वीर्य में शीत है। यह कुष्ठ, अतिसार, पित्त और रक्तार्श को दूर करता है।

मुख्य आमयिक प्रयोगः-अतिसार, प्रवाहिका, अर्श, रक्तपित्त में विशेष उपयोगी है।

औषधीय अंग-त्वक, बीज।

विशिष्ठ योग- कुटजादि विशेष योग, कुटजारिष्ठ, कुटजावलेह।

कुटज चरपरा रूखा, दीपन, कषेले, हलके, दीपन, वातकारक तथा कफ रक्त पित्त कुष्ठ अतिसार और कृमि को दूर करते हैं। इसकी कलियों का शाक व्यञ्जम्

---

1. रघु0719/37 2. पू0मे0-4- स प्रत्यग्रैः कुटजकुसमैः कल्पितार्घाय तस्मै, प्रीतः प्रीति प्रमुख वचनं स्वागतं ब्याजहार।।
3. ऋतु0-3/13 4. ध0नि0-2/14,पृ0-97

आमवातनाशक रूचि कारक कफनाशक रक्तातिसार कृमिनाशक है।[1]

हिमालय प्रदेश, बंगाल, आसाम तथा उडीसा आदि स्थानों में श्वेत कुटज, दक्षिण भारत और महाराष्ट्र में कृष्ण कुटज पाया जाता है।

८. खर्जूरी (PHONIX SYLVESTRIS ROXB)

कुल– नारिकेल (**Palmae**)

गण– श्रमहर, विरेचनोपग, मधुरस्कध, कषाय स्कन्ध, फलासव (च0)

जाति– यह दो प्रकार का होता है,1– खजूर 2. पिण्ड खजूर

कवि ने दोनों का उल्लेख किया है।

प्रचलित नाम/पर्याय[2]:– हिं0– खजूर देशी, सालमा, जंगली खजूर

गु0–खजूर **अं0–** Wild Date tree Indian wine palm.

फा0–खुर्मा **अ0**–रूतब **ले0–** फोनिक्स सेल्वेस्ट्रिस।

प्रसङ्गोल्लेख:– रघवंशम् में कवि ने लिखा है– नागकेशर के पुष्पों पर बैठे भौरों को जैसे ही खजूर में बंधे हुए मस्त हाँथियों के कपोलों से टपकते मद की गन्ध मिली तो वे उन्हें छोड़कर हाथियों पर आ गये।[3]

गुणधर्म/प्रयोग[4]:– यह मधुर पौष्टिक, उत्तेजक उदर–विकार, ज्वर वमन, मूर्च्छा आदि में लाभकर है। **दोष प्रयोग:–** वात्, पैत्तिक विकारों में,

सस्थानिक प्रयोग:– दन्तशूल में, क्वाथ से कुल्ला करते हैं।

नाड़ी संस्थान:– कटिशूल, मूर्च्छा, भ्रम, मस्तिष्क दौबर्ल्य।

पाचन संस्थान:– तृष्णा, छर्दि, कोष्ठगत वात्, अतिसार में देते हैं।

श्वसन संस्थान:– कास, श्वांस, हिक्का, उरःक्षत, ज्वरदाह मे खजूर की गुठली देते हैं। **प्रयोज्य अंग–** फल, रस

---

1. शा0नि0गुडूच्यादिवर्ग, पृ0–253 2. वनौ0विशे0–2,पृ0–285 3.रघु0–4/57

4. वनौ0विशे0–2,पृ0–285–87,च0सं0सू0अ0–27, सु0सं0सू0 अ0–46, सु0उ0–50, च0चि0अ0–8 द्र0गु0वि0अ0–9, पृ0–812–13, दृष्टव्य

पिण्ड खजूरः— (PHONIX DACTYLIFERA)— कवि ने इसका प्रयोग विदूषक के द्वारा हास्य पर किया है।[1] इसके गुणधर्म भी खजूर के समान ही हैं।[2] इसका फल सूखने पर छुहारा कहलाता है। रा0नि0 में इसके चार भेद बताये गये हैं।

9. तिन्तिड़ी (Temrindus Indica)

पर्याय/नाम[3]:— सं0— अम्लिका, तिन्तड़िका अत्यम्ला भुत्ता, दंतशठा।

हिं0— इमली, अमली, कटोर, **म0**— चिच चिचोक, **गु0**—आम्बली, चिचोरा

बं0— तंतुल, तितूरी आम्ली **ते0**— चितापंडु

अं0—टेमरिड (TAMARIND) **ले0**— टेमरिण्डस इंडिका (Temrindus Indica)

प्रसंगोल्लेख— विदूषक हंसी करते हुए राजा दुष्यन्त से कहता है जैसे कोई मीठा छोहारा खाते—खाते ऊबकर इमली पर जा टूटे वैसे ही आप भी रनिवास को छोंड़कर इस शकुन्तला की इच्छा कर रहे हैं।[4]

गुणधर्म/प्रयोग[5]— आयुर्वेद के अनुसार यह अति खट्टी, भारी, गरम, रूचिकारक, मलरोधक, वातनाशक होती है। यह जितनी ही पुरानी हो उतनी ही गुणकारी होती है। इसके पत्र रस को तिल के तेल में पकाकर कान में डालने से कर्णशूल और पत्र रस को लगाने से दाद की विशेष खुजली में लाभ होता है। आमातिसार, हैजा, लू, चोंट, नेत्ररोग, खांसी, अजीर्ण, पित्तज्वर, अर्श, विष आदि पर मुख्य प्रयोग होता है।

10. दर्भ (ERAGROSTIS CYNOSUROIDES)

पर्याय[6]:— यह एक प्रकार का कुश भेद है:— इसके पर्याय अग्राङ्कित हैं:—

सित दर्भ, ह्रस्वकुम्भ, पूत, याज्ञियपत्रक, वज्र, ब्रह्म पवित्र, तीक्ष्ण, यज्ञभूषण सूची मुख, पुण्यतृण, वहि, तथा पूततृण ये सब सितदर्भ के बारह नाम हैं। शालिग्राम निघण्टु में इसके पर्याय है:—

---

1. अभि0शा0—2/8 गद्य
2. च0सू0—27,सु0सू0अ0—46,च0चि0अ0सु0उ0अ0—50, में इसके औषधि प्रयोग द्रष्टव्य हैं।
3. वनौ0विशे0—1,पृ0—363,शा0नि0,पृ0—442
4. अभि0शा0—2/8,गद्यभाग
5. वनौ0विशे0—1,पृ0—367—370 एवं शा0नि0,पृ0—442—43,दृष्टव्य
6. रा0नि0—शाल्यमल्यादिवर्ग—250

कुशो दर्भस्तथा बर्हिः सूच्यग्रोयज्ञभूषणः।

ततोन्यो दीर्घ पत्रः स्यात्क्षुरपत्रस्तथैवच।।

प्रचलित नाम[1]:– **सं0**– कुश, सूच्यग्र, दर्भ, यशभूषण

हि0– कुश, डाभ, दबोलि **गु0**– कुश **क0**–वीलिय बुहकुशि

म0–बारीकदर्भ, मीठेदर्भ **तै0**–कुश **को0**–दाभ

ले0–एण्ड्रोपैगोन नारडेइडिस (ANDRO POGON NARDAIDES) &

एराग्रोस्टिस साइनोसुरायडिस (ERAGROSTIS CYNOSUROIDES)

प्रसङ्गोल्लेखः:– दर्भ का उल्लेख कवि ने हरिणों की खाद्य सामग्री के रूप में किया है।[2] कवि ने दर्भ, कुश, दर्भाङ्कुर शब्दों से इस पवित्र विरुद् का उल्लेख किया है:–

1. अनुष्ठान के निमित्त रखे हुए भी कुशों में जो मुनि स्नेह वश हो, जिनके खाने की इच्छा को नहीं रोक सके हैं, ऐसे उन मुनियों की गोदी रूप बिछौने पर जिसके नाभिनाल गिर पड़े हैं ऐसे हरिणियों के नवजात बच्चे विपत्ति से रहित (कुशल से) तो है।[3]
2. जिस (गंगा) नदी के तीर पर कुश के आसनों पर पद्मासन बांध कर ब्रह्म का ध्यान करते हुए ओर समाधि लगाए हुए ऋषि लोग कमर से घुटने तक कपड़े ओढ़े सदा बैठे रहते थे।[4]
3. देखो (इस समय भी यह सामने दिखाई देना वाला मृग) पीछा करते हुए रथ पर (अपनी) गर्दन मोड़ने के कारण सुन्दर प्रतीत होन वाला पौनः पुन्येन दृष्टि को डलता हुआ, बाण के लगने के भय से अपने शरीर के पिछले आधे भाग से अत्यधिक (अपने) अगले शरीर मे प्रविष्ट होता हुआ (भागने) के परिश्रम से खुले हुए मुख से नीचे गिरने वाले आधे चबाये हुए दर्भो से व्याप्त मार्ग वाला अत्यधिक (ऊंचा और लम्बा) कूदने के कारण आकाश में अधिक और पृथ्वी पर थोड़ा जा रहा है।[5]
4. वह कृशाङ्गी कुछ ही अर्थात दो तीन पग चलकर 'कुशा की नोक से पैर घायल हो गया है' ऐसा कहकर असमय में (मुझे देखने के लिए) खड़ी हो

1. रा0नि0–शाल्यमल्यादिवर्ग–250,वनौ0विशे0–2,पृ0–241 2. अभि0शा0–1/7, 1/15, 4/12
3. रघु0–5/7 4. कु0सं0–10/46 5. अभि0शा0–1/7

गयी। वृक्षों की शाखाओं में न उलझे हुए भी वल्कल वस्त्र को छुड़ाती हुई (मुझे देखने के लिए) घुमाया है मुख जिसने ऐसी थी अर्थात मेरी ओर मुख घुमाकर (कुछ देर और) खड़ी रही।[1]

5. जब तक यज्ञ वेदी पर बिछाने के लिए ऋत्विजों के लिए (निर्धारित समय पर यज्ञ करने वालों के लिए) कुशाओं को ले जाता हूँ।[2]
6. गौतमी इस दर्भ युक्त जल से तुम्हारा शरीर पीड़ा रहित ही हो जायेगा।[3]

संस्कृत हिन्दी कोशों में दर्भ (कुश) को एक प्रकार की पवित्र (कुशा) घास बताया गया है जो यज्ञानुष्ठानों के अवसर पर प्रयुक्त किया जाता है।[4]

गुणधर्मः– यह लघु स्निग्ध, मधुर, कषाय, शीतवीर्य है। औषधि कार्य में इसकी मूल ही ली जाती है। रक्त प्रदर, पित्तातिसार, अश्मरी (पथरी) कास, आदि में लाभदायक है।[5] दर्भ मूल शीतल, रुचिकारक, मधुर रस युक्त तथा पित्तनाशक है और यह रक्त विकार ज्वर, प्यास श्वासरोग, कामलारोग तथा शोथ को दूर करने वाला है[6]–

दर्भमूलं हिमं रुच्यं मधुरं पित्त नाशनम्।

रक्तज्वर तृषाश्वास कामलादोश शोषकृत्।।92

दोनों प्रकार की दर्भ त्रिदोष नाशक, मधुर, कषेली, शीतल तथा मूत्रकृच्छ, पथरी, तृषा, बस्तिरोग, प्रदररोग और रक्तविकार को दूर करने वाली है।

दर्भस्तुमधुरः शीतोगर्भस्थापनकारकः।

डाभ, मधुर, शीतल, गर्भ स्थापक तथा पित्त दाह, श्रम और रजोदोष नाशक है।

मुख्य प्रयोग– रक्त विकार, मुत्रकृच्छ, बस्तिशूल, स्वांस, पित्त, अश्मरी (पथरी) मूर्च्छा, वमन, प्रदर, कामला और अश्वमरी (पथरी) रोग को नष्ट करता है।[7]

11 देवदारु (CEDRUS DEODARA)

पर्याय/नाम[8]:– सं0– देवदारु, भद्रदारु, **ले0–**सेड्रस देवदार(CEDRUS DEODARA **हि0–** देवदार, केलोन, केलु **अं0–**देवदार (DAODAR, HIMALYAN DEODAR)

1. अभि0शा0–2/12
2. अभि0शा0अं0–3,विष्कम्भक,गद्यभाग
3. अभि0शा0–3/21 के पश्चात् गद्यभाग
4. सं0हि0को0आप्टे–450
5. वनौ0विशे0–2,पृ0–241–42
6. रा0नि0पृ0–250,
7. नि0रा0उद्धृत,शा0नि0पृ0–278
8. वनौ0विशे0–3,पृ0–356

प्रसङ्गोल्लेखः– देवदारु का वर्णन कवि ने निम्नवत् किया है :–

1. सिंह दिलीप से कहता है कि यह जो तुम्हारे सामने बड़ा सा देवदारु को पेड़ दिखाई दे रहा है, इसे शंकर अपने पुत्र के समान मानते हैं क्योंकि स्वयं पार्वती ने अपने सोने के घट जैसे स्तनों के रस से सीच–सीचकर इसे इतना बड़ा किया है।[1]
2. थोड़ी ही देर में मृत्यु के मुँह में पहुंचने वाला वह कामदेव देखता क्या है कि देवदार के पेड़ की जड़ में पत्थर की पाटियों से बनी हुई चौकी पर बाघम्बर बिछा हुआ है और उस पर महादेव समाधि लगाए बैठे हुए हैं।[2]

गुणधर्म/प्रयोगः– आयुर्वेदानुसार लघु, स्निग्ध, तिक्त, कटु, दीपन, लेखन, मूत्रल, हृदयोत्तेजक रक्त विकार मेद रोग, जीर्णज्वर आदि में प्रयुक्त होता है।

प्रयोज्यांगः– काण्डसार, तैल, पत्र, फल।

विशिष्ट प्रयोगः– सिर की पीड़ा पर, हिक्का और श्वास पर, जलोदर, उदर व्याधि, कर्णशूल आदि पर उपयोगी है।[3]

12. प्लक्षत्वग/पाकड़ (FICUS INFECTORIA ROXB)

कुल– वट कुल

नाम/पर्याय[4]:– हिं0–पाकड़ ले0– फाइकस इन्फेक्टोरिया

प्लक्षःकपीतनःशृङ्गी सुपार्श्वश्चारुदर्शनः।

प्लवको गर्दभाण्डश्च कमण्डलुर्वटप्लवः।।

कपीतन शृंगी सुपार्श्व, चारुदर्शन प्लवक गर्दभाण्ड कमण्डलु और वटप्लव ये आठ पर्याय होते हैं।

प्रसङ्गोल्लेखः– व्याख्याकार श्री हरगोविन्द मिश्र ने इसका अर्थ पीपल किया है तथा कालिदास ग्रन्थावली में श्री सीताराम चतुर्वेदी ने इसे पाकड़, वट कहा है। रघुवंशम् में इसका उल्लेख कवि ने तीन स्थानों में किया है।[5]

1. रघु0–2/36, 4/75 2. कु0सं0–3/44 3. वनौ0विशे0–2, पृ0–356–57 एवं ध0नि0–1/77 में दृष्टव्य
4. ध0नि0पृ0–219 5. रघु0–8/93, 13/71, 17/12

गुणधर्म/प्रयोग[1]– **प्लक्षः कटुः कषायश्च शीतलो रक्त पित्तजित्।**

मूर्च्छाश्रम प्रलापाश्च हरेत् प्लक्षो विशेषतः ।।

प्लक्ष रस में कटु कषाय, वीर्य में शीत तथा रक्त पित्तशामक होता है यह विशेष रूप से मूर्च्छाश्रम और प्रलाप को दूर करता है। इसका मुख्य प्रयोग अतिसार, प्रवाहिका, रक्तविकार, रक्तस्राव, शोथ, मुखपाक, रक्तश्वेत प्रदर प्रमेह और दाह में होता है।

13. बीजपूर (CITRUS ACCIDA)

पर्याय[2]:– इसके चौदह पर्याय हैं–

बीजपूरो बीचपूर्णः पूर्णबीजः सुकेसरः।

बीजकः केसराम्लश्च मातुलुङ्गः सुपूरकः।।

रुचको बीजफलको जन्तुघ्नो दन्तुरत्वचः।

पूरको रोचनफलो द्विदेव मुनिसम्मितः।।

बीजपूर, बीजपूर्ण, पूर्णबीज, सुकेसर, बीजक, केसराम्, मातुलुङ्ग, सुपूरक, रुचक, बीजफल, जन्तुघ्न, दन्तुरत्वच, पूरक तथा रोचन फल ये सब बिजौरा निम्बु के चौदह नाम हैं।

प्रचलित नाम[3]:– **हि०**– बिजौरा निम्बु **बं०**–टावालेवु **म०**–माहुलिङ्ग

गु०–बिजोरुलिम्बु **क०**–माधवला **तै०**–दावाकाया **अ०**–उत्तरंज

फा०–तुरञ्च, तरञ्ज **अं०**– साइट्रस (CITRUS)

ले०– साइट्रस एसिडा (CITRUS ACCIDA)

प्रसङ्गोल्लेखः– बीजपूरक शब्द का प्रयोग कवि ने मालविकाग्नि मित्रम् के तृतीय अङ्क श्लोक 1 के पूर्व उद्यान पालिका मधुकरिका और परिव्राजिका कौशकी की सेविका समाहितिका की वार्तालाप में किया है–

एदं साहावलम्बिदं बीअपूरअं गेण्ह।

मधुकरिका कहती है– हाँ, लो यह डाल पर झूलता हुआ नीबू तोड़ ले जाओ,

1. ध०नि०–5/75,पृ०–219–220 2,3. रा०नि०आम्रादिवर्ग–146–47,पृ०–369

समाहितिका– नीबू तोड़ने का अभिनय करती है। इस प्रकार बीजपूर का नाम साधारणतः भोज्य पदार्थ में आया है।[1]

गुणधर्म/प्रयोग[2]:– बिजौरा निम्बु का फल अम्ल तथा कटु रस युक्त एवं उष्ण वीर्य है और श्वास कास शामक एवं पाचक है। यह कुष्ठ शोधक, हल्का, हृदय को बल देने वाला, जठराग्नि दीपक, रूचिकारक तथा अन्न पाचक है–

'बजीपूर फलमम्लकटूष्णं श्वासकास शमनं पचनं च।

कण्ठशोधन परं लघु हृद्यं दींपनं च रुचिकृज्जरणं च।।

औषधि प्रयोजय अङ्गः– फल, केशर, छिलका तथा बीज।

यह पित्त, वात्, कफ तथा रक्त को विकृत करता है। शूल, अजीर्ण, कब्ज, वातरोग, कफरोग तथा मन्दाग्नि में इसका प्रयोग किया जाता है। बीज तिक्त रस वाला होता है। इसका औषधीय प्रयोग अर्श (बवासीर) तथा शोथ को शान्त करता है।

14. शमी (PROSOPIS SPECIGERA LINN)

कुल– शिम्बी कुल (लेग्युमिनेसी / **LEGUMINASAE**)

प्रचलित नाम[3] :–

हिं०– छोंकर, शमी, **ले०**– प्रोसोपिस स्पेसिजेरा (PROSOPIS SPECIGERA LINN) **अं०**– स्पंजट्री (Sponge Tree)

शमी के पर्याय[4]– शंकुफलं, तुङ्गा, केश हन्त्री, शिवाफला, ईशानी, शङ्करी, लक्ष्मी, मङ्गल्या और पापनाशिनी[5] इत्यादि इसके 25 नाम हैं।

प्रसङ्गोल्लेखः– कवि कृतियों में 'शमी' का उल्लेख केवल अभिज्ञान शाकुन्तलंम् तथा रघुवंशम् में मिलता है :–

1. अज एवं इन्दुमती के विवाह वर्णन मे कवि कहते हैं कि 'घृत, शमी पत्र और धान की खीलों की गन्ध से भरा हुआ पवित्र धुवाँ अग्नि से निकलकर जब इन्दुमती के कपोल तक जा पहुँचा तब ऐसा जान पड़ने लगा मानो इन्दुमती ने नीले कमल

1. माल०अं०–3,प्रवेशकः गद्यभाग,पृ०–268
2. रा०नि०आम्रादिवर्ग–148,पृ०–369
3. का० का वा०वै०–माया त्रिपाठी, पृ०–313
4. ध०नि०–5/86
5. शा० नि०वटादिवर्ग पृ० 528

का कर्णफूल पहन रखा हो।[1]

2. जारा दुष्यन्त शकुन्तला के सौन्दर्य से अविभूत होकर कहते हैं कि 'वह कण्व ऋषि निश्चित ही असाधुदर्शी है जो इस सुन्दर शरीर को तप हेतु साधना चाहते हैं। अतः वे सचमुच नीले कमल की पंखड़ी की धार से शमी का पेड़ काटना चाहते हैं।[2]

3. प्रियंवदा कहती है कि ऋषि कण्व को शकुन्तला के गर्भवती होने का समाचार आकाशवाणी से इस प्रकार मिला, जैसे– शमी वृक्ष के भीतर अग्नि का वास होता है वैसे ही, हे ब्रह्मन! इस कन्या में जग–हित के लिए पुरुवंशीय तेज का निवास है।[3]

औषधीय गुणः– **'शमी फलं गुरु स्वादू रुक्षोष्णं केशनाशनम्।'**[4]

शमी का फल गुण में गुरु, रस में मधुर, वीर्य में उष्ण तथा केश का नाश करने वाला होता है। इसकी छाल तथा फल का प्रयोग अरूचि, प्रवाहिका, अर्श कृमि रक्तपित्त, आमवात, श्वास, कास तथा त्वचागत रोगों में करते हैं।

शमीवृक्ष बबूल की जाति का है। शमी कषैला, रुखा, शीतल, हलका, कड़वा, चरपरा, दस्तावर तथा रक्त पित्त, अतिसार, कुष्ठ, बबासीर, श्वास, खाँसी कफ भ्रम, कृमि, कम्प और श्रम नाशक है।

शमी तु तुवरारुक्षा शींतालघ्वी चतिक्तका।
कटुकारेचनींचैवरक्तापित्तातिसारनुत्।।[5]

15. शल्लकी (BOSWELLIA SERRATA ROXB)

कुल– बर्सरेसी (BURSERACEAE)

पर्याय/नाम[6]**:–** **हिं0**– सलई,

लै0–वासवेलिया सेराटा (BOSWELLIA SERRATA ROXB)

शल्लकी, हलादा, सुरभि, सुस्रवा, अश्वमूत्री, कुन्दुरुकी, गजभक्षा और महेरणा ये शल्लकी के पर्याय हैं।

---

1. रघु0–7/26
2. अभि0शा0–1/18
3. अभि0शा0–4/4
4. ध0नि0पृ0–223
5. शा0नि0पृ0–528
6. ध0नि0–3/122,पृ0–152

प्रसङ्गोल्लेखः– कुमारसंभवम् में गन्धमादन पर शिव पार्वती विहार प्रसङ्ग में वर्णित है :– सलई के वृक्षों के टूटने से जहाँ गन्ध फैल गई है और जहाँ हाथी दिन में रहा करते थे उन स्थानों को अगले दिन तक के लिए छोड–छोड़कर ये हाथी उस तालाब की ओर बढ़े चले जा रहे हैं जिसके कमलों में भौंरे बन्द पड़े हैं।[1] राजा उर्वशी का पता पूँछते घूम रहा है "हाथी के लिए हथिनी ने शल्लकी की सुरा के समान गन्ध वाली 'शाखा' तोड़ दी है उसे यह हाथी खा ले तब मैं इससे पूछूँगा।[2]

शल्लकी के गुणधर्मः– शल्लकी रस में कषाय, वीर्य में अत्यन्त शीत, कफ एवं पित्त प्रकोप का शमन करती है।

इसके मुख्य प्रयोगः– मस्तिष्क दौर्वल्य, अतिसार, रक्तपित्त, अर्श, व्रण और मूत्र कृच्छ्र में लाभकर है।[3]

16. 'शाल्मली तरु'

(SALMALIA MALABARICA SCHOTTR ENDL)

कुल– कार्पास **कुल–** मालवेसी **(MALVACEAE)**

नाम/पर्याय[4] **:– हि0–** सेमर, सेमल, **अं0–** (RED SILK COTTON TREE),

लै0– बाम्बेक्स मेलेबेरिकम (BAMBAX MALABARICUM DC.)

इसके निम्नलिखित 9 पर्याय बताये गये हैं–

शाल्मली, रक्तपुष्पा तु कुक्कुटी चिरजीविका।

पिच्छिला चूलिनी मोचा कण्टकाढ्या सुपूरणी।।

प्रसङ्गोल्लेखः– कवि ऋतुसंहारम् के ग्रीष्म वर्णन में कहते हैं कि–

'पवन से भड़काई हुई और शाल्मली वृक्षों की कुंजों में फेली हुई आग वृक्षों के खोखलों में अपना सुनहला पीला प्रकाश चमकाती और उन ऊँचे वृक्षों पर उछलती हुई वन में चारो ओर घूम रही है।[5]'

गुणधर्म/प्रयोगः– आयुर्वेदानुसार शाल्मली वीर्य में शीत गुण में स्निग्ध शुक्र एवं कफ वर्धक होता है। इसका मुख्य प्रयोग अतिसार, अर्श, रक्त पित्त, मुखपाक, वृणशोथ में

1. कु0सं0–8/33 2. वि0उ0–4/66 3. ध0नि0पृ0–152 4. ध0नि0पृ0–232

5. ऋतु0–1/26

किया जाता है।[1]

शाल्मली के वृहत्काय, दीर्घजीवी छाया वृक्ष होते हैं। भारतीय साहित्य एवं लोक में यह प्राचीन काल में सुविज्ञात है। ऋग्वेद में इसको सबसे ऊँचा वृक्ष कहा गया है। इसके पुष्पों का शाकार्थ व्यवहार किया जाता था।[2] इसके कच्चे फलों का चूर्ण या क्वाथ अतीव लाभकर है। दौर्बल्य और कार्श्य में सेमल, मुशली उपयोगी है। विशिष्ट **योग**– शाल्मली घृत।[3]

17. शाल वृक्षः (SHOREA ROBUSTA GAERTN)

कुल– शाल कुल (DIPTEROCARPEAE)

प्रचलित नाम[4]–हि0– साल, सखुआ, सांखु, **बं0**– शाल

म0,गु0–शालवृक्ष **ता0**–तालूर **क0**–बाइलबोधु

अं0– SAL TREE **ले0**– SHORIA ROBUSTA

पर्याय[5]:– **सालस्तु सर्ज्जकार्याऽष्व कर्णिका सस्यसम्बरः।**

साल, सर्ज्जकार्य, अश्व कर्णिका, सस्यसम्बर पर्याय होते हैं।

प्रसङ्गोल्लेख– शाल के बड़े–बड़े वृक्ष होते हैं। कवि ने इसकी डालियों से राजा दिलीप के हाँथों की उपमा दी है।[6] वन की हवा साल के गोंद की गन्ध से युक्त थी।[7] वहां से चलकर कार्तिकेय ने इन्द्र के नन्दन उपवन को देखा, जहाँ के सब साल के पेड़ या तो तोड़ डाले गए थे या उखाड़ डाले गये थे।[8]

गुण/औषधीय प्रयोग[9]:– अश्वकर्ण, शाल–कषेला तथा व्रण, पसीना, कफ, कृमि, विद्रधि, बधिरता, योनि रोग और कर्ण रोग हरने वाला है–

'उर्जोव्रणहरश्चैव श्लेश्मरक्त प्रकोपहृत्।

शाल व्रण विनाशक और कफ तथा पित्त्त के कोप को शांत करता है। सुश्रुत संहिता में कहा गया है[10]– **शालसारादिरित्येष गणःकुष्ठ विनाषनः।**

मेह, पाण्ड्वामृपहरः कफमेदोविशोषणः।।

---

1. का0कावा0वै0,पृ0–324
2. ध0नि0पृ0–232
3. द्र0गु0वि0अ0–5,पृ0–493
4,5. शा0नि0–वटादिवर्ग, पृ0–500–502तक
6. रघु0–1/13
7. रघु0–1/38
8. कु0सं0–13/33
9. शा0नि0–वटादिवर्ग, पृ0–501
10. सु0सू0–38/10

18. शैलेयम् (PERMALIA, PERLATA)

पर्याय[1]– 'शैलेयं, शिरजं, शिलापुष्प, शैलज इत्यादि सोलह पर्याय हैं।

प्रचलित नाम[2]– **हिं0**–भूरिछरीला, पत्थर का फूल, **बुन्देलखण्ड**–'पथरचटा'

बं0–शैलज, **म0**–दगड़ फूल, **गु0**–छडीलो, **क0**–कलहू,

तै0–शैलेयम् **फा0**–दहाल, **अ0**–आसीना,

लै0–परमेलिया परलेटा (Permalia Perlata)

प्रसङ्गोल्लेखः– इसका वर्णन कवि ने कुमार संभवम् के उमोत्पत्ति प्रथम सर्ग में तथा रघुवंशम् के स्वयंवर वर्णन नामक षष्ठ सर्ग में इस प्रकार किया है:–

1. भगवान शिव हिमालय पर्वत की जिस चोटी पर तय कर रहे थे वहीं उनके पा ही सिर पर नमेरू के कोमल फूलों की माला बाँधे, शरीर पर भोजपत्र लपेटे और मैनसिल के रङ्ग से अपना शरीर रंगे हुए उनके प्रमथ आदि गण 'शिलापुष्पों' से युक्त[3] चट्टानों पर बैठे पहरा देते रहते थे।[4]

2- सुनन्दा इन्दुमती से राजा सुषेण को दिखाते हुए कहती हैं इसके साथ विवाह करके तुम 'सुन्दर गोवर्धन पर्वत की गुफाओं में जल की बूँदों से छिड़काव किये गये एवं शिलाजीत (शिलापुष्प औषधि) की गन्ध से युक्त चट्टानों पर बैठकर बरसात में मयूरों के नृत्य को देखो।[5]

गुण– यह पहाड़ में उत्पन्न होने वाली औषधि है यह चार प्रकार की होती है।[6] राज निघण्टु में हसका गुण इस प्रकार वर्णित है:–

''शैलेयं शिशिरं तिक्तं सुगन्धि कफ पित्तजित्।

दाह तृष्णा व मिश्वास व्रणदोष विनाशनम्।।35।।

यह तिक्त रस शीतल तथा सुगन्धित और कफ पित्त विकार को जीत लेता है। यह दाह तृष्णा (प्यास) वमन, श्वास तथा व्रण विकार का नाशक है।

औषधीय प्रयोग– यह कफ पित्त नाश व हल्की खुजली, कुष्ठ, पथरी, दाह, विष और

1,2 रा0नि0–चन्दनादिवर्ग,पृ0–423,शा0नि0,पृ0–49 3. का0ग्र0में पं0 सीताराम चतुर्वेदी ने शेलयनद्धेषु का अर्थ शिलाजीत किया है, किन्तु मल्लिनाथ ने इसे औषधि विशेष माना है– 'शिलाजतु च शैलेयम् यद्वा शिलापुष्पाख्य ओषधि विशेषः'। 4. कु0सं0–1/55 5. रघु0–6/51 6. अभि0को0–पं0–सीताराम

गुदा से रक्त गिरने को दूर करता है। यथा शालिग्राम में उल्लेख है :-

शैलयं शीतलं हृद्यं कफ पित्त हरं लघु।

कण्ड कुष्ठाश्मरी दाह विषहृद्गुदरक्तहृत्।।[1]

19. स्नुही (EUPHORBIA NERIIFOLIA LINN)

कुल–एरंड कुल (युफर्बिएसी–**EUPHORBIACEAE)**

गण– विरेचन, षट्शोधनवृक्ष (क्षीराश्रय)[2]

पर्याय[3]– **सं0**– स्नुही (दोषों को बाहर लिकालने वाली), स्नुक, गुडा (गोलाकार) सुधा (श्वेत या गुणकारी दुग्ध युक्त), समन्तदुग्धा (समस्त अंगों में दुग्ध होने से) बज्री (बज्र के समान तीक्ष्ण) सेहुण्ड, निर्स्त्रिशपत्र (तलवार के सदृशपत्र)

प्रचलिताभिधान[4]– **हि0**–सेहुण्ड, डंडा थूहर, सीज, भिलावे का पौधा[5]

पं0 ,मा0 ,गु0–थोर, **बं0**– मनसासिज, **म0**–नियडुङ्ग, **ता0**–इलाइकल्लि,

ते0–अकुजिमुडु **कन्न0**–मालेकाल्जि, **मल0**–इल्लाकल्लि **अ0**–जकूम

अं0–कामन मिल्क हेज (COMMON MILK HEDHE)

ले0–युफार्बिया नेरिफोलिया (Eukhorbia Neriifolia linn)

जातिः– इसकी त्रिधार (E. anti qulorum Linn) सप्तधार (E.roy leana boiss) छीमिया (E. Tiruxalli Lnn) आदि अनेक जातियां होती है। महर्षि चरक ने इसकी दो जातियों का उल्लेख किया है[6]– 1.अल्पकंटक 2 बहुकंटक ।

इनमें बहुकंटक को चरक ने श्रेष्ठ बतलाया है।

उत्पत्तिस्थान– यह समस्त दक्षिण भारत में पथरीली जमीन में मिलता है। समस्त भारत में प्रायः बागों की चहार दीवारी के रूप में रक्षार्थ लगाते हैं।

रासायनिक संघटन– इसमें युफर्बन (Euphorbon) राल, निर्यास, रबड़, कैल्शियम, मैलेट आदि पाये जाते हैं। इसका दूध कटु तथा त्वचा मे लाली एवं शोथ उत्पन्न

---

1. शा0नि0पृ0–49 में वर्णित, दृष्टव्य नि0र0
2. विद्यात् स्नुही क्षीरं विरेचने–च0सू0–1
3,4. द्र0गु0वि0अ0–5,पृ0–431
5. सं0हि0को0सं0हि0को0पृ–732
6. च0सं0क0अ0–10, सा श्रेष्ठा कण्टकै र्तीक्ष्णैर्बहुभिश्चसमाचिता।–वाग्भट्ट,अ0–2

करने वाला होता है।

गुण– लघु, तीक्ष्ण, रस–कटु, विपाक, कटु, वीर्य, उष्ण

कर्म–कफ वात हर, वेदना स्थापन, रक्त शोधक, शोथहर, कफ निःसारक है। यह त्वग्दोषहर, और विषघ्न हैं।

औषधीय प्रयोग

प्रयोज्य अंग– मूलकांड पत्र क्षीर।

इसको गरम कर शोथ वेदनायुक्त स्थानों पर बांधते हैं। इनके स्वरस को कर्णशूल में डालतें हैं तथा इससे सिद्ध तेल का वात व्याधि में अभ्यंग करते हैं। दूध चर्म रोगों में लगाते हैं तथा दन्त शूल में रुई के फाहे मे रखते हैं।[1]

आभ्यन्तरस्पाचन संस्थान– उदररोग, गुल्म, यकृत्प्लीहवृद्धि में इसका दूध विरेचनार्थ देते हैं। पांडु, कुष्ठ, मधुमेह, शोथ, उन्माद आदि गम्भीर रोगों में संशोधनार्थ बलवान रोगियों में इसके दूध का प्रयोग करते हैं। इससे पानी के समान दस्त होते हैं और कभी–कभी वमन भी होता है।[2]

रक्तवहसंस्थान– उपदंश अवमात वातरक्त तथा शोथ में इसका प्रयोग करते हैं।

श्वसनसंस्थान– कास, श्वास, प्रतियाय आदि कफ प्रधान रोगों में इसके काण्ड को गरम कर उस का स्वरस मधु टंकण मिला कर देते हैं। त्वचा कुष्ठ आदि चर्मरोगों में यह उपयोगी है।

सात्मीकरण– जांगम विषों में इसके मूल का अन्तः और वाह्य प्रयोग करते हैं।

विशिष्ट योग[3]– वज्रक्षार स्नुहनादि तैल, स्नुह्यादि वर्ति।

प्रयोग विधि– एक चना स्नुही क्षीर में डालकर कुछ देर छोड़ देते हैं जब वह दूध को आत्मसातकर फूल जाता है तब उसे गरम जल से लेना चाहिए।

प्रसङ्गोल्लेखः– इसका उल्लेख कवि ने 'रघुवंश महाकाव्यम्' मे किया है यथा– 'उन रघु महाराज ने 'स्नुही के पत्ते'[4] की तरह जिसमे फलक लगे है ऐसे बाणों से कटे हुए दाढ़ी–मूछों से युक्त उन पारसी राजाओ क शिरों से जैसे मधुमक्षिकाओं से ढके हुए

---

1. द्र0गु0वि0अ0–5,पृ0–432 एवं वनौ0विशे0,पृ0–294–300 तक दृष्टव्य। 2. च0सं0क0अ0–10 3. द्र0गु0वि0अ0–5
4. स्नुहीदलफलोभल्लः इति कथ्यते।–मल्लिनाथ, भल्लः–बाण, भिलावे का पौधा, सं0हि0को0पृ0–732

मधु के छत्तों से ढक जायें उस भांति पृथ्वी को ढक दिया।[1] इसी प्रकार रघुवंशम के अन्य स्थानों में इसका उल्लेख किया है।[2]

20. सरल : (PINUS LONGIFOLIA ROXB)

कुल– सरल कुल (पाइनस / **PINACEAE**)

प्रचलित नाम[3]– **हि0**– चीड़, धूप, सरल **गु0**– तेलियो देवदारू

अं0– लौंगलीव्डपाइन (LONG LEAVED PINE)

ले0– (PINUS LONGIFOLIA ROXB)

पर्याय[4]– **"सरलः पूतिकाष्ठं च चीडा पूतिद्रुमो मतः।**

दीपवृक्षः स्निग्धदारुः प्रोक्तो मारीच पत्रकः।।

यह भी देवदारू का ही भेद है जैसा कि राज निघण्टु में कहा गया है[5]–

"देवदारु द्विधा ज्ञेयं तत्राद्यं स्निग्धदारुकम्।"

प्रसङ्गोल्लेखः– कवि ने हिमालय वर्णन प्रसङ्ग में देवदारु, सरल, शाल आदि वृक्षों का वर्णन किया है वर्णन इस प्रकार है–

1. सरल वृक्षों में बंधे हुए हाँथियों के गलों में जो साँकलें पड़ी थीं वे रात को चमकने वाली बूटियों के प्रकाश से चमचमा उठती थीं और इस प्रकार उन बूटियों ने रघु के लिए बिना तेल के दीपक जला दिए थे।[6]
2. जब यहाँ के हाथी अपनी कनपटी खुजलाने के लिए सरल वृक्षों से माथा रगड़ते हैं, तब उनसे ऐसा सुगन्धित दूध बहता है कि उनकी महक से इस पर्वत की सभी चोटियाँ एक साथ गमक उठती हैं।[7]
3. यक्ष मेघ से कहता है कि आँधी चलने पर सरल वृक्षों (देवदारु) के आपस में रगड़ने से जब जंगल में आग लग जाए तब तुम वहाँ वर्षा करके उसे बुझा देना।[8]

---

1. रघु0–4/63
2. रघु0–9/66, 4/63, 7/58
3. का0 का वा0 वै0,पृ0–337
4. ध0नि0–चन्दनादिवर्ग–3/77
5. रा0नि0–चन्दनादिवर्ग,श्लोक–32
6. रघु0–4/75
7. कु0सं0–1/9
8. पू0मे0श्लोक–57

गुणधर्म/प्रयोगः– ये सुगन्धित वृक्ष है इसीलिए निघण्टुओं में इनका (देवदारु, सरल वृक्षों का) समावेश चन्दनादि व कर्पूर वर्गों में किया गया है। इसीलिए हिमालय क्षेत्र में यक्ष्मा रोगियों के लिए आरोग्य सदन बनाये गये हैं।[1]

यह गुण में स्निग्ध, रस में तिक्त, वीर्य में उष्ण है यह कफ–वात का शामक, नेत्र रोग व वृणों का नाशक है।[2] इसका प्रयोग भी देवदारु, सर्ज, शाल आदि के समान होता है।

1. मदनपाल निघण्टु, कर्पूर वर्ग
2. ध0नि0–3/78,पृ0–141 एवं सु0सं0सू0–45– सारस्नेहास्तिक्त कटु कषायाः कुष्ठ व्रणशोधनाः, कृमि कुष्ठानिलहराश्च।।

अध्याय

७

आलोच्य कवि की रचनाओं में प्राप्त वनस्पतियों का उपयोग

अध्याय–7

आलोच्य कवि की रचनाओं में प्राप्त वनस्पतियों का "उपयोग"

मानव समाज और संस्कृति से वनस्पतियों का घनिष्ठ सम्बन्ध अति प्राचीन काल से था। सत्य तो यह है कि मानव समाज के सर्वाङ्गीण विकास में वनस्पतियों का प्रमुख योगदान रहा है। इसी कारण संसार के प्राचीनतम् ग्रन्थ ऋग्वेद में वानस्पतिक महत्त्व स्थान–स्थान पर है :–

मधुनक्तमुतोषसो मधुमत् पार्थिवं रजः।

मधु द्यौरस्तु नः पिता।।

मधुमान् नो वनस्पतिर्मधुमान् अस्तु सूर्यः।

माध्वीर्गावो भवन्तु नः।।[1]

प्रथमतः वनस्पतियों के तीन महत्वपूर्ण उपयोग थे– पोषण, आवरण तथा औषधि। ज्ञान–विज्ञान के विकास के साथ–साथ वनस्पतियों का उपयोग भी बढ़ता गया है। महाकवि कालिदास तो प्राकृतिक कवि हैं। इन्होंने विभिन्न वृक्ष–लता पुष्पों के माध्यम से मानव संवेगों के उद्बोधन में सम्प्रेषणीयता प्रदान की है। नायक–नायिकाओं के मनावेगों, कायिक सौन्दर्य विवेचना में संस्कृत कविगण प्रकृति की सहायता लेते आ रहे हैं। कवि को प्रकृति का निकट सानिध्य प्राप्त था। अतः उन्होंने न केवल वनस्पतियों के सौन्दर्याकर्षण से प्रेरित विवेचन किया है अपितु स्थान–स्थान पर तत्कालीन जीवनापयोगी वनस्पतियों के व्यवहार को भी उदृघृत किया है जैसे इङ्गुदी, नारिकेल आर्थिक लाभ व वन्य जीवन से सम्बद्ध तथा आमरणोपयोगी, काव्यालंकारों में प्रयुक्त औषधीयपयोगी, प्रसाधनिक, धूपन दृव्य मुखशोधन, धार्मिक मांगलिक अवसरों पर प्रयुक्त पशु–पक्षियों का प्रियभक्ष्य, कवि जगत् प्रसिद्ध श्रृङ्गारी आदि अनेक विद्याओं द्वारा कविवर कालिदास में वनस्पतियों को जीवन का आवश्यक साधन सिद्ध किया है।

इस अध्याय में क्रमशः वनस्पतियों के दो प्रकार के उपयोग बताना है:–

---

1. ऋग्वेद–1/90/7, 8

1. सौन्दर्य वृद्धिकारक वनस्पतियाँ 2.खाद्य रूप में प्रस्तुत वनस्पतियाँ

सौन्दर्य का आधार

सौन्दर्य का विमर्श दो रूपों में किया गया है, प्रथम विषयगत द्वितीय विषयगत अथवा आत्मनिष्ठ। प्रथम कोटि के विचारक सौन्दर्य का आधान वस्तु अथवा विषय में और द्वितीय कोटि के विचारक सौन्दर्य का आधान मनुष्य के मन में मानते हैं। पहले में नयनाकर्षण तथा दूसरें में अन्तर्मन का आकर्षण प्रधान होता है। आकर्षण ही वस्तुतः सौन्दर्य का प्राणतत्व है। वैयुत्पत्तिक अर्थ में कैंची की तरह काटना ही सौन्दर्य का धर्म है।[1]

सौन्दर्य शास्त्रियों की बात छोंड़ दी जाय तो भी साहित्य की सुकुमार कला के अभ्यासी कवियों में ही ये दोनों दृष्टियाँ उपलब्ध होती है। माघ की प्रसिद्ध उक्ति **'क्षणे-क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रूपं रमणीयतायाः'** में सौन्दर्य वस्तुनिष्ठ बताया गया है। एक दूसरा कवि दूसरी दृष्टि विज्ञापित करता है:-

''दधि मधुरं मधु मधुरं द्राक्षा मधुरा सितापि मधुरैव।

तस्य तदेव हि मधुरं यस्य मनो यत्र संलग्नम्।।''

दही मीठा शहद है, शहद भी मीठा है, अंगूर भी मीठा है, मिश्री तो और भी मीठी है। वास्तव में, जिसका मन जहाँ लग जाय, उसके लिए वही वस्तु मीठी हो जाती है।[2]

'मनः संलग्नता' की पुष्टि नैषधचिरत में श्री हर्ष ने यह कहकर की हैं कि परम सुन्दरी रमणी का सौन्दर्य भी बालकों को आकर्षित नहीं करता-

''यथा यूनस्तद्वत्परमरमणीयाऽपि रमणी।

कुमाराणामन्तः करणहरणं नैव कुरूते।।[3]

भारवि ने भी कहा है **''वसन्ति हि प्रेम्णि गुणः न वस्तुषु।''** गुण (आकर्षण) वस्तुओं में नहीं, प्रेमियों के ह्रदय में वर्तमान होता है।

सौन्दर्य का अनुभव प्रमाता के मन में आनन्द का अविर्भाव करता है। सौन्दर्य की मानसिक सत्ता मानने वालों ने सुन्दरता को बुद्धि से पृथक् भावना का विषय माना

---

1. सुन्दंराति इति सुन्दरम् तस्य भावः सौन्दर्यम्। सुन्दर(सुन्द+अरः), क-प्रिय,मनोज्ञ, मनोहर, आकर्षण ख-यथार्थ, सं०हि०को०आप्टे,पृ०-1115 2. महाकविकालिदास पृ०-293 में उद्धृत 3. नैसधचरित-22/252

है तथा तज्जन्य आनन्द को आत्म रस की चर्वणा से लगभग अभिन्न स्वीकार किया है।

प्लेटो प्लाटिनस इत्यादि दार्शनिकों ने यह उपपादित किया है कि विश्व का गोचर सौन्दर्य किसी अगोचर एवं आत्यन्तिक सौन्दर्य सत्ता का जो प्रायः ईश्वर ही है, उद्‌भास है। सभी चिन्तकों ने सौन्दर्यानुभूति में इन्द्रिय संनिकर्ष को स्वीकार किया है। प्रत्यय वादियों ने भौतिक इन्द्रियों की अपेक्षा मन या अन्तःकरण को अधिक महत्व दिया है। डार्विन तथा फ्रायड़ जैसे विचारकों ने सौन्दर्यानुभूति को काम–वासना अथवा वंश–रक्षण की प्रवृत्ति से जोड़ दिया है।[1]

भारतीय चिन्तन के अनुसार 'रसरूप एवं आनन्द ब्रह्म की ज्योति ही विश्व में दृष्टिगोचर होने वाले निखिल सौन्दर्य का उद्‌भव है। उपनिषद्[2] कहते हैं–

''तमेव भान्तमनुभाति सर्वम्,

तस्य भासा सर्वमिदं विभाति।।

इसी कारण भारतीय सौन्दर्य धारणा में मनुष्य तथा प्रकृति दोनों ही एक एक ही सौन्दर्य तत्व का अनुभव करते हुए रसलीन होते हैं और इसी कारण दोनों ही सीमायें प्रायः एक–दूसरे में मिल जाया करती है।

कालिदास ने प्रकृति की रमणीयताओं का जितना सरस एवं ललित वर्णत किया है, उससे भी अधिक हृद्य तथा आवर्जक चित्रण उन्होंने मानव सौन्दर्य का किया है। नारी देह में जो सौन्दर्य प्रकाश करता है वही प्रकृति के विभिन्न पदार्थों में भी प्रतिबिंवित है और जिस प्रकाश से प्रकृति की नाना रूपिणी छवियाँ विश्व में अपना सम्मोहन विखेरे हुए हैं, वही प्रकरण नारी रूप में फूटकर चराचर सृष्टि को बन्दी बना देता है।

कुमार संभव में 'नव तरूणी पार्वती का रूप कवि ने प्रकृति की सहायता से संवारा है :–

''आवर्जिता किञ्चिदिवस्तनाभयां वासोवसाना तरुणार्करागम्।

पर्याप्त पुष्पस्तवकावनम्रा सञ्चारिणी पल्लविनीलतेव।।3/54

---

1. महाकवि कालिदास–डा० रमाशंकर, पृ०–294   2. श्वेताश्वतरोपनिषद, अ०–6/14

स्तनों के बोझ से झुके हुए शरीर पर प्रातः काल के सूर्य के समान लाल कपड़े पहने हुई पार्वती ऐसी प्रतीत हो रही थी जैसे फूलों के गुच्छे के भार से झुकी हुई नई लाल–लाल कोपलों वाली चलती–फिरती लता हो। यक्ष ने अपनी प्रिया के रूप सौन्दर्य को प्रकृति राज्य में एकत्र देखना चाहा था, किन्तु उसे गहरी निराशा हुई थी। यक्ष प्रेयसी शायद सर्वश्रेष्ठ तिलोत्तमा है। और विधाता की पूर्ण सौन्दर्य दिदृक्षा का सर्वोत्कृष्ट प्रतिफल है। देखिये उत्तर मेघ में विरही यक्ष की वेदना को–

'श्यामास्वंग चकित हरिणी प्रेक्षणे दृष्टिपातम्,

वक्त्रच्छायां शशिनि शिखिनां वर्हभारेषु केशान्

उत्पश्यामि प्रतनुषु नदी वीचिषु भ्रूविलासान्

हन्तैकस्मिन्क्वचिदपि न ते चण्डि सा दृश्यमास्ति।।46

हे प्यारी! मैं यहाँ प्रियंगुलता में तुम्हारा शरीर डरी हुई हरिणी के आखों में तुम्हारी चितवन, चन्द्रमा में तुम्हारा आनन, मयूरपंखों में तुम्हारे केश और नदी की लघु उर्मियों में तुम्हारी कटीली भौंहें देखता हूँ। तो भी, हे चण्डी! मैं पूर्णरूप सौन्दर्य को किसी एक वस्तु में एक जगह नहीं देख पाता। सौन्दर्य का अनुप्राणक धर्म नव यौवन माना गया है। कालिदास ने उमा के वाल्यावस्था का अतिक्रमण का यौवन–दशा की प्राप्ति करने का यह अभिराम चित्र अंकित किया हैः–

'उन्मीलितं तूलिकयेव चित्रं सूर्यांशुभिर्भिन्नमिवारविन्दम्।

वभूव तस्याश्चतुरस्रशोभि वपुर्विभक्तं नवयौवनेन।।1/32

"जैसे तूलिका से ठीक–ठीक रंग भरने पर चित्र खिल उठता है तथा जैसे सूर्य–किरणों का स्पर्श पाकर कमल खिल जाता है, वैसे ही नवयौवन के संस्पर्श से पार्वती का सब प्रकार से शोभा देने वाला शरीर विभक्त हो गया, अर्थात् उसमें उभार आ गया।"

नैतिकता जीवन की रीढ़ है और आस्था नैतिकता की रीढ़ है। आस्था टूटने से जीवन दुःखों से भर जाता है क्योंकि आत्मिक और नैतिक ज्ञान हमारे जीवन में संबल है।[1] किन्तु भारत जैसे देश में आज लोग सौन्दर्य विषयगत मान रहे हैं। आजकल

1.वाण्येका समलङ्करोति पुरुषं या संस्कृता धर्यते। क्षीयन्ते खलु भूषणानि सततं गाग्भूषणामाभूषणम्।। नीतिशतकम भर्तृहरि, श्लोक–19

सौन्दर्य का स्थान लोगों के मन व कर्म में न होकर 'विदेशी विज्ञापन एजेन्सियों ने ले रखा है।' अब 'सुन्दरता' निखारने का राज बस उन्हीं के पास है। आज बाजार और ग्लैमर की दुनिया ने हर व्यक्ति के मन में खूबसूरत होने की ललक जगा दी है। साथ ही समाज में सफलता और लोकप्रियता के साथ 'खूबसूरत होना भी जरूरी है।' आज यह मानसिकता से चढ़कर बोल रही है। आधुनिक समय में हालांकि 'ब्यूटीपार्लर' का बोलबाला है। लोग बनावटी सौन्दर्य की ओर जा रहे हैं। किन्तु स्थायी सुन्दरता नैसर्गिक साधनों से ही आ सकती है। आज भी प्राकृतिक प्रसाधनों उबटन, फल–फूल से निर्मित लेप आदि की उपयोगिता को नजर अदांज नहीं किया जा सकता है। यह सौन्दर्य अधिक टिकाऊ और आकर्षक होता है। महाकवि कालिदास की रचनाओं में वर्णित वनस्पतियों से खूबसूरती निखारने के कुछ वैकल्पिक और सरल–सुगम नुस्खे निम्नवत् हैं। सौन्दर्य वृद्धिकारक वनस्पतियों को चार भागों में बांट सकते हैं:–

(क) प्रसाधनिक वनस्पतियाँ

(ख) धूपन दृव्य

(ग) मुखशोधनोपयोगी दृव्य

(घ) आभरणो द्वारा सौन्दर्य में वृद्धि

(क) प्रसाधनिक वनस्पतियाँ–

मुखकान्ति वर्धक– (वर्ण्य)–

इंड्गुदी–इसके फल की भींग (मज्जा) को जल के साथ मुख में लेप करने से मुख की कान्ति बढ़ती है।[1] यह कोढ़, भूत–बाधा आदि को निर्मूल करता है। इसका तेल स्निग्ध एवं शीतल और कान्ति को देने वाला है। इसके प्रयोग से केश वृद्धि होती है।[2]

अशोक[3]– यह भी वर्णोज्ज्वालक वनस्पति है। इसका रस 'वर्ण' को निखारता है। इसमें 'अशोकारिष्ट' का प्रयोग भी महत्वपूर्ण है।

अर्जुन– इसका उपयोग भी कान्तिजनक है। इसकी छाल को पीसकर अथवा उसके साथ मजीठ और अडूसा की छाल मिलाकर शहद के साथ लेप करने से झांई व्यंग

1. इङ्गुद्याः फलमज्जको जलयुतो लेपोमुखे कान्तिदः। वै0जी0

2. स्निग्धं स्यादिङ्गुदी तैलं मधुरं पित्तनाशनम्, शीतलम् कान्तिदं बल्यं श्लेष्मलं केशवर्द्धनम्।।

3. द्र0गु0वि0अ0–7,पृ0–617–18,वनौ0विशे0–1,पृ0–226

(मुहांसे) दूर होते हैं मुख में कान्ति आती है।[1] इसमें अर्जुनारिष्ट भी ले सकते हैं।

अगर– इसकी लकड़ी को सिल पर जल के साथ पीसकर या घिसकर उसका चन्दन शरीर पर लगाने से शरीर के तीव्र दाह और त्वचा के अन्यान्य विकारों को दूर कर वर्ण–उज्ज्वल करता है। इसीलिए इसे 'वर्ण प्रसादन' कहते हैं। दो भाग अगर, लोहबान, लोघ्र, खस, नागरमोथा एक–एक भाग और कपूर, केशर अर्द्ध–अर्द्ध भाग एकत्र चूर्णकर जल में मिला उबटन करें इससे भी वर्ण उज्ज्वल होता है।[2]

आक– इसके दूध को हल्दी के चूर्ण में घोंटकर लगाने से मुख के चिर कालीन धब्बे, झांई आदि नष्ट हो जाती है तथा मुखकान्ति उत्पन्न होती है।[3]

कुङ्कुम– यह वर्ण्य प्रसन्नताकारक है। कुकुंमादिघृत का सेवन अत्यन्त सौंदर्यवर्धक है। दुग्धोत्पत्ति के लिए इसका लेप स्तनों पर करते हैं।[4] यह चर्मरोग नाशक है। एक रत्ती केशर दूध के साथ घोंटकर पीने से त्वचा का रंग निखरता है। इसे शीतकाल में सेवन करना चाहिए।

कर्णिकार:– इसके पुष्पों के मलने से चेहरे की कान्ति निखर आती है।[5]

कमल– यह भी वर्ण्य पुष्प है। इसके पुष्प केशर कान्तिजनक है। इसे आमले के साथ पीसकर प्रलेप करते हैं। महर्षि चरक ने मुख्य रूप से दस औषधियों को ही वर्ण्य माना है यथा– **चन्दनतुंगपद्मकाशीर मधुकमजिष्ठा शारि**

वापयस्यासितालताइतिदशेमानिवर्ण्यानिमवन्ति।।

लालचंदन, नागकेशर, पद्माख, खस, मुलहटी, मुजीठ, सरिवा (अनंतमूल) विदारी कंद, सुफेद दूब, स्याम दूब, यह दश औषधि 'वर्ण्य' (देह के रंग को निखारने वाली) हैं।[6]

केतकी–यह त्वचागत वर्णविकारों एवं कुष्ठ पर लाभप्रद है। इसके पुष्पों या भुट्टों के भीतर महीन पिसा हुआ कत्था भरकर बांधकर रखें। 15 दिन बाद खोलकर कत्थे को खरल कर गोलियां बना लें। ये गोलियां मुख की दुर्गन्ध, मुखपाक एवं कंठ की जलन आदि को दूर करती हैं।[7]

1. द्र०गु०वि०अ०–3,पृ०–196,वनौ०विशे०–1,पृ०–210
2. वनौ०विशे०–1,पृ०–39
3. वनौ०विशे०–1,पृ०–238
4. वनौ०विशे०–1, पृ०–265, द्र०गु०वि०अ०–140, नि०सु०,पृ०–35
5. च०चि०अ०–7,एवं वनौ०विशे०–1,पृ०–77
6. च०सू०अ०–4/6
7. वनौ०विशे०–2,पृ०–259

तिल– इसका प्रयोग भी खूबसूरती के लिए होता है। फटी हुई एड़ियों पर गर्म तिल के तेल में सेंधा नमक एवं मोम मिलाकर लगाने से लाभ होता है। तिल पीसकर मक्खन के साथ नियमित रूप से चेहरे पर लगाने से चेहरा गोरा हो जाता है।[1]

जौ या चावल– का आटा दूध में घोलकर उबटन की तरह प्रयोग करते हैं, इससे त्वचा साफ हो जाती है।[2]

लोघ्र– सिरस, खस, नागकेशर एवं लोघ्र का चूर्ण देह मे मीड़ें तो त्वचा के दोष और पसीने नष्ट होते हैं। तेजपात, नेत्रवाला लोघ्र खस और चन्दन इसका लेप देह की दुर्गन्ध को नष्ट करता है।[3]

सेंमल (शाल्मली) के कांटों को दूध में पीसकर मुख में लगाने से चेहरे का रंग साफ होता है और व्यंन्यछ आदि रोग दूर होते हैं।[4]

चमेली– इसकी मूल उबटन में मिलाकर या ऐसे ही अकेले लगाने पर वर्ण सुधरता है।[5]

स्नुही– इसके दुग्ध को सावधानी से लगाने से मस्से गिर जाते हैं। त्वचा स्वच्छ होती है।[6]

वट– वरगद भी सौन्दर्य व स्वास्थ्य वर्धक प्रमुख वनौषधि है। मुखकान्ति वर्धनार्थ तथा व्यंग, कालेदाग, गंज, केश विकार नाशार्थ इसके पके पीले पत्तों के साथ रेणुका (निर्गुण्डी बीज) फूलप्रियंगु, मुलैठी, कमल पुष्प, लोघ्र केशर, लाख तथा इन्द्रायण ही जड़ का चूर्ण समभाग लेकर सबको जल के साथ पीसकर लेप करने से मुख कान्तिमान हो जाता है।[7] अथवा

बरगद के पीले पके पत्तों के साथ चमेली के पत्ते, लाल चन्दन, कूठ, काला अगर और पठानी लोघ्र समभाग सबको जल के साथ पीसकर लेप करने से मुहांसे व्यंग (झांई) तथा नीलिका (स्याह छीप, झाही) यह श्याम मण्डलाकार व्यंग है जो मुख के अतिरिक्त शरीर के अन्य भागों पर होता है। (Phyriasisnigra) का नाश होता है तथा कान्ति बढ़ती है।[8]

---

1. नि0सु0,अगस्त,2001,पृ0–56
2. नि0सु0,अगस्त,2001,पृ0–85
3. च0सं0सू0अ0–3/23,24,
4. द्र0गु0वि0अ0–5,पृ0–493
5. द्र0गु0वि0अ0–2,पृ0–179
6. वनौ0विशे0पृ0–297
7. भा0भै0र0,वनौ0विशे0–4,पृ0–476 में उद्धृत
8. शा0सं0 उद्धृत वनौ0विशे0भाग–4,पृ0–476

लावण्य निखारक योग

कुष्ठ, तालीस पत्र, तगर की मूल, कमल, कुमुद व नागकेशर को जल की सहायता से पीसकर शरीर के अंगों पर लगाने से शरीर का दुर्गन्ध पसीना अधिक बहना आदि नष्ट होकर स्फूर्ति व ताजगी आ जाती है।[1] अशोक की छाल, नीम की छाल, लोघ्र, पठानी, मंजीठ, लाल चन्दन, हल्दी, चिरौंजी, संतरे का छिलका आठो द्रव्य समभाग पीसकर बारीक चूर्ण बना लें। इसे प्रतिदिन कच्चे दूध में भिगोकर उबटन करें। त्वचा खिल उठेगी।[2]

ओष्ठ सौन्दर्य वर्धक योग

आजकल होठों की सजाने के लिए अनेक प्रकार की लिपिस्टिकों का प्रयोग होता है। होंठों पर एक स्वाभाविक लालिमा होती है जो किसी बीमारी या प्रदूषण के कारणों से कम होती चली जाती है। होठों के स्वस्थ्य व सुन्दर बनाने के लिए अग्रेंकित प्रयोग किया जा सकता है– गुलाब की पंखुड़ियां, नीबू, दूध एवं केशर मिलाकर घुटाई कर ऊपर से ग्लिसरीन मिलाकर लेप तैयार कर लेते हैं। इस पेस्ट (लेप) से रोज होठों की मालिश करने से ताजगी बनी रहती है।[1]

चन्दन का पैक:– चेहरे की त्वचा को ठंडक पहुचाने के लिए चंदन को गुलाब जल की सहायता से घिसकर चेहरे पर लगायें। 20 मिनट बाद धो दें।[2]

गोरा रंग– पानी वाले कच्चे नारियल का प्रयोग गर्भस्थ शिशु को गौर वर्ण का बनाता है। गर्भ स्थापना होते ही प्रातः काल खाली पेट 1–1 चम्मच मख्खन मिश्री और थोड़ी पिसी काली मिर्च मिलाकर चाटलें। इसके बाद पानी वाले कच्चे नारियल की सफेद गरी के 3–4 टुकड़े खूब चबा–चबाकर खा लें। फिर थोड़ी सी सौंफ मुंह में डालकर चबाते चूसते रहें और अन्त में निगल जायें। यह प्रयोग प्रसव होने तक नियमित रूप से करते रहने से शिशु खूब गौर वर्ण का होता है। इस प्रयोग के बाद आधा घण्टे तक कुछ खाए पियें नहीं।[3]

---

1. नि0सु0अग0–01,पृ0–50
2. नि0सू0पृ0–35, सेहद और सौन्दर्य विशेषांक
3. नि0सु0,अगस्त–01,पृ0–50
4. नि0सु0,अगस्त–01,पृ0–63
5. नि0धा0शीतऋतु,अंक–2002, पृ0–22–24

देह की दुर्गन्ध दूर करने हेतु प्रयुक्त वनस्पतियाँ[1]

पसीने की बदबू तथा देह की दुर्गन्ध को दूर कर शरीर को स्वच्छ, तरोताजा और सुगन्धित बनाने के लिए निम्न उपाय सफल व सिद्ध हैं–

1. गुलाब जल में चंदन घिसकर लेप करने से पूरा बदन फूलों की भांति महक उठता है।
2. इत्र खस, उबटन में मिलाकर लेप करने से लाभ होता है।
3. चन्दन, खस, देवदारु, नागरमोथा और गुलाब के फूल समभाग पीसकर गुलाब जल में भिगोकर उबटन करने से देह की दुर्गन्ध नष्ट होकर देह खिल उठती है।
4. चन्दन, हल्दी, मजीठ, चिरौंजी और कपूर सम भाग मिला लें। जितना वजन हो उससे दुगना बेसन मिलाकर रख लें। मलाई या दुग्ध में उबटन बनाकर प्रयोग करें।
5. केसर, कपूर, छोटी इलायची, कत्था, अम्बर पांचों भाग पीसकर गुलाब जल में रगड़कर उड़द के समान गोलियाँ बना लें। एक से दो गोली पान में रखकर खायें। मुंह की दुर्गन्ध नष्ट करने में बेजोड़ है। यह शक्तिवर्धक है।

स्तन सौन्दर्य

नारी सौन्दर्य में जिन अंगों की प्रमुख भूमिका होती है उनमें स्तन अग्रगण्य हैं। मांसल, उन्नत व दृढ़ स्तन उत्तम स्वास्थ्य व यौवन पूर्ण सौन्दर्य के प्रतीक होते हैं। स्तनों का विकास स्त्रियों के द्वितीय यौन लक्षणों के रूप में होता है। इनकी प्रथम उपयोगिता शिशु के स्तन पान कराना है किन्तु आधुनिक फैशन जगत से प्रभावित होकर आज यह कार्य गौण समझा जा रहा है।

आज 'स्तनों' को पूर्ण रूप से सैक्स सिम्बल मानकर महिलाएं उनके सुन्दरीकरण के उन्माद में खोती जा रही हैं। सम्भवतः यह पाश्चात्य सभ्यता का प्रभाव है।

---

1. नि0सु0,अगस्त–01,पृ0–38 एवं ध0नि0चन्दनादिवर्ग

उत्तम स्तन के गुण

आयुर्वेद में शरीर के हर अंग का उत्तम मध्यम और हीन गुणों के आधार पर वर्गीकरण किया गया है। उत्तम स्तन का आकार कैसा हो इस बारे में आचार्य चरक कहते हैं :– **''तत्रैयं स्तनसंपत्–नात्यूर्ध्वौ**

नातिलम्बावनति कृषावनति पीनौ युक्तापिप्पलकौ सुख प्रपानौ चेति।

स्तन अधिक ऊर्ध्व न हों, अधिक लम्बे न हों, अधिक कृश (मांस रहित) न हों, अधिक मोटे न हों और स्तन में स्तन–चूचुक (निप्पल) उचित रूप से कुछ ऊँचा उठा हो जिससे शिशु सुखपूर्वक दूध पी सके। ऐसे स्तन उत्तम माने जाते हैं।[1] कवि कालिदास ने उत्तम स्तनों का उदाहरण कुमार संभव में दिया है।[2]

स्तन विकार एवं औषधियाँ

स्तनों का विकास स्त्री डिम्ब ग्रन्थि का अन्तःस्राव (एस्ट्रोजन एवं प्रोजेस्ट्रोन) द्वारा होता है। महर्षि चरक ने दो प्रकार की प्राकृतिक वनौषधियाँ बताई हैं–

1. स्तन्य (दुग्ध) वृद्धि हेतु
2. स्तन विकार (अविकसित आदि) नाश हेतु।

1. स्तन्य वृद्धि हेतु

जिन औषधियों का प्रयोग स्तनों में दुग्ध वृद्धि हेतु होता है वे निम्नवत् हैं:–

''वीरण शालिषष्ठिकेक्षुवालिकादर्भ कुशकाश

गुन्द्रोत्कटकतृण, मूलानीति दशेमानि स्तन्यजननानि भवन्ति।[3]

खस, शालिधान, षष्ठिक धान्य, इक्षु, वालिका (दर्भभेद) दर्भ (डाभ), कुश, कास, गुंद्र (गंद्रतृण) उत्कट (ईकड़ बोरू), कत्तृण (गधेल घास) ये दस औषधियाँ स्तन्यजनक होती है। महाकवि कालिदास जी ने उक्त सभी का उल्लेख विभिन्न प्रसङ्गों में किया है किन्तु कुछ अन्य वनस्पतियाँ इस प्रकार हैं–

1. निर्गुण्डी (शेफाली, या सिन्दुवार) का चूर्ण दुग्ध के साथ सेवन करने से स्तन्य वृद्धि होती है।[4]

---

1. नि0सु0पृ0–43 2. कु0सं0–1/40– **अन्योन्युत्पीडयदुत्पलाक्ष्याः स्तनद्वयं पाण्डुतथाप्रवृद्धम। मध्ये यथा श्याममुखस्यतस्य मृणालसूत्रान्तरमप्यलभ्यम्।।** 3. च0सू0अ0–4, क, ख पृष्ठ–20 4. वनौ0विशे0–4,पृ0–82

2. नड्वल (नल) के मूल का क्वाथ स्तन्य (दुग्ध) वृद्धि के लिए दिया जाता है। यह शुक्र दोर्वल्य में भी लाभकर है। दाह शामक भी है। क्वाथ मात्रा 50–100 मिली0, विशिष्टयोग, तृणपंचमूलक्वांथ।[1]
3. अखरोट– गेहूं की सोजी और अखरोट के पत्र समभाग एकत्र पीसकर गाय के घृत में इसकी पूरियां बनाकर नितय लगभग 7 दिन तक खाने से अधिक मात्रा में दुग्ध वृद्धि होती है।[2]

2. स्तन शैथिल्य पर

कफ की अधिकता ही इस रोग को पैदा करता है। अधिक सन्तान होना, स्तनों का बार–बार खींचना आदि ढीला करने मे सहायक हैं।

पाठामहौषध सुरदारुमुस्तमूर्वागुडूचीवत्स

कफलकिरातिक्तकटुरोहिणीशारिवाइति।

दशेमानि स्तन्यशोधनानिमवन्ति।।

पाढ़, सोंठ, देवदारु, मोंथा, मूर्वा, गिलोय, इन्द्रजौ, चिरायता, कुटकी सरिवा (अनंतमूल) ये दशऔषधि स्तन्यशोधक (स्तन के विकारों को नाश करने वाली) हैं।[3]

उपचार–

1. कमल बीजों के चूर्ण को मिश्री मिले हुए दूध के साथ 3–6 माशे तक सेवनन करते रहने से लगभग 3 माह में कुच कठोर हो जाते हैं। सेवन प्रातः सायं दिन में दो बार करना चाहिए तथा मिर्च–मसाला और मैथुन से बचना चाहिए। इससे स्त्रियों का शरीर सबल हो जाता है। बार–बार गर्भ स्राव व गर्भपात नहीं होता है।[4]
2. कमलगट्टा की गिरी का चूर्ण 5–5 ग्राम की मात्रा दही में मिलाकर दोपाहर के समय सेवन करें। निरन्तर 2–3 माह तक प्रयोग करते रहने से क्षीण स्तन पुष्ट हो जाते हैं।[5]

---

1. द्र0गु0वि0अ0–7, पृ0–623
2. वनौ0विशे0–1,पृ0–34
3. च0सू0अ0–4 क,ख,पृष्ठ–20
4. वनौ0विशे0–2,पृ0–118
5. नि0सु0पृ0–37, सेहत और सौन्दर्य विशे0

3. बबूल की फलियाँ कच्चे आम जो बहुत ही छोटे–छोटे हों, इमली की बीजों की गिरि, अनार का छिलका, सभी को सुखाकर बारीक पीस लें तथा इसको प्रतिदिन घी के साथ मिलाकर हलवा बनाकर खायें। इसके उपयोग से स्तन बिल्कुल कठोर तथा सुडौल हो जाते हैं।
4. फिटकरी, कपूर एक–एक तोला अनार का छिलका 3तोला को पीसकर स्तनों परलेप करने से ढीला स्तन कठोर हो जाता है।[1]
5. "गम्भारि के पत्ते का रस व तिल का तेल सम भाग लेकर दूने जल में पाक करें। जब केवल तेल शेष रह जाय तो कपड़े से छानकर शीशी में रख लें। इसे स्तन पर मलें इसे एक ही बार मलने के बाद स्तन लोहे जैसे कड़े हो जायेंगे[2]— **"गम्भीर पत्रनीरं च तत समं तिल तैलकम्।**

समानं जलभागं च दत्वा पाकं समाचरेत्।।

तैलशेषं परिज्ञाय वक्त्रैण शोधयेत् कुचौ।

दिवा प्रलेपनादेव लोहत्वं जायतेऽचिरात्।।

6. प्रथम मासिक स्राव में (पहले दिन). चावल के पानी का नस्य लेने से स्तन स्थिर एवं उन्नत होते हैं।[3]
7. वट के बारीक अग्रभाग के पीले लाल तन्तुओं को पीसकर लेप करते हैं।[4]

(ख) केश सौन्दर्य हेतु प्रयुक्त वनस्पतियाँ (धूपन दृव्य)

1. **केश सुगन्धि हेतु–** अगरू, कालीयक की धूप देकर केश सुगन्धित किये जाते हैं।[5]
2. **सौन्दर्य हेतु–** केश (बाल) काले करने के लिए अशोक कुन्द कुरूषक मल्लिका पुष्पों का प्रयोग होता है।[6]

कुमुद के मूल सहित पंचांग को समभाग लेकर पारद के साथ 7 दिन तक आँवले के स्वरस में खरल कर शरीर पर मर्दन करने से झुर्रियां नष्ट हो जाती

---

1. सफल चि0अनुभवांक (चि0प0), पृ0–94
2. उड्डीशतन्त्रं,पृ0–82
3. चि0प0,वनौ0विशे0–3,पृ0–253.वनौ0विशे0–4 पृ0–477
4.5. शा0नि0पृ018, वनौ0विशे0–1, पृ0–37–39,ऋतु0–4/5, दृष्टव्य
6. मा0मै0र0 उद्धृत वनौ0विशे0–1, पृ0–233

हैं तथा बालों में लगाने से बाल काले हो जाते हैं।[1]

कुसुम्भ– इसके बीज और बबूल की छाल समभाग जलाकर भस्म को चमेली के तेल में मिला बालों की जड़ पर मलते रहने से बाल नरम तथा लम्बे हो जाते हैं।[2]

गुड़हल– ताजे पुष्पों की पंखुड़ियों का रस में समभाग जैतून का तेल मिलाकर मन्द आँचमें पकावें। द्रवांश जल जाने पर शीशे पर रखें। इसे केशों में मर्दन करते रहने से वे अच्छे चमकीले बढ़ते हैं।[3]

तिल– केश वृद्धि हेतु व काला करने हेतु तिल पत्र एवं जड़ के क्वाथ से बाल धोते हैं और इसके तेल का सिर पर अभ्यंग करते हैं।[4]

पारिजात– हरसिंगार (पारिजात) को हेयर टानिक की भांति प्रयोग किया जाता है।

मदार व स्नुहीं– मदार का दूध, स्नुही का दूध, अग्निशिखा (कलिहारी) वत्सनाभ, रक्त घुंघुची इन्द्रायण फल, काली सरसों सम भाग 100–100 ग्राम लेकर काष्ठौषधियों को पीसकर छान लें। बकरी के मूत्र में खूब घुटाई करके कल्क बना लें। सर्वप्रथम तेल को खूब गर्म करके लाल कर लें तब दोनों मूत्र व कल्क को कड़ाही मे डालकर धीमी आँच देते हुए खरपाक विधि से तेल सिद्ध करके नीचे उतार ठंडा करके छान कर सुरक्षित रखें।

मात्रा– यथावश्यक

गुण– यह तेल गंजेपन को नष्ट करता है। जिसकी खोपड़ी कछुआ की पीठ जैसी भी हो तो उसमें भी बाल उग आते हैं।[5]

गुड़हल के फूल और भृंगराज समभाग लेकर कच्चे दूध के साथ भली प्रकार पीसें फिर एक लोहे के पात्र में रखकर जमीन (भूमि) मे गाड़ दें। एक सप्ताह बाद निकाल लें। इसे रात्रि में सोने से पहले बालों मे लगाकर सोया करें। कुछ ही दिनों में बाल काले हो जायेंगे।

1,2 वनौ0विशे0–1,पृ0–244, 347 4 द्र0गु0वि0आ0–2,पृ0–122 5 चि0प0सफल चि0आ0पृ0–55

वट– बरगद की पत्तों को अलसी के तेल मे भूनकर (या पत्तों की भष्म को अलसी तेल में मिलाकर) मलते रहने से सिर के बाल उग आते हैं।

केश विकार (केशों का श्वेत होना, झड़ना आदि) पर इसके कोमल पत्तों को जल मे धोकर साफ कर पीसकर रस निचोड़ लें। जितना रस हो उसके समभाग सरसों का शुद्ध तेल मिला मन्द आँच पर पकावें। तेल मात्र शेष रहने पर बातलों पर भरकर रखें। इसे लगाते रहने से केशों के सभी विकार दूर हो जाते हैं।[1]

सुपाड़ी– सुपाड़ी के पत्ते के रस में उत्तम गन्धक पीसकर रोम स्थान पर लगाकर और धूप दिखाने से रोम साफ हो जाते हैं।[2]

''पूंगपत्रौत्थनी रेण पिष्ट वा गन्धकमुत्तमम्।

तेन लिप्ते स्थिते धर्मे रोमखडनमुन्तमम्।।

पलाश पत्र– पलाश पत्र की भस्म तथा हरताल की भस्म को केले के रस मे मिलाकर रोम स्थान पर लग देने से बाल साफ हो जाते हैं और फिर कभी नहीं उगते हैं।[3]

नारियल:– केशों के लिए उत्तम, सिर के बालों के लिए शुद्ध नारियल तैल (हेयर आयल) सबसे अच्छा होता है। स्नान बाद बालों को अच्छी तरह सुखाकर बालों की जड़ों में नारियल का तैल लगाकर 5–6 मिनट तक मालिश करना चाहिए। इस प्रयोग से बाल घने लम्बे व काले बने रहते हैं।

सौन्दर्य के लिए तेल[4]

सौन्दर्य प्रसाधनों में तेल आवश्यक आधार स्तम्भ है। तिल, नारियल, मूंगफली तेल निर्मित किए जाते हैं। ये वसा के उत्तम साधन हैं।

किसी भी तेल की मालिश नहाने से पूर्व करने से त्वचा कांतिमय एवं मजबूत होती है। इससे शरीर मोटापे या थुलथुलेपन से मुक्त होकर चुस्त–दुरुस्त बना रहता है। कुछ प्रमुख तेल निम्नवत् हैं–

---

1. वनौ0विशे0–4,पृ0–476
2. उड्डीशतन्त्रं–श्री यशपाल,पृ0–84
3. उड्डीशतन्त्रं,पृ0–83
4. नि0सु0,पृ0–57

तिल का तेल

शीत ऋतु की त्वचा में उत्पन्न खुश्की, प्रातः नित्य तिल के तेल की मालिस से दूर हो जाती है। त्वचा कोमल कान्तिमय हो जाती है तथा स्तनों का ढीलापन सौन्दर्य को कम करता है। कसाव लाने के लिए अनार के पत्तों का 500 ग्राम रस, 700 ग्राम तिल का तेल धीमी आंच मे पकाए जब तेल भर शेष रह जाये तब छानकर बोतल में रख दें। इस तेल को दिन में दो–तीन बार स्तनों पर मालिस करें। धीरे–धीरे स्तनों के सौन्दर्य में वृद्धि के साथ कड़ापन आ जायेगा ।

नारियल का तेल

नारियल के तेल में जरा सा कपूर व एक नीबू का रस मिलाकर उससे बालों की मालिश करें। रात भर बालों मे लगा रहने दें एवं सबेरे सिर धो दें। इससे रूसी नष्ट होती है। साथ ही बालों को सुन्दर तथा आकर्षक बनाने के लिए नारियल के तेल की मालिश खोपड़ी की त्वचा पर करें। तत्पश्चपात् गर्म जल में तौलिया भिगोकर सिर पर लपेट कर कुछ समय के लिए छोंड़ दें। फिर शैंपू करे। नारियल तेल मे दो नीबुओं का रस मिलाकर पकायें, गाढ़ा होने पर रख लें। इसे खुजली वाले स्थान पर लगाने से खुजली नहीं होती है।

महासुगन्धतैलम्[1]

चन्दन, केशरि, खस, प्रिपंगु, तुनि, गोरोचन, शिहोर, अगर, कस्तूरी, कपूर, जावित्री, जायफल, कङ्गोल, चिकनी सुपारी लौंग के फल, जटा आदि के द्वारा महासुगन्ध तैल का निर्माण किया जाता है, जो सभी प्रकार के त्वचा रोगों मे लाभप्रद है–

चन्दनोकुड्कमोशीर प्रियङ्गस्तु निरोचना।

तुरुष्कगुरुकस्तूर्य्यः कर्पूरो जातिपत्रिका।।

जातीकड्कोलपूगाानां लवङ्गस्य फलानिच..........।।

चमेली का तेल

चमेली का तेल 100ग्राम, कर्पूर के दो टुकड़े डाल कर रखें। घुलने पर तेल की

---

1. वै0द0पु0 371

मालिश करने से खुजली विकार से राहत मिलती है। सूखे आंवले के चूर्ण को चमेली के तेल में मिश्रित कर लगायें। पुरानी से पुरानी खुजली नष्ट होती है।

कपास के बीज का तेल

अखरोट की हरी छाल 10ग्राम, सफेद फिटकरी 2 ग्राम तथा बिनौले (कपास के बीज) का तेल 250ग्राम सफेद को मिलाकर किसी बर्तन में डालकर उबालें। जब अखरोट की छाल का सब पानी जल जाय, तब उतार कर छान लें। इस तेल को लगाने से सफेद बाल काले होने लगते हैं।

(ग) मुख-शोधन

मुख शुद्ध करने में प्रयुक्त एवं मुख दुर्गन्ध नाशक वनस्पतियाँ मुख शोधक कहलाती हैं। दातून करने से मुख की दुर्गन्ध, मुख की विरसता और जिह्वा, दांत तथा मुख मैल बाहर निकल जाने से रुचि उत्पन्न होती है। दांतन करने का कंजा, कनेर, आक, मालती, कोह और विजेसार तथा इसी प्रकार के अन्य वृक्षों की लकड़ी उत्तम कही गई है।[1] मुख की विशदता (लिवलिवाहट) दूर करने एवं मुख सुगन्धि के लिए महर्षि चरकाचार्य जी ने चरक संहिता सूत्रस्थानम् अध्याय–5 में बताया है–

''धार्य्यान्यायस्येन वैशद्यरुचिसौगन्ध्यमिच्छता।

जातीकटुकपूगानां लवङ्गस्य फलानि च।।

कक्कोलक फलं पत्रंताम्बूलस्यशुभं तथा।

तथा कर्पूर निर्य्यासः सूक्ष्मैलायाः फलानिच।।24।।

जो प्राणी मुख की विशदता (लिवलिवाटपना रहित) रुचि और सुगन्धि की इच्छा करे वह जायफल, लता, कस्तूरी, सुपाड़ी, लौंग, कंकोल और शुद्ध तांबुल पत्र (पान) कर्पूर और छोटी इलायची को मुख में धारण करें।

उक्त के अतिरिक्त मुख शुद्धि हेतु अखरोट वृक्ष की छाल को मुँख में रखकर चबाने से दाँत स्वच्छ होते हैं तथा मुख शुद्धि होती है।[2]

---

1. करञ्जकरवीरार्क मालतीककुभासनाः। शस्यन्ते दन्तपवनेयेचाप्येवंविधाद्रुमाः।–च0सू0अ0–5/23   2.वनौ0विशे0–1,पृ0–24

कण्ठ सुरीला एवं मधुर आवाज योग

असली अकरकरा 20 ग्राम, वंशलोचन असली 40 ग्राम, छोटी इलाइची के दाने 80 ग्राम, कुलिंजन 60ग्राम तथा मुलहठी का चूर्ण 100 ग्राम लेकर सबको अलग–अलग खूब महीन पीसकर रख लें। वंशलोचन (असली) को विशेष रूप से मैदे की तरह पीसना चाहिये सभी चूर्णों को 250 ग्राम या बराबर मात्रा में असली शहद मिलाकर अवलेह तैयार कर लें। एक छोटा चम्मच दिन में तीन बार लेकर चाट लें। इसके बाद 15 मिनट तक कुछ न खाएं पियें तो सुरीला व आवाज मधुर हो जाती है।

(घ) आभरणोपयोगी

"श्रृङ्गारेण रागः" "श्रृङ्गार करने से प्रेम बढ़ता है।" अच्छे सौन्दर्य एवं आकर्षण के लिए आभरण धारण करना भी महत्वपूर्ण है, क्योंकि–

''नगरीनगरस्येव रथस्येवरथींसदा।

स्वशरीरस्य मेधावीं कृत्येष्ववहितो भवेत्।। 39।।

जैसे नगर की रक्षा नगर का रक्षक करता है, जैसे रथ के कार्य को रथी करता है उसी प्रकार बुद्धिमान प्राणी अपने देंह के कार्यों में सदैव सावधान रहे।[1]

ब्रीडा चेत्किमु भूषणैः यदि लज्जा है तो आभूषण की क्या आवश्यकता? श्रेष्ठ आभूषण व्यक्ति के गुण होते हैं, यथा भर्तृहरि[2] ने लिखा है–**'शीलं परं भूषणम्'** सदाचार सभी का आभूषण है। अतः वास्तविक आभूषण व्यक्ति द्वारा किया गया आचरण है। व्यक्ति सदाचरण से स्वतः सौन्दर्य प्राप्त करता है एवं स्वस्थ्य भी रहता है। स्त्रियों में चार प्रकार के मण्डन होते हैं–

कचधार्यः देहधार्यः परिधेयं विलेपनम्।

चतुर्धा भूषणं प्राहुः स्त्रीणां मन्मथ देशिकम्।।

उक्त चारों मण्डनों में महाकवि कालिदास जी[3] ने सौन्दर्य वृद्धिकारक वनस्पतियों का उल्लेख किया है वे इस प्रकार हैं –

अशोक, पिपङ्गुलता, प्रियाल मञ्जरी, विसतन्तु केतकी कर्णिकार, कोविदार,

---

1. च0सू0अ0–5/39
2. नीतिशतकम्,श्लोक–21,83
3. दृष्टव्य– उ0मे0श्लोक–11, कु0सं0,पार्वती श्रृंगार, रघु0 इन्दुमती सौन्दर्य, अभि0शा0 शकुन्तला का श्रृंगार वर्णन

कुसुम्भी, चम्पा, जपा, दुपहरिया, मौलसिरी कुमुद, कमल नीप वासन्ती शेफालिका पुष्प आदि।

इन वनस्पतियों का उल्लेख मेरे द्वारा अध्याय 3, 4, 5 में किया जा चुका है। अतः विस्तार भय से पुनः वर्णन नहीं कर रहा हूँ।

स्वस्थवृत्त और सद्वृत्त द्वारा सौन्दर्य की प्राप्ति

आयुर्वेदिक ग्रन्थकारों ने दैनिक कार्यों में आँखों में अंजन, दातून, स्नान, अभ्यंग, धूमपान, तैल, नस्य, जूता–छाता धारण, निर्मल वस्त्र धारण व्यायाम आदि कार्यों का महत्व तथा इनके करने का लाभ बताया है।[1] त्रिदोष साम्यता व्यायाम, मर्दन एवं स्नान से होती है। अतः ये कार्य हमें स्वस्थ्य रखते हैं, यथा अग्निपुराण में कहा गया है–

''व्यायमश्च कफं हन्याद्वातं हन्याञ्च मर्दनम्

स्नानं पित्ताधिकं हन्यात्तस्यान्ते चातपाः प्रियाः।

आतपक्लेश कर्मादौक्षेमव्यायामिना नराः।।

व्यायाम, मर्दन, स्नान से क्रमशः कफ, वात, पित्तविकार दूर होते हैं।[2]

सद्वृत्त के अन्दर वैयक्तिक सामाजिक, पारिवारिक सभी प्रकार की शिक्षा संक्षेप में अत्रिपुत्र ने दी है।[3] इस शास्त्र में शरीर इन्द्रिय मन और आत्मा चारो के संयोग को आयु कहा गया है। इसलिए इन चारों को स्वस्थ रखने के सम्बन्ध में निर्देश दिया गया है। यही विशेषता सौन्दर्य शास्त्र की है। चरक का सद्ववृत्त उपदेश अनूठा है।[4] आहार निद्रा और ब्रह्मचर्य ये तीनों शरीर को धारण करने वाले हैं। 'जो मनुष्य हितकारी आहार विकार का सेवन करता है, सोंच–विचार कर कर्म करता है, विषयों में नहीं फँसता, दान देता है, सबमे समबुद्धि रखता है, सत्यवादी क्षमाशील विद्वानों की उपासना करता है। वह निरोगी रहता है। जो बुद्धि वाणी कर्म से सुखदायक कार्यो को करता है, जिसका मन वश में है और बुद्धि निमल है, ज्ञान तप तथा योग में जो लगा है वह सदा स्वस्थ रहता है।'[5] एवं इस प्रकार का व्यक्ति ही वास्तविक सौन्दर्य को प्राप्त करता है–

---

1. च0सं0सू0अ0–5
2. अ0पु0अ0–281/32,33,पृ0–416
3. आ0का0वृ0इति0पृ0–432
4. सु0चि0अ0–24, च0सू0अ0–5, 6, 7, 8,दृष्टव्य
5. आ0 का वृ0इति0,पृ0–532

''नरो हिताहार विहारसेवी, समीक्ष्यकारी विषयेष्वक्तः।

दाता समः सत्य परः, क्षमावानाप्तोपसेवी च भवत्यरोगः।

मतिर्वचः कर्मसखानुवन्धं सत्वं विधेयं विशदा च बुद्धिः।

ज्ञानतमस्तत्परता चयोगेयस्यास्ति तं नानुतपन्ति रोगाः।''

यही बात भगवान श्री कृष्ण ने गीता में कही है–

''युक्ताहार विहारस्य युक्त चेष्टस्य कर्मसु।

युक्त स्वप्नावबोधस्य योगोभवति दुःखहा।।''[1]

''दुःखों का नाश करने वाला योग तो यथा योग्य आहार–विहार करने वाले का, कर्मों मे यथा योग्य चेष्टा करने वालों का और यथा योग्य सोने तथा जागने वालों का ही सिद्ध होता है।''

व्यक्ति के स्वस्थ, सुन्दर रहने में उसके भाव मुख्य होते हैं, यथा नीतिशास्त्र में कहा गया है– **'' देव द्विजे यथा मंत्रे, दैवज्ञे भैषजे गुरौ।**

यादृशी भावनायस्य, सिद्धिर्भवति तादृशी।।

खाद्यरूप में प्रस्तुत वनस्पतियाँ

कोई भी पदार्थ जब अन्न मार्ग से ग्रहण किये जाने पर जीवनी शक्ति उत्पन्न करे, धातुओं का पोषण करे, उनकी रक्षा तथा क्षतिपूर्ति करे, जीवन की प्रक्रिया को संयमित करे तथा शरीर के महत्वपूर्ण अंशाशों की उत्पत्ति में सहायक हो, उसे आहार कहते हैं। प्रत्येक व्यक्ति के लिए देश, काल, वय आदि के आधार पर आहार विधि तथा मात्रा आदि का निर्णय करना चाहिए।

चरक संहिता में मानव शरीर एवं व्याधि दोनों को आहार संभव माना है– **'आहार संभवं वस्तु रोगाश्चाहार सम्भवाः'** अन्न को प्राणियों का प्राण कहा गया है– **प्राणाः प्राण भृतामन्नमन्नम्**[2] आहार से बल वर्ण तथा ओजस् की प्राप्ति होती है।

''आहारः प्रीणनः सद्यो बलकृद्देहधारकः।

आयुस्तेजः समुत्साहस्मृत्योजोग्नि विवर्धनः।।[3]

1. च0सू0–28/45 2. च0सू0–27 एवं श्रीमद् भगवत गीता अ0–3/14, 15 3. सु0चि0अ0–24/68

अतः आहार स्वस्थ तथा रोगी दोनों के लिए समान रूप से महत्वपूर्ण है, क्योंकि समुचित आहार के बिना स्वस्थ व्यक्ति स्वस्थ नहीं रह सकता और बिना उचित पथ्य–व्यवस्था के रोगी में चिकित्सा कर्म सफल नहीं हो सकता[1]–

''पथ्ये सति गदार्तस्य किं औषध निषेवणैः।

पथ्येऽसति गदार्तस्य किं औषध निषेवणैः।।

क्योंकि 'A Preson is what he eats.' पोषण की दृष्टि से आहार दृव्य में छः प्रकार के पदार्थ होते हैं। इन्हें पोषक तत्व कहते हैं इन्हें आधुनिक भाषा में Proximal principal of food भी कहा जाता है। वस्तुतः इनका वर्गीकरण उन–उन पोषक तत्वों एवं शरीर क्रियात्मक प्रभावों की दृष्टि से किया जाता है। ये छः तत्व निम्न हैं[2]–

1. **कार्बोज** (Carbohydrates, Starch and Sugarrs)
2. **वसा** (Fats- Animal and Vegetale Oils)
3. **प्रतनक** (Protiens – Animals and Vegetable)
4. **खनिज पदार्थ** (Mineral Salts)
5. **जीवनी तत्त्व** (Vitamines)

गेहूं, जौ, चावल आदि में कार्बोज, तिल सरसों में वसा, शैवाल, कचनार, बिम्बाफल आदि प्रतनक एवं विभिन्न फलों अखरोट आम्र, इङ्गुदी जम्बू, द्राक्षा, प्रियाल, रम्भा इत्यादि में जीवनी तत्त्व पाया जाता है।

इस प्रकार महाकवि कालिदास ने एक सन्तुलित आहार वाली वनस्पतियों का वर्णन किया है। यजुर्वेद मे भी 'वायु ऋषि ने श्रेष्ठ अन्न का सेवन करो'। ऐसा कहा है–

'अन्नपतेऽन्नस्य नो देह्यनमीवस्य शुष्मिणः।

प्रप्र दातारं तारिष उर्जनो धेहि द्विपदे चतुष्पदे।।

मनुष्यों को चाहिए कि सदैव बलकारी आरोग्य अन्न आप सेवें और दूसरे को देवें। मनुष्य तथा पशुओं के सुख और बल बढ़ावें जिससे ईश्वर के सृष्टिक्रम अनुकूल आचरण से सबके सुखों की सदा उन्नति होवे।[3]

---

1. वै०जी०–1/10 2. स्व०वृ०वि०,पृ०–112 3. यजु०–11/83, उद्धृत यजु०श०, पृ०–29

कवि कुलगुरू ने गेहूं चावल जौ इन तीन खाद्य पदार्थों अन्नों का वर्णन मुख्यतः विभिन्न रूपों में किया है। ये अन्य कार्बोहाइड्रेट (ग्लूकोज) प्रदान करने वाले हैं। इसी कारण अथर्ववेद में भी कहा गया है–

''शिवौ ते स्तां ब्रीहि यवावबलासावदोमघौ।

एतो यक्ष्मं वि बाघेते एतौ मुञ्चतो अहं सः।।[1]

मनुष्यों को चावल और जौ आदि सात्विक अन्न का भोजन प्रसन्न होकर करना चाहिए, जो कि पुष्टिकारक है।

आहार दृव्य परीक्षा[2]

आचार्य चरक ने किसी नवीन दृव्य के सेवन के पूर्व निम्नलिखित भावों की परीक्षा करने का उपदेश किया है। यह प्रसंग मुख्यतः मांसवर्ग की परीक्षा से संबन्धित है। इस प्रसंग में कहे गया परीक्षा भाव हैं–

1. **चर** (Animals Food and Habitat)
2. **शरीर के अवयव** (Body Parts)
3. **स्वभाव** (Constitution)
4. **धातुएं** (Body Tissues)
5. **क्रिया** (Activity)
6. **लिङ्ग** (Sex)
7. **प्रमाण** (Size)
8. **संस्कार** (Preparation)
9. **मात्रा** (Measure)

द्वादश अहार वर्ग

चरक संहिता में आहार दृव्यों को बारह वर्गों में विभाजित किया गया है और उनके माध्यम से तत्कालीन दृव्यों का स्वरूप वर्णन किया गया है। महाकवि कालिदास द्वारा उल्लिखित उपलब्ध आहार दृव्यों का भी इन वर्गों में समावेश किया जा

---

1. अथर्ववेद शतक– 8/2/18, पृ0–48
2. चरः शरीरावयवा स्व मावो धातवः क्रिया। लिङ्ग प्रमाणं संस्कारो मात्रा चास्मिन परीक्ष्यते।। च0सू0–27/33

सकता है। चरकोक्त आहार वर्ग निम्नवत् है–

1. **शूकधान्य वर्ग** (Corns) 2. **शमीधान्य वर्ग** (Pulses)

3. **मांस वर्ग** (Meat) 4. **शाक वर्ग** (Vegetables)

5. **फल वर्ग** (Fruits) 6. **हरित वर्ग** (Greens)

7. **मद्य वर्ग** (Wines) 8. **अम्बु वर्ग** (Water)

9. **गोरस वर्ग** (Milk & Milk Products) 10. **कृतान्न वर्ग** (Coocked foods)

11. **इक्षु वर्ग** (Sugarcane & Products) 12. **आहार योनि**(FoodAdjuvants)

कवि की रचनाओं में प्राप्त आहार योग्य वनस्पतियों को हम इन वर्गों में रख सकते हैं :–

अन्न वर्ग (Cireals)

चावल (कलम), नीवार, गोधूम (गेहू), जौ, श्यामाक, शालि आदि प्रमुख अनाज शूक धान्य हैं जिनका हमारे देश में आहार के रूप में प्रयोग होता है ये ऊर्जा के प्रमुख स्रोत हैं। लगभग 3/4 ऊर्जा हम इन्हीं से प्राप्त करते हैं। अन्न वर्ग के दृव्यों में प्रमुख घटक कार्बोज (Corbohydrate) होता है। इनके ऊपरी सतह पर विटामिन 'बी' पायी जाती है। एक वर्ष पुराने अन्न का सेवन उचित है।[1]

फल वर्ग (Fruits)

कदली, खर्जूर, द्राक्षा, जम्बू, आम्र, दाडिम (अनार) अखरोट, नारियल इत्यादि फल हैं। फलों का वैशिष्ट्य उनमें उपस्थित विटामिन तथा खनिज लवणों की प्रचुरता से होती है। सदा अच्छे पके फल ही लेना चाहिए।[2] कच्चे या आवश्यकता से अधिक पके, सड़े एवं गले फल कभी नहीं लेना चाहिए यथा सुश्रुत जी ने लिखा है– **''व्याधितंकृतिजुष्टंचपाकातीतमकालजम्।**

वर्जनीयं फलं सर्वमपर्यागतमेव च ।।[3]

---

1. च०सू०–27, स्व०वृ०वि०,पृ०–128, 129 2. च०स०–27/312 3. सु०सू०–46

शुष्कफल तथा तिलहन[1]

अखरोट, चिरौजी, नारियल आदि नटवर्गीय पदार्थों का प्रयोग प्रायः होता है। अतः ये ऊर्जा उत्पादक द्रव्य माने जाते हैं। तिल सर्षप आदि तिलहन भी खाद्य पदार्थ हैं और इनसे प्राप्त तेल खाने के काम आता है।

इक्षु वर्ग (Sugars)[2]

चीनी, गुड़, ग्लूकोज आदि इक्षु वर्गीय पदार्थ हैं। इक्षु (गन्ने) का भी वर्णन कवि ने यत्र–तत्र किया है। इनमे साक्षात , कार्बोज होता है, जो ऊर्जा उत्पादन का उत्तम स्रोत है।

सन्तुलित आहार लेना चाहिए क्योंकि विषम भोजन से अनेकों व्याधियाँ उत्पन्न होती हैं। यथा हीन मात्रा में किया गया भोजन असन्तोष एवं बलक्षय का कारण बनता है। यह सभी प्रकार के रोगों का कारण बनता है[3]–

''हीन मात्रमृसन्तोषं करोति च बलक्षयम्।

आलस्यगोंरवाटोपसादांश्च कुरुतेऽधिकम्।।

अच्छी प्रकार से सदैव भोजन करना चाहिए। जितना उचित हों समुचित आहार से व्यक्ति स्वस्थ रहता है–

''तुष्टिः पुष्टिर्वलं मेधा सर्वमन्ने प्रतिष्ठितम्।

लौकिकं कर्म यद्वृत्तौ स्वर्गतौ यच्च वैदिकम्।।[4]

1. सु0सं0उद्धृत–स्व0वृ0वि0,पृ0–130
2. स्व0वृ0वि0,पृ0–130
3. सु0सं0उद्धृत–स्व0वृ0वि0,पृ0–122
4. च0सू0अ0–27

अध्याय

८

उल्लिखित वनस्पतियों का आलोचनात्मक अध्ययन

अध्याय–8

उल्लिखित वनस्पतियों का आलोचनात्मक, अध्ययन

आधुनिक विकासशील वैज्ञानिक युग में आयुर्वेद चिकित्सा की ओर विश्व की आशा भरी दृष्टि लगी हुई है। इस दिशा में विश्व स्वास्थ्य संगठन ने आयुर्वेद द्रव्यों के महत्त्व को स्वीकार करते हुए योजनावद्ध अनुसंधन कार्य करने की अपनी संस्तुति प्रदान की है।

ब्रह्म वेद नाम से अलंकृत, चिकित्सा शास्त्र का मूल स्रोत अथर्ववेद की प्रसिद्धि भृग्वाङ्गिरस और अथर्वाङ्गिरस के रूप में रही है। भैषज से ब्रह्म प्राप्ति के मार्ग को पुष्टि करते हुए गोपथ ब्राह्मण में यहाँ तक कहा गया है कि[1]–

'एतद् वै भूयिष्ठं ब्रह्म यद् भृग्वाङ्गिरसः।

येऽङ्गिरसः सरसः येऽथर्वाणस्तद्भेषजम्।

यद्भेषजं तद् अमृतम्। यद् अमृतं तद् ब्रह्म।।

लगभग यही बात अथर्ववेद मे भी बताई गयी हैः–

''संसार की सब औषधियों मे क्लेशनाशक और रोग निवर्तक शक्ति को देने वाला वही औषधियों का औषधि परब्रह्म है।

सम्भवतः इसी लक्ष्य को ध्यान मे रखते हुए आरोग्य लाभ से ब्रह्म तत्त्व की प्राप्ति तक के मार्ग को प्रशस्त करने के लिए वनस्पतियों को आधार बनाया गया। ये वनस्पतियाँ समस्त जीवन मात्र के व्यवहारिक उपादेयता के कारण लोक में प्रतिष्ठित हुई।

वैदिक वाङ्गमय में औषधियों की स्तुति का अनेक स्थलों पर उल्लेख मिलता है।[2] वृक्ष औषधियों के प्रमुख स्रोत हैं इसी कारण ऋग्वेद में हरे वृक्ष काटने का निषेध किया गया है[3]– **मा काकम्बीरमुद्वहो, वनस्पतिमशस्तीर्विहिनीनशः।**

मोत सूरो अहएवाचन ग्रीवा आदधते वेः।।

हे विद्वन्! आप (काकम्बीरम्) कौओं की पुष्टि करने वाले (वनस्पतिम्) वटादि वृक्ष

---

1. गो०ब्रा०–1/3/4 एवं अथर्व०–2/3/2 ,पृ०–3 2. साम०–11, 397, 1839, 1841, यजु०–4/57/3, पृ०–65

3. ऋ०सं०–6/48/17, पृ०–86

को (मा उत् वृहः) मत उच्छिन्न करो तथा (अशस्तीः) और अप्रशंसित (हि) ही कर्मों को (विनीनशः) विशेषता से निरन्तर नाश करो और (सूरः) सूर्य (अहःएवा) दिन में ही जैसे (वेः) पक्षी के (ग्रीवाः) कण्ठों को (चन) निश्चय से (आदधते) अच्छे प्रकार धारण करते हैं। वैसे (उत) तो हम लोगों को (मा) मत पीड़ा दो।

उपनिषदों में देवता को अग्नि, जल, अन्न एवं औषधि वनस्पति सभी में माना गया है :–

''यो देवो अग्नौ, यो अप्सु यो विश्वं भुवनमाविवेश।

या औषधींषु वनस्पतिषु तस्मै देवाय नमो नमः।।

''जो देव औषधियों, वनस्पतियों में है उस देवता के लिए नमस्कार है।[1] वैदिक कालीन प्राणी प्रकृति के अत्यन्त निकट होने के कारण वनस्पतियों के उपयोग में क्रमशः प्रवृत्त होने लगा। दैनिक आहार और औषध रूप में ये वनस्पतियाँ प्रयोग में आने लगीं। इन वनस्पतियों का वर्गीकरण हुआ। औद्भिद द्रव्य चार वर्गों में विभजित हुए[2]:–

1. वनस्पति 2.वानस्पत्य 3.विरुद 4. औषधि

वेदों में इन वानस्पतिक द्रव्यों का जनक अन्तरिक्ष जननी पृथ्वी तथा समुद्र में इसका मूल माना गया है।[3] चरक संहितानुसार द्रव्य तीन प्रकार के होते हैं–

1. जङ्गम (प्राणिज)– चर्म, रुधिर, लोम, बाल आदि
2. स्थावर (औद्भिद)
3. पार्थिव (पृथ्वी संबन्धी)– चाँदी धातुएं आदि।

स्थावर द्रव्य के चार भेद होते हैं–

''वनस्पतिं वीरुधश्चवानस्पत्यस्तयौषधिः।।[4]

1. **वनस्पति– फलैवनस्पतिः** इसमें केवल फल होता है, जैसे– बड़, पीपर, गूलर आदि।
2. **वानस्पत्यः– 'पुष्पैर्वानस्पत्यः फलैरपि'** अर्थात् इसमें फूल, फल दोनों होते हैं, जैसे– आम, जामुन, नीम आदि।

---

1. श्वेताश्वतोपनिषद् अ0–2/17
2. शौ0–11/8/25
3. शौ0–8/7/2
4. च0सू0अ0–1/41
5. च0सू0अ0–1/42

3. **औषधिः–** **'औषध्यः फलपाकान्तः'** औषधि सम्पूर्ण फलपाकांत होती है। अर्थात् फल पकते ही नष्ट हो जाती है। जैसे– गेहूँ, जौ, धान (चावल)। इनमें सोलह प्रकार की औषधि मूलप्रधान तथा उन्नीस प्रकार की फल प्रधान होती है।[1]

4. **वीरुध –** **''प्रतानै वीरुधःस्मृताः''** लता सम्पूर्ण प्रतानयुक्त (फैलने वाली) होती है। जैसे– कुंदुरू की बेल।

कवि ने सभी प्रकार के स्थावर वनस्पतियों का उल्लेख किया है। चरकाचार्य इत्यादि आयुर्वेदिक वैज्ञानिकों के अनुसार वनस्पति शब्द संकुचित क्षेत्र में प्रयुक्त हुआ है किन्तु आज इस शब्द का क्षेत्र वृहत्त है। इसके अन्तर्गत सम्पूर्ण वृक्ष, लतायें आती हैं। प्रस्तुत शोध ग्रन्थ में भी यही अर्थ लेकर शोध–कार्य किया गया है।

प्रस्तुत अध्याय में उल्लिखित वनस्पतियों का अध्ययन क्रमशः इस प्रकार है–

1. द्रव्य गुणों के अनुसार
2. निघण्टुओं के अनुसार
3. आधुनिक विज्ञान
4. कवि द्वारा किये गये वर्णनों के अनुसार

1. द्रव्य गुणों के अनुसार वर्गीकरणः–

प्रस्तुत अध्याय के विवरण के प्राचीन शैली को सुरक्षित रखते हुए आधुनिक विज्ञान द्वारा उपलब्ध ज्ञान का यथा सम्भव पूर्ण उपयोग किया गया है। प्राचीन विद्वानों ने द्रव्यों का कर्मत्माक वर्गीकरण किया था। और चिकित्सक समाज अभी तक उससे लाभ उठाता चला आ रहा है। चिकित्सकीय दृष्टि से औद्भिद द्रव्यों का वानस्पतिक कुलानुसार वर्गीकरण इतना उपयोगी नहीं जितना कर्मानुसार वर्गीकरण है, क्योंकि इस क्रम में चिकित्सकीय द्रव्यों का तुलनात्मक विवेचन करने के बाद कर्मोपयोगी आवश्यक द्रव्य का चुनाव आसानी से किया जा सकता है। अतः औद्भिद द्रव्यों के वर्णन में मैंने यही क्रम रखा है और यह ध्यान रखा गया है कि द्रव्यों के परिचयात्मक, सैद्धान्तिक और प्रायोगिक यह तीनों पक्ष स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त हों। च0सं0सू0अ0–4, द्र0गु0वि0, भावप्रकाश, सु0सू0–46 आदि ग्रन्थों के अनुशीलन पश्चात् वर्गीकरण इस प्रकार है–

1. च0सू0अ0–1/42

मेध्य	–	शंखपुष्पी, ज्योतिष्मती
वेदनास्थापन	–	कादम्ब, पद्मक, वेतस, जल वेतस, देवदारु
आक्षेप शमन	–	भूर्जपत्र
स्वेदापनयनय	–	उशीर
केश्य	–	नारिकेल, तिल
स्नोंहोपग	–	द्राक्षा
वर्ण्य	–	कुङ्कुम, केतक
कण्डूघ्न	–	सर्षप, निम्ब
उदर्द प्रशमन	–	प्रियाल
हृद्य	–	अर्जुन, ताम्बूल, कर्पूर
रक्तभार शामक	–	रुद्राक्ष
शोथहर	–	पाटला
गण्डमालानाशक	–	काञ्चनार
छेंदन (श्लेष्महर)	–	लवंग, तालीश
श्लेष्मपूतिहर	–	सरल
दंतदार्ढ्यकर	–	वकुल
रोचन	–	दाडिम, जम्बीर
पाचन	–	मुस्तक
वमन	–	मदनफल
विष्टम्भी	–	लखुच
आमहर (उपषोषण)	–	कुटज, श्योनाक
स्तम्भन	–	शमी, आकाशवल्ली
पुरीष विरजनीय	–	शल्लकी, शाल्मली
कृमिघ्न	–	पलाश, इङ्गुदी
यकृत पर कर्म करने वाले द्रव्य	–	दारुहरिद्रा, अपामार्ग, पारिजात
प्रजा स्थापन	–	दूर्वा, कमल, कुमुद, कशेरुक

गर्भरोधक	—	जपा.
आर्त्तवजनन	—	वंश
आर्त्तव संग्रहणीय	—	लोघ्र. अशोक
स्तन्यजनन	—	नल
स्तन्य संग्रहणीय	—	मल्लिका
मूत्र विरेचनीय	—	कुश, काश, शर, इक्षु
अश्मरीभेदन	—	पाषाणभेद
मूत्र संग्रहणीय	—	जम्बू, आम्र, वट, उदुम्बर, अश्वत्थप्लक्ष, शाल.सर्ज
विषम ज्वरघ्न	—	सप्तपर्ण
दाह प्रशमन	—	उत्पल. चन्दन. रक्त चन्दन. एला. चम्पक. शैवाल. शैलेय
शीत प्रशमन	—	अगरू, वृहदेला, समुद्रनारिकेल (दरियाई नारियल)
विषघ्न	—	शिरीष
रक्तस्तंभन	—	प्रियङ्गु, नागकेशर
वृहंण (थकावट ,क्षय शोष)	—	खर्जूर, मधूक,
अंगमर्द प्रशमन	—	शालपर्णी

औषधियों का आधुनिक वर्गीकरण[1]

किसी रोग के अभिज्ञान, रोकथाम, आराम पहुँचाने अथवा उपयोग में आने वाला पदार्थ औषधि कहलाता है। शायद इसी कारण महाभारत में कहा गया है–

''व्याधिना औषधं पथ्यं नीरुजस्य किं औषधम्?''

1. रसा0वि0,लेखक–चन्द्रशेखर शुक्ला, पृ0–37, 38

औषधियों के स्रोत

औषधियों के प्रमुख 4 स्रोत हैं–

1. **खनिज** (Minerals) 2. **वनस्पति** (Plants)

3. **जन्तु** (Animals) 4. **कृतिमरसायन** (Synthetic Chemistry)

गुणों के आधार पर औषधियों को निम्नलिखित वर्गों में विभाजित किया गया है–

1. **प्रतिजैविक** (Anti biotious) 2. **ज्वरनाशी** (Anti Pyretics)

3. **पूर्तिरोधी** (Anti Seplics) 4. **सल्फाड्रक्स** (Sulphadruges)

5. **निश्चेतक** (Anacstkelics) 6. **निद्राकारी** (Sedative)

7. **ऐन्टीमलेरियल** (Anti Malerial)

8. **दर्दनाशक** (Analgesic) 9. **जर्मनाशक** (Germicide)

10. **एन्टीडिप्रेशनस** (Anti Depresions)

11. **प्रशान्तक** (Tranquilizers)

निघण्टुओं के अनुसार वर्णित वनस्पतियों का वर्गीकरण[1]

निघण्टु ग्रन्थों के ज्ञान, बिना वैद्य तथा व्याकरण बिना विद्वान, अनभ्यास से धनुष ये तीनों हास्य का कारण होती हैं–

''निघण्टुना विना वैद्यो, विद्वान व्याकरणं बिना।

अनभ्यासेन धानुष्कस्त्रयों हास्यस्य भाजनम्।।

महाकवि द्वारा उल्लिखित वनस्पतियों को राज निघण्टु के अनुसार निम्न वर्गों में रख सकते हैं:–

1. **गुड्च्यादि वर्ग–** कमलिनी, कमल, अपराजिता (स्वेत पुष्पी, नील पुष्पी)

2. **शताह्वादि वर्ग–** सिन्दुवार, शेफाली, शालिपर्णी, कुशुम्भ

3. **पर्पटादि वर्ग–** जम्बू, पद्मिनी

4. **पिप्पल्यादि वर्ग–** एला, मुस्ता, नागरमोथा, नागकेशर

1. ध०नि०, रा०नि०, शा०नि०, म०पा०नि० के अनुसार

5. **मूलकादि वर्ग–** सहिजन, बांस, वेंत, कुशुम्भ, शाल्मली, शमी, इङ्गुदी, शरकण्ड, कुश, दूर्वा, सेंवार
6. **प्रभद्रादि वर्ग–** कुटज, सर्ज, शाल, ताल, हिन्ताल, तमाल, कदम्ब, कुम्भी, भोजपत्र, अर्जुन, लकुच
7. **करवीरादि वर्ग–** कोविदार, चार प्रकार के मदार, नमेरु, किंशुक, पाटल, अशोक, तिलक, चम्पक, केतुकी, मल्लिका, वेला, अतिमुक्ता,माधवीलता, यूथिका, (जूही) जपा, पुण्डरीक, कोकनद, पद्मनी, मृणालकन्द, केशर, उत्पल, कुमुद, कुवलय, उत्पलनी।
8. **आम्रादि वर्ग–** पांच प्रकार के आम, जामुन चारो भेद, कदली, नारियल, खजूर, दाड़िम, अखरोट, महुआ, द्राक्षा, वट, गूलर, इमली, रुद्राक्ष, शल्लकी, सुपाड़ी।

"धन्वन्तरि निघण्टु के अनुसार उक्त वनस्पतियों का स्थान"

1. **गुडूच्यादि वर्ग–** मुस्ता, शैवाल, पाटला, कर्णिकार
2. **शतपुष्पादि वर्ग–** कुटज, नागकेशर, तमाल,
3. **चन्दनादि वर्ग–** चन्दन, कुमकुम, उशीरम, प्रियङ्गु, अगरु, पूगम्, सरलः, सप्तपर्ण, शल्लकी, लोघ्र, पद्मक, कुंदरु।
4. **करवीरादि वर्ग–** अर्क, वट, कदली, सिन्दुवार, शेफालिका, इक्षु, काश, दूर्वा, पुण्डरीक, कुमुद, केशर।
5. **आम्रादि वर्ग–** आम्र, कून्द, तिलक, अशोक, किंशुक, खर्जूर, पिण्ड खर्जूर, ताल, द्राक्ष, नारिकेल, जम्बू, शमी, कदम्ब, शिरीष, अर्जुन, शाल्मली,
6. **सुवर्णादि वर्ग–** शालि, ब्रीहि, यवः, नीवार, तिल, श्यामाक्।

भौगोलिक क्षेत्रपरकता के आधार पर महाकवि कालिदास की वनस्पतियों का वर्गीकरण

कवि की रचनाओं में प्राप्त वनस्पतियाँ भारतवर्ष के विभिन्न भू–भागों में पायी जाती हैं जिनकी स्थिति इस प्रकार है–

अ– प्राकृतिक

1. हिमालय –

(क) नन्दनवन – पारिजात,

(ख)–हेमकूट कैलाश एवं तलहटी का भाग– पारिजात, मन्दार, भूर्ज, पाषाण भेदक, सरल, सल्लकी, वेणु, वेत्र, पुन्नाग, मालती, अकोल्ल, कालेयक, चम्पक, जम्बू, नमेरु।

2. विन्ध्याटवी–

(अ) दक्षिण– पश्चिम एवं मध्यवर्ती विंध्याटवी– नारिकेल, केतकी, वकुल, तिलक, ताल, तमाल, कुश, शमी, पलाश, शाल्मली, लोघ्र, ऐला, लकुच, नीवार, श्यामाक, लवली, लंवग, कदली, केसर, खर्जूर, कमल, कुमुद, शालि, अक्ष, अगरु, चन्दन, अर्क, अशोक, कदम्ब, वंश, करंज, वेत्र।

(ब) उत्तरपूर्वी विन्ध्याटवी– सप्तपर्ण प्रियंगु, चम्पक, कुरुवक, वकुल, शल्लकी, दूर्वा, यव, माधवीलता, आम्र, लंवग, शिरीष, कीचक, दाडिंम, चम्पक, जम्बू,पलाश,।

3. सुदूर दक्षिण मलय पर्वत– मलयज, (श्वेत चन्दन), लवली।

ब–आरोपित

1. **पहाडी क्षेत्रों में कर्षित खाद्यान्न** – श्यामाक।

2. **फल–** दाडिम, आम।

3. **छायावृक्ष**– आम, अशवत्थ, करंज निचुल

4. **देवालय परिसर में**– विल्व, खर्जूर, अशोक, दाडिम।

5. **ग्रहवाटिका/क्रीडाराम में**– वकुल, अशोक, दाडिम, आम्र।

6. **ग्रीष्म ग्रह**– कदामी माधवीलता।

7.वीथिका वृक्ष– वकुल आम्र, अशोक।

8.ग्रह उद्यान दीर्घ वाटिका में– कमल कुमुद प्रजातियाँ विशिष्टोल्लेख– अगस्ति, पापाणमेदक, वीरतरु, चन्दन पुष्प नैतदेशीय, कुर्कुम, द्राक्षा।

वर्णन के आधार पर वनस्पतियों का वर्गीकरण

1. स्वतन्त्र रूप में वर्णन

वनस्पतियों का स्वतन्त्र रूप में वर्णन निम्नलिखित है:–

1. **अशोक**[1] (The Ashoka tree)– अशोक के पुष्पों को देखकर नवयुवतियों को शोक होने लगता है। कामदेव के प्रभाव से अशोक वृक्ष तुरन्त ही फूल गया पत्तों से पार्वती जी में श्रृंगार किया।

2. **अखरोट**[2] (Wainut)– रघु के दिग्विजय प्रसंग में कंबोज व काबूल के अखरोट वृक्षों में हाथियों को बांधने में उनकी डाले झुक गयी।

3. **आम्र**[3] (Mango)– इन्द्र के स्मरण करते ही कामदेव आम के बौर वाले बाण को मित्र बसन्त को देते हुए उपस्थित हुए। शकुन्तला कहती है–

वनज्योत्स्ना खिले हुये फूल लेकर नवयौवना हुई खडी है, उधर फल से लदी हुई शाखाओं वाला आम का वृक्ष भी उभार पर आया हुआ है।

4. **इक्षुम**[4] (Sugar Cane)– 1. धान के खेतों की रखवाली करने वाली किसानों की स्त्रियां ईख की छाया में बैठकर राजारघु के बचपन से तब तक की गुण गाथाओं के गीत बनाकर गाती थी।

2. हेवरोरू सुनो जिस ऋतु में धान और ईख के खेत लहलहा उठते हैं ऐसी शिशिर ऋतु आ चुकी है।

---

1. ऋतु0–6/18,वि0उ0–2/7, 4/61, कु0सं0–3/16, 3/53
2. रघु0–4/69
3. कु0सं0–2/64, अभि0शा0–1, गद्यभाग
4. रघु0–4/20, ऋतु0–5/1

5. **एला**[1]– रघुवंशम् में एला को उल्लेख स्वतन्त्र रूप में किया गया है। पृथ्वी पर गिरे हुए इलायची के बीज घोडों की टापों से पिसकर वायु के सहारे हाथियों के गालों पर जा चिपके जहां उनके गन्ध के समान पद निकल रहा था।

6. **केतकी**[2]– वर्षा के नये जल से केतकी पुष्पों की सुगन्ध फैल रही है केवडे के फूलों का पराग उड़ रहा था। वह सैनिकों के कवचों पर जमकर बिना यत्न के ही सुगन्धित चूर्ण का काम देने लगा था।

7. **तिल**[3]– शकुन्तला कहती है कि हे सखियों कोई उपाय सोचों कि मुझ पर राजा दुष्यन्त कृपा कर दें नहीं तो मुझे तिलांजलि देने को तैयार रहना। उक्त के अलावा भी देव दारू, नागकेशर नमेररू, सुपाडी, वट, आदि का भी कवि ने स्वतंत्र रूप में उल्लेख किया है। इसके अलावा माड्गलिक सामग्री का कवि ने बहुशः उल्लेख किया है। यथा दूर्वा, यव, अक्षत, श्यामाक, अगर, कुड्कुम, चन्दन आदि। अपराजिता औषधि का प्रयोग भी कवि ने स्वतन्त्र रूप में अनिष्ट दूर करने के लिये किया है।[4]

तत्त्वानुरूप वनस्पतियों का स्वरूप[5]

जीव की तरह वनस्पतियां भी पाञ्चभौतिक होती हैं। तत्त्वों के अनुसार वनस्पतियों का वर्गीकरण इस प्रकार है –

1. **आकाश तत्त्व की वनस्पतियाँ**– गोधूम, नागर मोथा, वंश, तृण वर्ग की वनस्पतियाँ।
2. **वायु तत्त्व की वनस्पतियाँ**– सप्तपर्ण, कुटज, पारिभद्र ।
3. **अग्नि तत्त्व की वनस्पतियाँ**– आम्र, हरीतकी।
4. **जल तत्त्व की वनस्पतियाँ**– शतावरी, अनन्तमूल, अडूसा, मुलैठी।
5. **पृथ्वी तत्त्व की वन औषधियां**– बबूल, शमी, शीशम, नीम, वट, जम्बू।

---

1. रघु0–4/47 (मलयवर्णन), 6/64 (पांड्य देश वर्णन)
2. ऋतु0–2/27, रघु0–4/55
3. अभि0शा0–3, गद्य, प्रस्तुत शोध का अध्याय–3 दृष्टव्य
4. अभि0शा0–7 गद्यभाग, रघु0–4/55, 6/17, 13/16
5. वनौ0विशे0–1, वनौ0चन्द्रोदय से

उपमान रूप में वर्णन

कवि ने अपनी सम्पूर्ण रचनाओं में वनस्पतियों को विविध रूपों में उल्लेख किया है। महाकवि कालिदास के लिये तो कहा गया है–

उपमा कालिदासस्य...........। अर्थात् कवि कुलगुरू कालिदास उपमाओं के लिये प्रसिद्ध हैं इसी कारण उन्होंने विभिन्न प्रकार की वनस्पतियों को उपमान रूप में वर्णन किया है। वैसे तो यह वृहद् विषय है किन्तु सक्षिप्ततः निम्नवत रूपों में अभिकथन हैं–

मानव अंगों के उपमान रूप में– कवि ने मानव के सभी अंगों की उपमा लगभग कमल से दी है।[1] दांतों की चमक कुन्दपुष्पों[2] एवं, मालती[3] के सुन्दर पुष्पों के समान बताया है। मुखोपमा[4] कुरूवक एवं काले भौरों से युक्त, तिलक पुष्प स्त्रियों के माथे पर के तिलक के समान हैं। कवि ने उर्वशी के मुख को लवली पत्र की तरह पीला बताया है। गर्भावस्था में सुदक्षिणा के मुख की तुलना लोघ्र पुष्प से की है। पार्वती जी के कपोलों की उपमा[5] पके हुए सरकंडे से की है। स्तनों की उपमा[6] कवि ने कहीं अशोक लता से एवं कहीं सम्पूर्ण पृथ्वी को ही स्तन के रूप में माना है। इसी प्रकार रक्ताशोक एवं बन्धूक, बिम्बाफल इत्यादि कवि को अधरोष्ठों[7] के समान लगते हैं। राजा दिलीप के हांथ शाल की डालियों के समान लगते हैं[8] कुरूवक के पुष्प का सिरा स्त्रियों के नख के समान प्रतीत होता है। दसपुर के स्त्रियों की कटीली भौंहों की उपमा कवि ने कुन्द के पुष्पों के मड़राने वाले भौरों की चमक से दी है।[9] शिरीष पुष्प एवं चमेली पुष्पों का प्रयोग कवि ने अंगों की कोमलता हेतु किया है।[10] जंघाओं की उपमा केले के खम्भे से दी गयी है।[11] इसी सन्दर्भ में कवि ने हृदय की उपमा विभिन्न प्रकार के पुष्पों के द्वारा दी है।[12] कवि को प्राण भी कुन्द पुष्प के समान चू पड़ने वाले लग रहे हैं।[13] काला अगुरु, आम्र मञ्जरियों तथा ओसबिन्दु से युक्त कुन्द पुष्प, कुरूवक इत्यादि की उपमा कवि ने स्वाभाविक मानवीय क्रियाओं में किया है।

---

1. कु0सं0–1/40, 1/16, रघु0–3/36, 4/14, ऋतु0–3/28, दृष्टव्य शोधप्रबन्ध का अ0–4
2,3. ऋतु0–6/31, 3/18
4. ऋतु0–6/33,माल0–3/5, रघु0–18/5, वि0उ0–5/8
5. कु0सं0–8/74
6. रघु0–13/32
7. उ0मे0–7, 22, ऋतु0–2/12
8. वि0उ0–2/7
9. पू0मे0–51
10. उ0मे0–40, कु0सं0–1/41, 5/4
11. कु0सं0–1/36, उ0मे0–36
12. उ0मे0–6
13. उ0मे0–56

वस्तुओं से तुलना– कवि ने वनस्पतियों की वस्तुओं से तुलना किया है। यथा– कीचक वृक्षों की ध्वनि बासुरी के स्वरों की तरह,[1] किन्नरों द्वारा ऊँचे स्वरे से गाये जाने वाले गीतों के समान लगती है।[2] कुसुम्भ श्वेत चन्दन एवं अगर कोयल द्वारा जम्बू फल के रस का रसास्वादन पाले से भरे ठंडे वायु से हिलती हुई प्रियङ्गुलता आदि का उल्लेख भी कवि ने विभिन्न वस्तुओं की तुलना में किया है।[3] पूर्व मेघ में कवि ने सरकंडों को वेत्रवती नदी के हाथ बताये। अभिज्ञान शाकुन्तलम में कवि ने मेनका अप्सरा द्वारा छोंड़ी हुई पश्चात ऋषि कण्व द्वारा पालित शकुन्तला को वृन्त से शिथिल होकर आक नामक वृक्ष गिरी हुई चमेली के पुष्प के समान बताया। कामोपभोग प्रवृत्ति का वर्णन भी कवि ने उपमा माध्यम से किया।[4] यथा– बसन्त श्री के द्वारा (नायक रूप) पलास वृक्ष में उत्पन्न किया गया कलिका समूह मद से लज्जाहीन प्रमदा के द्वारा प्रियतम के अंगों पर किये गये नख–क्षत रूप भूषण के समान सुशोभित होता था।

इस प्रकार कवि को अपने सम्पूर्ण काव्य रूपी संसार में सर्वत्र प्रकृति ही दिखायी पड रही है।

आलङ्कारिक रूप में वर्णन– वनस्पतियों का अलङ्कारों के रूप में कवि ने बहुशः उल्लेख किया है। सम्पूर्ण अलङ्कारों को प्रकृति ही प्रदान करती है, यथा–

क्षौमं केनचिदिन्दु पाण्डु तरूणा, माङ्गल्यमाविष्कृतं................।

शकुन्तला के विदाई के समय किसी वृक्ष ने चन्द्रमा के समान शुभ्र माङ्गलिक रेशमी वस्त्र प्रकट किया, किसी ने दोनों पैरो में लगाने हेतु महावर उगल दिया।

अज एवं इन्दुमती के विवाह वर्णन में कवि कहते हैं कि घृत शमीपत्र और धान की खीलों की गंध से भरा पवित्र धुआँ अग्नि से निकल कर जब इन्दुमती के कपोल तक जा पहुंचा तब ऐसा जान पड़ने लगा मानो इन्दुमती ने नीले कमल का कर्ण फूल पहन रखा हो,[5] अलकापुरी की स्त्रियाँ अपनी चोटियों में कुन्द के नये खिले फूल गूंथती हैं।[6] इस प्रकार कवि ने अपनी सातों रचनाओं में वनस्पतियों का आलंकारिक वर्णन किया है।

---

1. रघु0–2/12, 4/73
2 कु0सं0–1/8
3. रघु0–13/55, ऋतु0–4/11, कु0सं0–8/61
4. वि0उ0–4/27 अभि0शा0–3/7
5. रघु0–7/26 (अज, इन्दुमती विवाह वर्णनम्)
6. उ0मे0–2

अन्य रूपों में वनस्पतियों का वर्णनः– इनके अतिरिक्त वनस्पतियों का कवि ने अन्योक्ति रूप में एवं वियोगावस्था वाले प्राकृतिक दृश्यों के वर्णन विभिन्न रूपों में किया। कवि द्वारा अन्योक्ति रूप में कथन अभिज्ञान शाकुन्तलम् के प्रारम्भ में ही दृष्टव्य हैः– शकुन्तला कहती है– वनज्योत्स्ना खिले हुए फूल लेकर नवयौवना हुई खड़ी है, उधर फूल से लदी शाखाओं वाला आम्र वृक्ष भी उभार पर आया हुआ है। कण्व ऋषि कहते है[1]:–

'चूतेन संश्रितवती नवमालिकेयमस्यामहं त्वयि च संप्रतिवीत चिन्तः

'वन ज्योत्सना को भी आम का सहारा मिल गया है। ठीक उसी प्रकार अब मैं तुम दोनों से चिन्ता मुक्त हो गया हूँ।[2] अन्योक्ति रूप में कवि ने कुमुद, कमल, शमी, शिरीष इत्यादि का प्रयोग विविध प्रसङ्गों में किया। वियोगावस्था वाले प्राकृतिक दृश्यों का विवरण कवि ने शकुन्तला विदा के समय आश्रम की स्थिति,[3] अजविलाप वर्णन, रतिविलाप एवं उर्वशी–वियोग में पुरूरवा के विलाप आदि स्थानों में बहुशः किया है। कतिपय वृक्षों के वर्णन में कालिदास को विशेष आनन्द मिला है। कुसुमों की सुषमा और सौरभ से तो वह भूरिशः अभिभूत हैं। इसी कारण उनके काव्य में कमल, नीलोत्पल एवं कुमुद का ही अधिराज्य स्थापित है। मालविकाग्निमित्रम के पाँचवे अङ्क में वे कुसुम लक्ष्मी तथा कुसुम सौभाग्य का उल्लेख करते हैं। विक्रमोर्वशीयम् के दूसरे अङ्क के सातवें श्लोक में कुरूवक, अशोक तथा आम्र के पुष्पों का अत्यन्त सूक्ष्म वर्णन हुआ। कुमार संभवम के 3/28 में कर्णिकार का उल्लेख मिलता है। इसी काव्य के तीसरे सर्ग में बसन्त से प्रस्फुटित होने वाली कुसुमों की वैभव श्री का मनोरम चित्रण उपलब्ध है।

मेघदूतम् में प्रमदाओं के पुष्पों द्वारा अलंकरण का वर्णन करने से वे संस्कृत के एक मात्र ऐसे कवि हो गये हैं जिन्होंने काश्मीर में होने वाले कुङ्कुम, केसरों का कथन किया है। अन्त में मुझे श्री राइडर (Rider) जी का कथन[4] याद आ रहा है– "कम ही ऐसे व्यक्ति नें पृथ्वी पर चरण क्षेप किया होगा, जिसने जीवित प्रकृति के रूपों का इतना सूक्ष्म निरीक्षण किया हो जितना कालिदास, यद्यपि उनका निरीक्षण

1,2. अभि०शा०–4/13, 1/18

3. अभि०शा०–4/22

4. के०एस० रामास्वामी शास्त्री, कालिदास, पृ०–158, 159

कवि का था, वैज्ञानिक का नहीं। कालिदास के काव्य का पूर्ण आस्वाद लेने के लिए पाठक को ऐसे वनों एवं पर्वतों में अवश्य कुछ सप्ताह व्यतीत करना चाहिए जहाँ मानव की पहुँच न हुई हो। वहीं पर यह प्रतीत उत्पन्न होगी कि वृक्ष एवं प्रसून भी सजीव चैतन्य व्यक्ति हैं।"
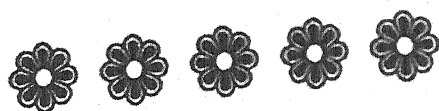
उपसंहार

****
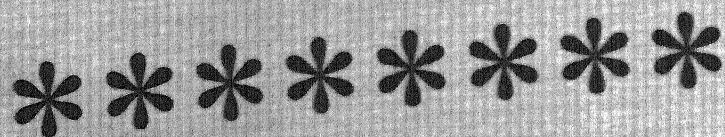
सत्यम् शिवम् सुन्दरम् की भावना से अनुप्राणित संस्कृत साहित्य भारतीय संस्कृति का उत्कृष्ट वाहक है। देववाणी संस्कृत भाषा अपने वृहद् इतिहास में अत्यन्त महत्त्वशालिनी रही है। कालांतर में चिंतकों एवं साहित्यकारों के संरक्षण में उसके स्वरूप का परिपोषण एवं पल्लवन् हुआ, फलस्वरूप संस्कृत–वाङ् मय विश्व–साहित्य के शीर्ष पर प्रतिष्ठित हुआ। ऋषियों, मुनियों एवं मनीषियों की मनीषा से अनुस्यूत ज्ञान संस्कृत भाषा के माध्यम से ही प्रकट हुआ है। महाकवियों ने जन सामान्य के भावना की कलात्मक अभिव्यक्ति के लिए इस भाषा को सर्वोत्तम माना है। सर्वविधि ज्ञान के साथ चिकित्सा–शास्त्र **'आयुर्वेद'** भी देववाणी का प्रसाद है। कालान्तर में संस्कृत साहित्य की जो अविरल धारा प्रवाहित हुई उसमें आयुर्वेद को विशिष्ट स्थान प्राप्त हुआ है। इसी कारण तो विज्ञ सत्पुरुषों ने कहा है–

''चरकान्नापरो ग्रंथः आयुर्वेदे सुशोभनः।

अधीष्व चरकं सौम्य वैद्यराजस्य काम्यया ।।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में मानव जीवन में विविध पक्ष में आयुर्वेद के महत्त्व को निरूपित करते हुए पर्यावरण एवं वनस्पतियों के महत्त्व को निरूपित किया गया है। यहाँ कवि कुलगुरू कालिदास की रचनाओं का संक्षिप्त परिचय देते हुये इनमें प्राप्त वनस्पतियों का वैज्ञानिक वर्गीकरण प्रस्तुत किया गया है। जिनमें पार्थिव, जलीय, मिश्रित वनस्पतियों के नाम स्वरूप, पर्याय, गुण एवं प्रयोग से आलोच्य वनस्पतियों की समीक्षा की गयी है। इसके साथ ही वनस्पतियों के काव्यात्मक प्रसङ्गोल्लेख की चर्चा भी की गयी है। कवि ने वनस्पतियों का उल्लेख स्वतंत्र, उपमान एवं आलङ्कारिक रूपों में किया है।

इस प्रकार प्रस्तुत शोध ग्रन्थ ''आयुर्वेदीय शास्त्रीय ग्रन्थों के परिपेक्ष्य में महाकवि कालिदास की रचनाओं का वानस्पतिक दृष्टि से तुलनात्मक अध्ययन है।'' इसका संक्षिप्त सार निम्नवत् है–

प्रथम अध्याय में स्वास्थ्य की परिकल्पना एवं आयुर्वेद की वैज्ञानिकता, अर्थ–नियोजन, आविर्भाव, आद्यपरम्परा, प्राचीनता, विस्तार, अष्टाङ्ग सिद्धान्तों, मानव स्वास्थ्य (पश्चिमी व भारतीय दृष्टिकोण से) , त्रिविध रोग मार्ग, स्वास्थ्य लक्षण एवं आयुर्वेद और वनस्पति आदि का वर्णन है।

मानव जीवन के मुख्य उद्देश्य पुरुषार्थों की सम्प्राप्ति में अस्वस्थता बाधक है। अतः सब कुछ छोंड़कर शरीर का अनुपालन करना चाहिये। इसके लिये आयुर्वेद का ज्ञान होना आवश्यक है। यह वैज्ञानिक पद्धति है क्योंकि इसका निदान शुद्ध होता है। जिस शास्त्र से आयु का ज्ञान, विचार तथा आयु की सत्ता व प्राप्ति होती है, उसे आयुर्वेद कहते हैं। आयुर्वेद के प्रमुख दो उद्देश्य हैं।

1. स्वस्थ्य के स्वास्थ्य का परिरक्षण । **2. आतुर के विकार का प्रशमन ।**

आयुर्वेद अथर्ववेद का उपाङ्ग है। इसकी रचना ब्रह्मा ने की थी। अष्टाङ्गों से परिपूर्ण आयुर्वेद के प्रथम अध्येता दक्ष प्रजापति थे। दक्ष से अश्वनी कुमार, इन्द्र, भरद्वाज, धन्वन्तरि ने क्रमशः सीखा है। आयुर्वेद की आद्य परम्परा वैदिक काल से उपलब्ध होती है। ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद, ब्राह्मण साहित्य, उपनिषद्, गृहसूत्र आदि में आयुर्वेद का वर्णन है। इसका विस्तार प्राचीन काल से केवल भारत में ही नहीं बल्कि मेसोपोटामिया, मिस्र, रोम, काबुल, मैक्सिको, चीन, यूनान, अरब, प्राचीन फारस, पेरू, लंका, नेपाल आदि देशों में भी रहा है। आयुर्वेद के शल्य तंत्र, शालाक्य तंत्र, कायचिकित्सा, भूतविद्या, कौमारभृत्य, अगदतंत्र, रसायनतंत्र, वाजीकरण, आठ अङ्ग होते हैं। पञ्चभूत, त्रिदोषवाद, सामान्य विशेष सिद्धान्त आदि आयुर्वेदिक प्रमुख सिद्धान्त हैं। स्वस्थ्य रहने के लिए वात, पित्त, कफ का संतुलन आवश्यक है। पश्चिमी दृष्टिकोण से जब कोई बीमारी नहीं होती है, तो जो शेष रह जाता है वह स्वास्थ्य है। हेल्थ शब्द हील शब्द से बना है। जिसका अर्थ व्याधि से मुक्त करना है। रोग से मुक्त होने पर उपलब्ध होने वाली स्थिति को स्वास्थ्य कहते हैं। भारतीय दृष्टि कोण से रोगों के चार भेद होते हैं–

1. स्वाभाविक   2. आगन्तुक   3. कायिक   4. आन्तरिक

रोगों के तीन मार्ग होते हैं– शाखा, मर्मास्थिसंधियाँ, कोष्ठ।

''जिस पुरुष के दोष, धातु, मल तथा अग्नि व्यापार सम हों और मन, इन्द्रियाँ, आत्मा, प्रसन्न हो वही स्वस्थ्य है।'' आयुर्वेद और वनस्पति का घनिष्ठ संबंध है। आयुर्वेदानुसार वनस्पतियों को आकाश, वायु, तेजस, पृथ्वी एवं जल तत्वों में विभाजित किया गया है।

इसी कारण कहा गया है–

वनेन जीवनं रक्षेत् जीवनेन वनं पुनः।

मा वनानि नरश्छिन्देत् जीवनं निहतं वने।।

द्वितीय अध्याय में– कवि की कृतियों का सामान्य परिचय एवं विशेषतायें इस प्रकार वर्णित हैं–

रघुवंशम्– इसके 19 सर्गों में कुल 1569 श्लोकों से सूर्यवंशीय 31 राजाओं के जीवन का वर्णन है। दयालु एवं प्रतापी राजा मनु, दिलीप, रघु आदि से लेकर विलासी राजा अग्निवर्ण तक की कथा आरोह–अवरोहों के क्रम में वर्णित है। बीच–बीच में कौत्स–वरतन्तु शिष्य, ताड़का वध, सीता परित्याग जैसी उपकथायें भी संग्रहीत हैं, कथा दिलीप के चरित्र से प्रारम्भ होती है। वे पुत्रविहीन होने से दुखित पत्नी के साथ गुरू वशिष्ठ के आश्रम जाते हैं। गुरू आदेशानुसार राजा नन्दिनी गाय की सेवा का व्रत लेते हैं। मुनि धेनु मायावी सिंह द्वारा राजा की परीक्षा लेकर प्रसन्न हो पुत्र प्राप्ति का वर देती है।

तृतीय सर्ग में रघु की उत्पत्ति तथा यौवराज्य तथा अश्वमेघ में प्रदर्शित पराक्रम का वर्णन हुआ है।

चतुर्थ सर्ग में रघु की दिग्विजय का वृत्तान्त वर्णित है। पञ्चम सर्ग में रघु की दानशीलता वरतन्तु शिष्य कौत्स के चौदह करोड़ स्वर्ण मुद्रिका याचन हेतु आगमन, कुबेर पर आक्रमण आदि का वर्णन है। इसके बाद तीन सर्गों में अज जन्म, इन्दुमती स्वयंबर, अज विलाप का उल्लेख है। नौवें से पन्द्रहवें सर्ग तक रामचरित वर्णित है। इसी बीच चौदहवें सर्ग में सीता चरित्र का वर्णन है। सोलहवें सर्ग में नाटकीय तत्वों का सुन्दर आभास प्राप्त होता है। कुश के शयन–कक्ष में दुखी अयोध्या देवी का आगमन वर्णित है। कुश पुत्र अतिथि का चरित्र सत्रहवें सर्ग में है। अठारहवें सर्ग में कवि ने इक्कीस राजाओं का उल्लेख किया है, जिनमें अंतिम राजा सुदर्शन के उत्तम शासन व्यवस्था का वर्णन प्रधान है। अन्तिम उन्नीसवें सर्ग में सुदर्शन पुत्र अग्निवर्ण की कामुकता, विलासिता एवं दुखद मृत्यु का वर्णन है।

इस प्रकार रघुवंशम् कवि की प्रतिभा का काव्य रूप में सर्वोत्तम निदर्शन है। एक ओर भावों का वर्णन है तो दूसरी ओर कलात्मकता का चमत्कार ।

कुमारसंभवम् :– इस महाकाव्य में सत्रह सर्ग हैं। इनमें क्रमशः हिमालय वर्णन, तारकासुर से डरकर ब्रह्मा जी को मनाना, इन्द्र द्वारा कामदेव को भगवान शिवजी की समाधि भंग करने हेतु भेजना और कामदेव का भस्म होना, रति विलाप, पार्वती द्वारा शिव की तपस्या, शिव–पार्वती विवाह, रति क्रीड़ायें, कार्तिकेय का जन्म, तारकासुर–कार्तिकेय युद्ध, तारकासुर वध आदि वर्ण्य विषय है। हिमालय वर्णन एवं रति विलाप इसकी मुख्य विशेषतायें हैं।

खण्डकाव्य/गीतिकाव्य :– कवि के खण्डकाव्यों का वर्णन निम्न प्रकार है–

मेघदूतम् :– पूर्व एवं उत्तर दो भागों में विभक्त यह खण्डकाव्य संस्कृत साहित्य का परमोज्ज्वल रत्न है। अलकापुरी के स्वामी कुबेर ने अपने सेवक यक्ष को एक वर्ष हेतु निर्वासित कर दिया। यक्ष रामगिरि पर्वत पर रहता है और आषाढ़ में वह मेघ से अलकापुरी में स्थिति अपनी प्रिया यक्षिणी के लिए संदेश भेजता है।

ऋतुसंहारम् :– यह एक निबन्धात्मक गीतिकाव्य है इसमें क्रमशः ग्रीष्म, वर्षा, शरद, हेमन्त, शिशिर, बसन्त आदि ऋतुओं का छः सर्गों में गीतात्मक वर्णन है।

संस्कृत नाटकों की उत्पत्ति:– नाटकों की उत्पत्ति से सम्बन्धित पांच मत हैं– वीर पूजा से सम्बन्धित मत, पुत्तलिका नृत्य में, पोल नृत्य, छाया नाटकों से सम्बन्धित मत, यूनानी विद्वानों से सम्बन्धित मत। किन्तु भारतीय मतानुसार ऋग्वेद् से संवाद, सामवेद् से गान, यजुर्वेद् से अभिनय एवं अथर्ववेद् से रस ग्रहण करके नाट्यवेद् का निर्माण किया गया है। नाटक प्रथम प्रकार का रूपक है। कवि के नाटकों का परिचय निम्नवत् है–

मालविकाग्निमित्रम्:– इसमें पांच अङ्क हैं इसका कथानक बहुत जटिल है। विदिशा का राजा अग्निमित्र इस नाटक का नायक हैं। विदर्भराज की भगिनि मालविका नायिका है इन दोनों की प्रणय कहानी ही नाटक का मूल प्रतिपाद्य है।

विक्रमोर्वशीयम्:– इसके नायक–नायिका मानवी एवं दैवीय दोनों कोटियों से सम्बन्धित हैं। अतः इसे त्रोटक कहा जाता है। इसमें कवि ने राजा पुरूरवा और उर्वशी की प्रणय कथा वर्णित की है।

अभिज्ञान शाकुन्तलम्:– इसमें सात अङ्क हैं जिनमें प्रथम चार अङ्कों को भोग भूमि, बीच के अङ्कों को दण्ड भूमि और अन्तिम अंङ्क को सिद्ध भूमि कहा गया है। इसका कथानक महाभारत के आदि पर्व पर आधारित है। दुष्यन्त और शकुन्तला की प्रणय गाथा इसमें अङ्कित है।

तृतीय अध्याय में महाकवि कालिदास की रचनाओं में प्राप्त मुख्य 51 पार्थिव वनस्पतियों का संक्षिप्ततः वर्णन है। जिसमें वनस्पतियों के पर्याय का वर्णन, अन्य भाषाओं में नाम, प्रसङ्गोल्लेख, आयुर्वेदीय गुण एवं औषधीय उपयोगों आदि का वर्णन किया गया है। वनस्पतियाँ अकारादि क्रम से निम्नवत् हैं–

अशोक, अखरोट, अगरू, अपराजिता, अक्ष–सूत्र, आम्र, इङ्गुदी, इक्षुम, एला, कर्णिकार, कालीयक, कुङ्कुम, कुन्द, कुरूवक, कुसुम्भ, कोविदार, गोधूमः, चन्दनलता, चम्पक, जम्बू,, जपा–पुष्पः, तिल, तमाल, तिलक, द्राक्षा, नागकेशर, नमेरू, नड्वल, पूंगफल, परिजात, शेफालिका, प्रियङ्गुलता, प्रियालमञ्जरी, बन्धूक पुष्प, बकुल, बिम्बा, भूर्जत्वच्, मल्लिका, मालती, मधूक, मुञ्ज, यव, यूथिका, लवङ्गम, लवली, लोघ्र, विद्रुम (प्रवालः), वटः, श्यामाक, शिरीषः, हरिचन्दन।

चतुर्थ अध्याय में आलोच्य कवि की कृतियों में प्राप्त जलीय वनस्पतियों का वर्णन अकारादि क्रम से किया गया है ।

कवि ने लगभग दस प्रकार की जलीय वनस्पतियों का उल्लेख किया है इस अध्याय में भेद सहित कुल 13 जलोद्भिद् श्रेणी की वनस्पतियों के प्रचलित नाम पर्याय, गुण प्रसङ्गोल्लेख, औषधीय प्रयोगों आदि का वर्णन किया गया है । ये वनौषधियाँ निम्नवत् हैं –

उशीरम् – यह गॉडर की जड़ है, इसे खस कहते हैं। इसका उल्लेख कवि ने काम से पीड़ित शकुन्तला के शीतलोपचार में किया है । इसका उपयोग दाह–प्रशामक रूप में होता है।

कमल/रक्तोत्पलम्– इसका उल्लेख कवि ने सौन्दर्योपमाओं में स्थान–स्थान में किया गया है।

इन्दीवर– इसे नील कमल कहते हैं।

पुण्डरीक– इसे श्वेत कमल कहते हैं।

कमलिनी– कवि ने इसे नायिका के रूप में एवं कोमल अङ्गों की उपमाओं में उल्लेख किया है। सभी प्रकार के कमलों का प्रयोग प्रदाहयुक्त विकारों, गर्मी दूर करने हेतु होता है।

कुमुद– इसे सफेद कुमुद (कोई) कहते हैं । यह पुष्प रात्रि में खिलता है, इसका उल्लेख कवि ने कमल के समान किया है ।

कलम– धान की बेड को कलम कहते हैं । चावल का धोवन श्वेत प्रदर ,ज्वर दाह प्रशमन में देते हैं ।

नागरमोथा– इसे मोथा कहते हैं । स्तनों में दुग्ध बृद्धि हेतु इसे जल से पीसकर स्तनों में लेप करते है ।

नीवार– पसही के चावल (तिन्नी के दानें) शीतल ,मधुर, स्निग्ध होते हैं ।

पाटल– इसे पाढल भी कहते हैं ।

माधवीलता/बासन्तीलता– काम से पीड़ित शकुन्तला की उपमा में इसका प्रयोग हुआ है ।

शालि /लाजा – धान, चावल आदि अनाज को शालि कहते हैं ।

शैवाल– यह सेवार या काई होती है । धन्वन्तरि निघण्टु में इसे वात, विसर्प, कण्डू, कुष्ठ व विषहारक कहा गया है ।

पञ्चम् अध्याय में कवि की कृतियों में प्राप्त मिश्रित (अर्द्धजलीय) वनस्पतियों को स्थान दिया गया है । इस अध्याय में कुल चौदह (14) वनस्पतियों का उल्लेख अकारादि क्रम से निम्नवत् है –

अर्जुन– इसे हिन्दी में कोह कहते हैं । यह हृदय को हितकर वृणशोधक, कान्तिजनक, प्रमेह, पिटिका, अस्थिसंहार, दाह, पाण्डु कफपित्त नाशक है ।

कदली– जङ्घा की उपमा में प्रयुक्त कदली, प्रमेह, नेत्र रोग एवं पित्तनाशक है।

कन्दली– इसका उपयोग भी केले के समान है ।

कदम्ब– कदम्ब पुष्प का उल्लेख कवि ने सौन्दर्योपमाओं में किया है । यह कास, दाह, वृणरोपण में प्रयुक्त होता है।

केतकी– इसका औषधीय प्रयोग कफ, पित्तजन्य विकारों में होता है । द्रव्यगुण विज्ञानानुसार यह त्वचागत वर्णविकारों व कुष्ठ में भी लाभप्रद है।

ताल– ताल (ताड़) का प्रयोग कवि ने भारी आकृति के उपमान रूप में किया हैं। यह मधुर, शीतल, श्रमहर है ।

ताड़ी– इसका औषधीय प्रयोग ताड़ के समान होता है ।

दूर्वा– दूर्वा (दूब) दाह, मूर्च्छा, ग्रहबाधा, भूत बाधा शान्तक है ।

शष्प –नये घास को शष्प कहते हैं ।

नारिकेल– इसका मदिरा व पिटारी रूप में वर्णन हुआ है । यह बल मांस कारक, शुक्रवर्द्धक, वस्तिशोधक कहा गया हैं।

वेत्र– कवि ने इसका उल्लेख झोपड़ी, वेंत की छडी आदि में किया है । यह कफ, पैत्तिक विकार नाशक है ।

शरः– मुखपाण्डुता हेतु प्रयुक्त शर (शरकण्ड) अर्श, प्रदर, दाह, तृष्णा में लाभप्रद है।

सप्तपर्ण– इसके दुग्ध व पुष्प की सुगन्ध हाथी के मद के समान होती है। यह कफ, पित्त विकार नाशक है ।

सर्ज– इसे हिन्दी में कहरूवा, अजकर्ण कहते हैं । यह पाण्डुरोग, कर्ण रोग, प्रमेह, विष, वृण को दूर करता है ।

षष्ठ अध्याय में मरूभूमिज वनस्पतियों के नाम, पर्याय, गुण, औषधीय प्रयोग एवं प्रसङ्गोल्लेख का वर्णन अकारादि क्रम से किया गया है । उक्त 20 वनस्पतियों का संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है –

अर्क/मदार– यह कास, श्वास, प्लीहा, उदरशूल में लाभप्रद है। कवि ने इसका बहुशः उल्लेख किया है ।

उदुम्बर– यह शीतल अतिसार और योनिरोग नाशक है ।

करंजक– कुछ विद्वानों के अनुसार इसे करौदा तथा कुछ के अनुसार इसे बिल्व कहते हैं। यह करौंदा रूप में शुष्क कास, जलोदर, पशुकृमि युक्त व्रणों में लाभप्रद है।

विल्व– इसके मूल, पत्र ज्वरघ्न होते है।

किंसुक– इसे पलाश कहते है। यह कषाय रस वाला होता है। कृमि, पामा, कण्डू, दाद, तथा त्वचा के दोषो को दूर करता है।

कीचक– खोखले बांस को कीचक कहते है। यह प्रमेह, अर्श तथा पित्त विकारोपयोगी हैं।

कुटज– यक्ष मेघ की पूजा कुटज पुष्पो से करता है। यह कुष्ठ, अतिसार, पित्त और रक्तार्श मे उपयोगी है।

खर्जूरी/पिण्ड खर्जूर– यह मधुर, पौष्टिक होता है तथा ज्वर, वमन, मूर्च्छा मे उपयोगी है।

तिन्तिड़ी– हिन्दी मे इसे इमली कहते है। यह आमातिसार, हैजा, नेत्ररोग, कास, अर्श नाशक है।

दर्भ– दर्भमूल शीतल, रुचिकारक, मधुर रस युक्त होता है।

देवदारु–यह लघु, स्निग्ध, तिक्त, कटु, है एवम् रक्तविकार, मेदरोग, जीर्ण ज्वर मे प्रयुक्त होता हैं।

प्लक्षत्वग/पाकड़– यह अतिसार, रक्तविकार, प्रवाहिका मे उपयोगी है।

बीजपूर– अधिक बीजो वाले बड़े नीबू को बीजपूर कहते है। यह अर्श, शोथ–नाशक है।

शमी– शालिग्राम निघण्टु मे शमी को अतिसार, रक्त–पित्त, कुष्ठ, श्वांस, कृमि व कम्पनाशक बताया गया है। द्रव्यगुण–विज्ञान अध्याय 5 पृष्ठ 483 के अनुसार बिच्छू के दंश मे इसकी छाल का लेप करते है।

शल्लकी– रस मे कषाय, वीर्य मे शीत शल्लकी पित्त प्रकोप नाशक होता है।

शाल्मली– यह (सेमर) अतिसार, अर्श, तथा रक्त पित्त के औषधि रूप मे उपयोगी होता है।

शाल– यह वृण, श्वेद, योनिरोग, कर्णरोग नाशक है।

शैलेयम्– यह कुष्ठ, पथरी, दाह, विष आदि मे उपयोगी है।

स्नुही– उपदंश, कास, श्वांस आदि कफ प्रधान रोगो मे तथा कुष्ठादि चर्म रोगों मे उपयोगी है।

सरल– यह सुगन्धित वृक्ष होते है। अतः निघण्टुओं में इनका समावेश चन्दनादि एवम् कर्पूर वर्ग मे किया गया है। यह नेत्र रोगो, वृण रोगो, को नष्ट करता है।

सप्तम् अध्याय में आलोच्य कवि की रचनाओं में प्राप्त वनस्पतियों के क्रमशः दो प्रकार के उपयोग बताये गये हैं :–

1. सौन्दर्य वृद्धिकारक वनस्पतियाँ 2. खाद्य रूप में प्रस्तुत वनस्पतियाँ

1. सौन्दर्य वृद्धिकारक वनस्पतियाँ– सौन्दर्य वृद्धिंकारक वनस्पतियों को चार भागों में बांटकर वर्णन किया गया है:–

(क) प्रसाधनिक वनस्पतियाँ– वर्ण्य– इङ्गुदी, अशोक, अर्जुन, अगर, आक, कुङ्कुम, कर्णिकार, कमल, केतकी।

(ख) धूपन दृव्य– तिल, जौ, चावल, लोध्र, सेमल, चमेली, स्नुही, वट।

केश सुगन्धि हेतु अगरु, कुमुद, कुसुम्भ, गुड़हल, तिल, पारिजात, मदार, स्नुही, वट, सुपाड़ी, पलाश, नारियल।

(ग) मुख शोधन में उपयोगी दृव्य– एला, सुपाड़ी, लवङ्ग आदि।

(घ) आभरणो द्वारा सौन्दर्य में वृद्धि– पुष्पादि द्वारा, स्वस्थवृत्त द्वारा सौन्दर्य की प्रगति चिरस्थायी होती है।

ओष्ठ सौन्दर्यवर्धक– चन्दन का तैल, केशर इत्यादि।

देह दुर्गन्ध नाशक– इत्र, खस, उबटन, चन्दन, देवदारू, नागरमोथा, केसर, एला।

स्तन सौन्दर्यवर्धक– कमल–गट्टा (बीज), तिन्तड़ी, द्राक्षा, चावल–धोवन, वटतन्तु।

सौन्दर्य वर्धक तैल– नारियल, तिल, चमेली आदि।

2. **खाद्य रूप में प्रस्तुत वनस्पतियाँ**– आहार द्रव्य परीक्षा, द्वादश आहार वर्ग, उक्त के अनुसार कवि द्वारा प्राप्त वनस्पतियों को अन्न, फल, शुष्क फल, तिलहन, इक्षुवर्ग में विभाजित किया गया है।

अष्टम् अध्याय में– औद्भिद् दृव्य चार प्रकार के होते हैं–

1. वनस्पति   2. वानस्पत्य   3. विरूद   4. औषधि

चरकाचार्य जी ने तीन प्रकार के दृव्य माने हैं–

1. जङ्गम   2. स्थावर   3. पार्थिव

स्थावर दृव्य के चार भेद होते हैं–

1. **वनस्पति**– इनमे केवल फल होता है। जैसे बड़, पीपर, गूलर।
2. **वानस्पत्य**– इसमें फूल, फल दोनों होते हैं। यथा–आम, जामुन, नीम आदि।
3. **औषधि**– फलापाकांत औषधि होती है। यथा गेहूँ, जौ, धान।
4. **विरुद**– लता सम्पूर्ण प्रतान युक्त फैलने वाली होती है।

इस प्रकार से उल्लिखित वनस्पतियों का अध्ययन क्रमशः चार बिन्दुओं पर किया गया है–

1. दृव्य गुणों के अनुसार वर्गीकरण
2. औषधियें का आधुनिक वर्गीकरण
3. निघण्टुओं के अनुसार वर्णित वनस्पतियों का वर्गीकरण
4. भौगोलिक क्षेत्र–परकता के अनुसार वर्गीकरण

वर्णन के आधार पर वर्गीकरण :– कवि के वर्णनों के आधार पर क्रमशः वर्गीकरण निम्नवत् है–

1. **स्वतंत्र रूप में वर्णन**– अशोक, अखरोट, आम्र, इक्षु, एला, केतकी, तिल एवं माङ्गलिक द्रव्य।

2. **उपमान रूप में वर्णन**– मानव अङ्गों के रूप में उपमा, वस्तूपमा, विविध भावोत्पादक उपमायें।

3. **आलङ्कारिक वर्णन** – नीलकमल, कुन्द, कुरुबक, नीप इत्यादि पुष्पों का वर्णन है।

4. **अन्य रूपों में वर्णन**– अन्योक्ति रूप में, वियोगावस्था में प्राकृतिक दृश्यों का चित्रण।

आज के भौतिकतावादी एवं उपभोक्तावादी युग में मानव विनाश के अनेक आयाम विकसित हो रहे हैं जिनके प्रति वैज्ञानिक और समाज–वेत्ता अत्यधिक चिंन्तित है। भूमण्डलीकरण के कारण हमारी जीवन पद्धति ऐसी संक्रमणशील अवस्था में पहुँच गयी है। जिसमे प्राकृतिक वस्तुओं का अधिक से अधिक दोहन व क्षरण हो रहा हैं। परिणामस्वरूप अंतरिक्ष से आने वाली पराबैगनी किरणों के कारण इतना प्रदूषण फैल गया है कि मानव अस्तित्व ही संकटापन्न हो गया है।

निष्कर्षतः मानव का वनस्पतियों से घनिष्ठ सम्बन्ध है, अतः **''महाकवि कालिदास की रचनाओं में वर्णित वनस्पतियाँ एवं उनका आयुर्वेदीय महत्त्व ''** शोधप्रबन्ध, महाकवि कालिदास की कृतियो मे उल्लिखित वनस्पतियो का आयुर्वेद के क्षेत्र मे महत्त्व बताने का एक लघु एवं विनम्र प्रयास है।

श्री कुवलयानन्द जी के अनुसार –

'' विद्वानेवाभिजानाति, विद्वज्जन परिश्रमम् ।

न हि बन्ध्याभिजानाति, गुर्वी प्रसव वेदनाम् ।।''
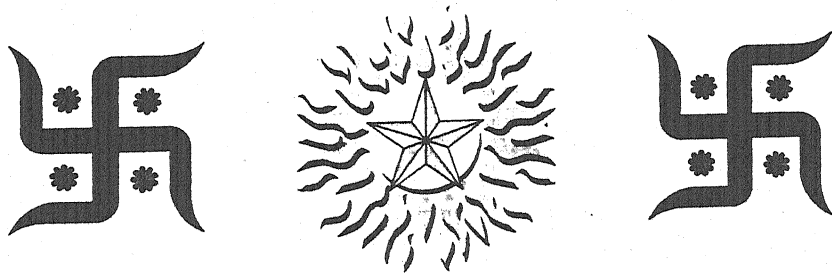
सन्दर्भ-ग्रन्थ-सूची

(अ) आलोच्य-काव्य

क्र0 सं0	ग्रन्थ	टीकाकार/सम्पादक	प्रकाशक
1.	कालिदास-ग्रन्थावली	आचार्य पं0सीताराम चतुर्वेदी	उ0प्र0संस्कृत संस्थान लखनऊ संस्करण पञ्चमसं0 2054 विक्रमाब्द
2.	विक्रमोर्वशीयम्	'कालिदास ग्रंथावली से,	
3.	मालविकाग्निमित्रम्	'कालिदास ग्रंथावली से,	
4.	अभिज्ञानशाकुन्तलम्	श्री रतिराम शास्त्री	साहित्य भण्डार मेरठ, दशम संस्करण 1995
5.	मेघदूतम्	डॉ0 बाबूराम त्रिपाठी	महालक्ष्मी प्रकाशन, आगरा नवीन सं0 1999
6.	कुमारसंभवम्	डॉ0 बाबूराम त्रिपाठी	महालक्ष्मी प्रकाशन आगरा संस्करण- 1999-2000
7.	रघुवंशम् (व्याख्याकार)	श्री हरगोविन्द मिश्रा	तृतीय संस्करण सं0 2014 बी0एच0यू0 चौखम्भा संस्कृत वाराणसी पब्लिकेशन 1976
8.	ऋतुसंहार		'कालिदास ग्रंथावली से,

(ब) सहायक-ग्रन्थ

1	आयुर्वेद का इतिहास	अत्रिदेव विद्यालंकार	हिन्दी साहित्यसम्मेलन प्रयागसं01900
2.	आयुर्वेद का वृहत इतिहास	अत्रिदेव विद्यालंकार	उ0प्र0हिन्दी संस्थान लखनऊ
3.	आयुर्वेद का वैज्ञानिक इतिहास	आचार्य प्रियव्रत शर्मा	चौखम्भा ओरियन्टालिया वाराणसी, द्वितीय संस्करण वाराणसी 1981
4.	स्वस्थवृत्त विज्ञान	डॉ0 रामहर्ष सिंह	चौखम्भा संस्कृत प्रतिष्ठान वाराणसी संस्करण 1993
5.	संस्कृत हिन्दी कोश	वामन आप्टे	मोतीलाल वनारसीदास, द्वितीय संस्करण 1969
6.	अमरकोश	रामाश्रयी टीका	चौखम्भा साहित्य सिरीज सं0 2026
7.	आयुर्विज्ञान कोश		केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय,नई दिल्ली
8.	आयुर्वेदीय विश्वकोश	वैद्य दलजीत सिंह	भाग 1-4
9.	धन्वन्तरि निघण्टु	डॉ0 झारखण्ड ओझा एवं उमापति मिश्र	चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी द्वितीय संस्करण 1996

10. राज निघण्टु (व्याख्याकार)	डॉ0 इन्द्रदेव त्रिपाठी,	आयुर्वेदाचार्य कृष्णदास अकादमी वाराणसी संस्करण द्वितीयवि0सं02054
11. शालिग्राम निघण्टु भूषणम्	शालिग्राम	खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन बम्बई–4,संस्करण 1995 वि0सं0 2052
12. मदनपाल निघण्टु		लक्ष्मी बेंकटेश्वर प्रेस कल्याण बम्बई 1954
13. वनौषधि विशेषाङ्क भाग–1	पं0श्रीकृष्ण प्रसाद त्रिवेदी	धन्वन्तरि कार्यालय स्टेट विजयगढ़ अलीगढ़ संस्करण 2003
14. वनौषधि विशेषाङ्क भाग–2	पं0 कृष्ण प्रसाद त्रिवेदी	धन्वन्तरि कार्यालय स्टेट विजयगढ़ अलीगढ़ संस्करण 2004
15. वनौषधि विशेषाङ्क भाग–3	"	धन्वन्तरि कार्यालय स्टेट विजयगढ़ अलीगढ़ संस्करण 2005
16. वनौषधि विशेषाङ्क भाग–4	"	धन्वन्तरि कार्यालय स्टेट विजयगढ संस्करण 1967 अंक 3 वर्ष 41मार्च
17. कादम्बरी का वानस्पतिकवैभव	डॉ0 माया त्रिपाठी	राका प्रकाशन, 40ए मोतीलाल नेहरू मार्ग इलाहाबाद
18. ऋग्वेद शतकम्	श्री स्वामी जगदीशानन्द सरस्वती	विजय कुमार गोविंद रामहसानन्द 4408 नई दिल्ली 110006 भारत संस्करण 1997
19. यजुर्वेदशतकम्	"	"
20. सामवेदशतकम्	"	"
21. अथर्ववेदशतकम्	"	"
22. चरक संहिता (सम्पूर्ण)	पं0 श्री दत्तराम चतुर्वेदी	निर्णय सागर प्रेस, सम्वत् 1957 मुम्बई
23. चरक संहिता	श्री मोतीलालबनारसीदास	संस्करण–1941–42
24. सुश्रुत संहिता (डल्हणटीका)		निर्णय सागर प्रेस बम्बई, 1938
25. चरक संहिता (प्रथम भाग)	डॉ0 राजेश्वरदत्त शास्त्री आदि	चौखम्भा प्रकाशन वाराणसी सं0 2034
26.द्रव्यगुण विज्ञान (द्वितीय भाग)	आचार्य, प्रियव्रत शर्मा	चौखम्भा, भारती अकादमी वाराणसी, संस्करण 14वाँ 1993
27. उड्डीशतंत्रम् (लंकापंति रावणकृत)	श्री यशपाल जी,	रणधीर बुक सेल्स प्रकाशन, हरिद्वार, चतुर्थ संस्करण, 1998
28. सुश्रुत संहिता	श्री जयकृष्णदास	आयुर्वेद ग्रन्थमाला, चौखम्भा ओरियण्टालिया वाराणसी सं0 1980

29. सुश्रुत संहिता (उत्तर तंत्रम्) — कविराज अम्बिकादत्त शास्त्री — चौखम्भा संस्कृत संस्थान वाराणसी संस्करण 11, वि0सं0 2054

30. शाङ्र्गधर संहिता (अनुवादक) — श्री रामप्रसाद — श्री बेंकटेश्वर प्रेस मुम्बई–4 संस्करण, सं0 2046 सन् 1989

31. भावप्रकाश — डॉ0 ब्रह्मशंकर शास्त्री — चौखम्भा संस्कृत साहित्य वाराणसी

32. अष्टाङ्गहृदय — वाग्भट्ट — कृष्णदास अकादमी, वाराणसी (चौखम्भा संस्करण–प्रथम वि0सं02051)

33. अष्टाङ्गसंग्रह (व्याख्याकार) — डॉ0 रविदत्त त्रिपाठी — चौखम्भा संस्कृत प्रतिष्ठान तृतीय संस्करण 1993

34. अग्निपुराणम् — आचार्य बलदेव उपाध्यायः — चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी संस्करण–तृतीय वि0सं0 2062

35. स्वास्थ्य शिक्षा पाठावलि — श्री भास्कर गोविन्द घाणेकर — चौखम्भा विद्याभवन वाराणसी,सं02020

36. कल्याण– 'आरोग्य अंक' — जनवरी–फरवरी 2001 ई0, कल्याण कार्यालय पत्रालय गीता प्रेस गोरखपुर

37 कल्याण (उपनिषद् अंक) — गीता प्रेस गोरखपुर

38. वैदिक सहित्य का इतिहास — डॉ0 कर्णसिंह — साहित्य भण्डार मेरठ, पंचम संस्करण 1999

39. नीति, शृङ्गार, वैराग्य शतकत्रयम् — भर्तृहरि — सावित्री ठाकुर प्रकाशन, रथयात्रा, वाराणसी 1999

40. श्रीमद्भगवत् गीता — गीताप्रेस गोरखपुर

41. हितोपदेश 'मित्रलाभ' — श्री विश्वनाथ शर्मा — मोतीलाल, बनारसीदास, 1974

42. नलचम्पू — श्री कैलाशपति त्रिपाठी — चौखम्भा संस्कृत संस्थान वाराणसी, तृतीय संस्करण संवत् 2034

43. भाषाविज्ञान — डॉ0 कर्णसिंह, श्री रतिराम शास्त्री — सहित्य भण्डार, मेरठ–1997

44. यू0जी0सी0 / नेट / सेट संस्कृतगाइड — डॉ0 मुरारीलाल अग्रवाल — साहित्य भवन

45. भारतीय दर्शन का सामान्य परिचय — डॉ0 रामप्रकाश सारस्वत् — महालक्ष्मी प्रकाशन, आगरा–2

46. नाट्यशास्त्रम् (भरतमुनि) — श्रीसत्यप्रकाशशर्मा — चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी2000

47.दशरूपकम् (धनञ्जय) — श्री निवास शास्त्री — साहित्य भण्डार मेरठ, एकादश संस्करण–2000

48. काव्यशास्त्र(मम्मट) आचार्य विश्वेश्वर ज्ञान भण्डार लिमिटेड वाराणसी, षष्टम संस्थान–1998

49. काव्यशास्त्र डॉ0 श्रीनिवासशास्त्री साहित्यभण्डार मेरठ (पुनः संस्करण–1994)

50. साहित्य दर्पण (विश्वनाथ) श्री लोकमणि दाहाल चौखम्भा प्रकाशन

51. साहित्य दर्पण डॉ0 राजकिशोर सिंह रेलवे क्रासिंग रोड, लखनऊ

52. संस्कृत आलोचना श्री बल्देव उपाध्याय सूचना विभाग उ0प्र0

53. एबी0 कीथ संस्कतनाटक 'अनुवादक श्री उदयभान सिंह मोतीलालदिल्ली हि0सं0 1971

54. ध्वन्यालोक– डॉ नगेन्द्र (सम्पादक)व्याख्याकार आचार्य विश्वेश्वर सिद्धान्तशिरोमणि ज्ञान मण्डल लिमिटेड वाराणसी तृतीय संस्करण सवत 2042

55. मेघदूत एक अध्ययन डॉ वासुदेवशरण कालिदास मिरासी में उद्धत

56. महाभाष्य पतञ्जलि ओरियण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट पूना द्वि0सं0 1892

57. शतपथ ब्राह्मण चौखम्बा सीरीज वाराणसी 1964

58. संस्कृत साहित्यका इतिहास आचार्य रामचन्द्र मिश्र चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी षष्ठ सस्करण 1985

59. संस्कृत साहित्यका इतिहास डा0 दयाशङ्कर शास्त्री सुरमारती प्रकाशन कानपुर प्रथम संस्करण सितम्बर 1989

60. वनौषधि निदर्शिका उ0प्र0 शासन हिन्दी संस्थान लखनऊ1982

61. वाल्मीकि रामायण में आयुर्वेद– पूर्णिमा प्रकाशन मकरान मुह0 जोधपुर1978

62. महाकवि कालिदास डॉ0 रमाशंकर तिवारी चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी तृ0सं0 1972

63. कालिदास डॉ0 वासुदेवविष्णु मिराशी पाप्पुलर प्रकाशन मुम्बई तृतीय सं0 1967

64. शतपथ ब्राह्मण (अनुवाद) गयाप्रसाद उपाध्याय प्राचीन वैदिक अध्ययन अनुसंधान संस्थान दिल्ली, 1967

65. सामवेद संहिता सायणभाष्य, सत्यवृत सामश्रमी कलकत्ता, 1973

66. अथर्ववेद संहिता सम्पादक आररात, W.D. ह्टिने बर्लिन 1856

67. ऋग्वेद संहिता सम्पादक F. Max Moolar. द्वितीय संस्करण 1890

68. यजुर्वेद संहिता सम्पादक अनुवाद ग्रिफिथ बनारस 1899

69. तैत्तिरीय संहिता सम्पादक वेबर बर्लिन 1899

70. तर्कभाषाआचार्य केशव मिश्र, ब्याख्याकार डॉ शिवबालक द्विवेदी, ग्रन्थम् रामबाग कानपुर 1986

71. महाभारत (प्रथम, द्वितीय, तृतीय खण्ड) अनुवादक पं0 रामनारायण दत्त शास्त्री, गीताप्रेस गोरखपुर

72. रामायण–वाल्मीकि (प्रथम, द्वितीय, खण्ड) गीताप्रेस गोरखपुर सं0 सं0 2063

73. संस्कृत साहित्य की रूप रेखा–चन्द्रशेखर पाण्डेय ग्रन्थम् कानपुर

74. प्राचीन साहित्य– रवीन्द्र नाथ टैगोर अनुबादक पं0 रामदास मिश्र, कालिदास– मिराशी में उद्धित

75. भाण साहित्य की समीक्षा– डॉ बाबूलाल तिवारी कालिदास– मिराशी में उद्धत

76. भैषज्य रत्नावली– वनौषधि विशेषाङ्क में उद्धत

77. प्रसन्नराघवम् – जयदेव

78. हर्ष चरितम् – बाणभट्ट

79. काव्यादर्श– दण्डी

80. वैद्यदर्पण

81. Science in Samskrit — samskrita Bharati Mata Mandir Gali Jhandewala New Delhi: 110055

82. Pride of India by Chamu krishna Shastry Sansrita Bharati Pulished by Sam sprita Bharati Mata Mandir Gali Jhandewala New Delhi: 110055

83. Indian medicinal Plants C.S.I.R New Delhi 1956 R.N.

84. Sanskrit Drama — A.B. Keith -1923

85. History of sankrit literature — .Macdonell – 1962

86. History of sankrit literature — A.B. Keith – 1948

87. History of Indian literature — M.Winternitz – 1927

88. Kalidas - Arvind — कालिदास मिराशी में उदधृत

89. Kalidas –K.S. Ramaswami & Walteyar — कालिदास मिराशी में उदधृत

(स) पत्र/पत्रिकाएं

1. निरोग सुख — श्री पुरुषोत्तम विजय वर्गीय — अंक अग0 2001, स्वास्थ्य पत्रिका सेहत और सौन्दर्य विशेषाङ्क